आत्मीयता से प्रभावित सिंह

वह एक गरीब लकड़हारा था। सुबह उठते ही कुल्हाड़ी लेकर जंगल में जाता। लकड़ी काटकर लाता उसे बेचकर जो कुछ प्राप्ति होती उससे अपना जीवन यापन करता था।

एक दिन जंगल में जब लकड़ी काट रहा था। दोपहर का समय था। अचानक एक शेर की दहाड़ सुनाई पड़ी। पलट कर देखा तो एक खूंखार शेर सामने खड़ा था। वह कांप उठा कुल्हाड़ी हाथ से गिर रही थी। आंखें बन्द हो रही थी। उसे लग रहा था कि कब शेर हमला करेगा कब उसकी इहलीला समाप्त हो जावेगी।

पर ऐसा कुछ नहीं हो रहा था। शेर गुर्रा जरूर रहा था पर आक्रमण नहीं कर रहा था। कांपते हुए लकड़हारे ने आंखें खोली तो देखा कि शेर आक्रमण नहीं कर रहा था वरन् बार–बार गुर्रा रहा था तथा अपना पंजा उठा रहा था, जमीन पर रख रहा था। अचानक उसकी नजर शेर के पंजे पर पड़ी। उसे वहां खून नजर आया उसे लगा कि शेर के पंजे में कोई चीज गड़ी है। दर्द के कारण ही शेर गुर्रा रहा था। यह देखकर वह आश्वस्त हुआ और अब उसके मन में भय के स्थान पर अनुकम्पा जागी। उसे लगा कि इस शेर को पीड़ा से मुक्त किया जाय। परन्तु पास जाने पर शेर के आक्रमण का भी खतरा था। फिर भी आखिर अनुकम्पा भावना की प्रबलता बढ़ी साहस करके आगे बढ़ा। शेर ने भी उसे आगे बढ़ते देखकर अपना पंजा ऊपर उठा दिया उसने कांपते हाथों से शेर का पंजा पकड़ कर देखा एक बड़ी कील गढ़ी थी उसने प्रयत्न करके उस कील को निकाल दिया तथा दूर हटकर खड़ा हो गया। शेर ने भी पीड़ा से राहत महसूस की। मूक प्राणी था मानवीय भाषा उसके पास नहीं थी अतः

बोल तो कुछ नहीं पाया पर लौटते बार–बार पलटकर देख रहा था। इस तरह शेर दूर जंगल मे चला गया तथा लकड़हारा भी अपना काम निपटाकर घर चला गया।

कुछ दिनों बाद किसी राजकीय अपराध के संदेह में लकड़हारा पकड़ा गया तथा उसे मृत्युदण्ड की सजा हुई। सजा भी इस तरह हुई कि इसे भूखे शेर के पिंजरे में डाल दिया जाए। आज्ञा अनुसार एक दिन उसे तीन दिनों के भूखे शेर के पिंजड़े में डाल दिया गया। लोगों की बड़ी भीड़ जमा थी सबको लग रहा था कि अभी शेर इस पर आक्रमण करेगा तथा चीरफाड़ कर खा जावेगा।

हुआ भी लगभग वैसा ही ज्यों ही शेर ने शिकार को देखा भूख से व्याकुल तो था ही उछल कर उस लकड़हारे के सामने आ गया तथा आक्रमण करने ही वाला था कि अचानक उस लकड़हारे से शेर की दृष्टि मिली तथा भूखा शेर आक्रमण को भूलकर धीरे–धीरे आगे बढ़ा तथा उस लकड़हारे के पास पहुँच कर उसके पांव चाटने लगा।

यह एक आश्चर्य कारक दृश्य था। एक भूखा शेर एक अनजान मनुष्य के पांव चाट रहा हो। सारा जनसमुदाय स्तब्ध था स्वयं राजा व राजकीय अधिकारी स्तब्ध थे। स्वयं लकड़हारा भी स्तब्ध था परन्तु अचानक लकड़हारे की याददाश्त ने जोर मारा तथा उसे वह शेर परिचित लगा। सारा पूर्व का दृश्य चिन्तन में आया। दोनों ही मूक खड़े थे परन्तु आंखों में दोनों के शिकार व शिकारी के एक अनोखा वात्सल्य भाव झलक रहा था, लकड़हारे का हाथ भी स्वयंमेव शेर के सर पर फिरने लगा।

वह तो एक व्यक्ति का एक पशु के साथ आत्मीय भावना का परिणाम था। यदि यह आत्मा संसार के समस्त प्राणियों के प्रति भी इस प्रकार की समीक्षण दृष्टि रखे तो उसकी क्या स्थिति बन सकती हैं। यह आप अपनी मति से विचार कीजिये।

❖ ❖ ❖

अभयदान की सर्वश्रेष्ठता

राजा अरिमर्दन के राज्य में एक चोर चोरी के अक्षम्य अपराध में पकड़ा गया। प्राचीन युग के राजा अपराधियों को दण्ड देने में प्रायः बहुत कठोर रहते थे। जिससे भविष्य में दूसरा व्यक्ति वैसा अपराध करने का दुस्साहस नहीं कर सके। राजा अरिमर्दन भी इसका अपवाद नहीं था। चोर के पकड़े जाने पर जब उसे राजा के समक्ष उपस्थित किया गया तो राजा अरिमर्दन ने सारी स्थिति को समझते हुए अपराधी को दण्ड के रूप में मृत्यु की सजा का आदेश दिया। उस समय की परम्परा के अनुसार अपराधी का मुहँ काला किया गया, गधे पर बिठाया गया, डूण्डिम नाद के साथ राज पुरुष शहर के मुख्य मार्गों में इस घोषणा के साथ घुमाने लगे.....''इस व्यक्ति ने राज्य–विरुद्ध चोरी का निन्दनीय अपराध किया। इस अपराध के कारण इसे मृत्यु दण्ड की सजा दी जा रही है। जो कोई भी व्यक्ति इस प्रकार के निन्दनीय अपराध को करेगा उसे भी इस प्रकार दण्डित किया जाएगा।''

इस प्रकार की घोषणा करते हुए राजपुरुष जब उसे राजमहलों के पास ले जा रहे थे उस समय चारों रानियों के साथ राजा अरिमर्दन वातायन में बैठा नगर की शोभा निहार रहा था। रानियों ने जब राज–पथ पर किसी अपराधी को ले जाते हुए देखा तो राजा से पूछा–''प्राणेश्वर ! इस व्यक्ति को किस अपराध में मृत्यु दण्ड दिया जा रहा है।''

राजा ने बतलाया–''प्रिये ! इसने चोरी जैसा जघन्य कर्म कर राज्य की जनता को बहुत उत्पीड़ित किया है। इसी अपराध में इसे दण्डित किया जा रहा है।''

चारों ही रानियां इसकी दीन दशा देख कर द्रवित हो उठीं और इसे बचाने का उपाय सोचने लगीं। इतने में ही उन्हें राजा द्वारा

दिए गए वरदान की बात याद आ गई।

सबसे बड़ी रानी ने राजा द्वारा दिए वरदान की याद दिलाते हुए कहा कि ''प्राणेश्वर'' आज उस वरदान का अवसर आ गया है। आप मेरी भावना पूरी करिये।''

''बोलो–बोलो प्रिये ! तुम्हारी क्या इच्छा है। मैं अपने वरदान के अनुसार तुम्हारी इच्छा को पूरी करने के लिए तत्पर हूँ।'' राजा की बात को सुनकर रानी ने कहा–''प्राणेश्वर एक दिन–रात के लिए आप इस अपराधी की मृत्यु सजा रोक कर इसे मेरे सुपुर्द कर दीजिये।''

''जैसी तुम्हारी इच्छा।''

राजा के आदेश को पाकर राज पुरुषों ने एक दिन के लिये अपराधी को सबसे बड़ी रानी के सुपुर्द कर दिया। रानी ने अपराधी चोर को मनोज्ञ भोजन करा कर एक हजार स्वर्ण मुद्रायें देकर तुष्ट किया। एक दिन–रात के लिये बड़ी रानी ने अपराधी की मृत्यु बचा ली। अपराधी ने रानी के प्रति बहुत कृतज्ञता ज्ञापित की। बहुत–बहुत आभार प्रदर्शित किया।

बड़ी रानी की प्रशंसा सुन कर दूसरी रानी के मन में भी अपनी प्रशंसा करवाने की इच्छा बलवती हो उठी। उसने भी अनुकूल अवसर देख कर राजा से अपना वरदान मांग ही लिया और एक दिन के लिये उसने चोर के प्राण की रक्षा की और उसे अच्छा खाना खिलाकर पांच हजार स्वर्ण मुद्रायें प्रदान कर तुष्ट किया। चोर ने दूसरी रानी के प्रति भी आभार प्रदर्शित किया। तीसरी रानी भी यह अवसर कब चूकने वाली थी। उसने भी राजा को अपना वरदान याद दिला कर चोर को एक दिन के लिए निर्भय बना दिया। उसे अच्छा खिलाया पिलाया और दस हजार स्वर्ण मुद्रायें प्रदान की। चोर ने तीसरी रानी का भी गुणानुवाद गाया और उसके प्रति भी अपना आभार ज्ञापित किया।

चौथी रानी को भी यह अवसर अनुकूल लगा। उसने भी राजा को अपने वरदान की याद दिला कर चोर को अपने पास बुलाया और कहा–चौर्य कर्म बहुत निन्दनीय है, इसी कारण आज तुम्हें मृत्यु दण्ड मिल रहा है। बोल तूं क्या चाहता है, ''जीना चाहता

है या मरना ही।'' चोर तत्काल बोल उठा–''महादेवी ! मुझे और कुछ नहीं चाहिये, केवल जीवन–जीवन। मैं तुम्हारे चरणों में गिरता हूँ, मुझे बचा लो, जन्म–जन्म तक मैं आपका उपकार नहीं भुलूंगा, बस मुझे बचा लो।''

छोटी रानी ने कहा–''मैं तुम्हें बस एक ही शर्त पर बचा सकती हूँ। तुम यह निन्दनीय कार्य सदा–सदा के लिए छोड़ दो।'' – ''हे अम्बे ! मैं तैयार हूँ। अब कभी भी ऐसा कार्य नहीं करूँगा जो राज्य विरुद्ध होगा। शिष्टता एवं सभ्यता के साथ रहूँगा। बस तुम मुझे बचा लो, डूबते हुए को उबार लो।''

महारानी ने चोर को आश्वासन दिया और सम्राट के पास पहुंचकर बोली–''प्राणेश्वर ! राज्य का दण्ड विधान दोषों को नाश करने के लिए है या दोषियों का नाश करने के लिए है। सम्राट ने कहा–''महारानी ! दण्ड का संविधान तो दोषों को नाश करने के लिए है।'' तो बस राजन ! अब मुझे आपके द्वारा दिए वरदान से और कुछ नहीं चाहिए–चोर को मृत्यु दंड मत दीजिए, उसे जीवन दान दे दीजिए।'' सम्राट अवाक रह गया, बोला–''देवी ! तुम यह क्या कह रही हो, क्या मैं उस भयंकर दुर्दान्त चोर को छोड़ दूं जिसे पकड़ने में कितना समय लगा था, इसे छोड़ने पर देश की जनता क्या कहेगी, सोचो रानी यह गम्भीर विषय है तुम और कुछ मांग लो। ''रानी ने कहा–''राजन ! मैंने बहुत सोच समझ कर वर मांगा है। इस अपराधी ने सदा–सदा के लिए निंद्य कर्म का त्याग कर दिया है अतः आप उसे बचा लीजिए।''

प्रतिज्ञा के अनुसार राजा ने चोर को निर्भय कर दिया। अब तो चोर मुक्तकण्ठ से छोटी रानी की प्रशंसा करने लगा। पूरे नगर में छोटी रानी की चर्चा होने लगी। नागरिक भी प्रशंसा करने लगे।

यह चर्चा जब तीनों रानियों ने सुनी तो ईर्ष्या से दग्ध हो उठी। अरे ! इसने चोर को दिया ही क्या है–हमने तो उसे बहुत सारी स्वर्ण मुद्रायें दीं, फिर भी लोग उसी की प्रशंसा कर रहे हैं। हमारी तो कोई चर्चा ही नहीं करता। जब कि हमारा दान सबसे ज्यादा दान था। बड़ी रानी ने कहा मैंने उसे एक हजार स्वर्ण मुद्राएं दीं। दूसरी

ने कहा–मैंने उसे तुम्हारे से भी अधिक पांच हजार स्वर्ण मुद्राएं दीं। तीसरी ने कहा–अरे ! जब कि चौथी रानी ने कुछ नहीं दिया फिर भी जनता उसी की प्रशंसा कर रही है। सम्राट से अवश्य इसका निर्णय कराना चाहिए किसका दान सर्वश्रेष्ठ दान है।

बन्धुओं ! देखिए ईर्ष्या का परिणाम। मानव जब ईर्ष्यालू बन जाता है तब अपने विवेक चक्षु खो बैठता है। बस सदा अपनी आत्म–प्रशंसा का ही इच्छुक बना रहता है। दूसरों की सच्ची प्रशंसा एवं उनके गुणों का विकास उसे फूटी आंख भी नहीं सुहाता। ईर्ष्या दग्ध मानस हित–अहित के विचार की क्षमता को खो बैठता है। किसी व्यक्ति की उन्नति को देखकर जल भुन उठता है। उन्नतिशील व्यक्ति का पतन कैसे किया जाय, बस इसी की उधेड़–बुन में वह जिन्दगी के अमूल्य क्षणों को खो बैठता है। ईर्ष्या–दग्ध मानस कभी इतनी उन्नति नहीं कर सकता, आत्म विकास का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

सुज्ञ चिन्तकों को सदा दूसरों की उन्नति में ''गुणिषु प्रमोदं–'' प्रमोद भाव होना चाहिये। आत्म–विकास के लिये साधक का चिन्तन स्वपरानुप्रेक्षी होना चाहिये। दूसरों की उन्नति को देखकर यह सोचना चाहिये कि यह भी बढ़े और मैं भी बढ़ूं। मैं भी अपने में ऐसे–ऐसे गुणों का निष्पादन करुं, जिससे मेरी भी उन्नति हो। इस प्रकार सोचने वाला साधक ही आत्म–विकास की दिशा में प्रगतिशील बनता है।

किन्तु वे ईर्ष्या–दग्ध तीनों महारानियां छोटी रानी की प्रशंसा सहन नहीं कर पाई और किसका कार्य सर्वश्रेष्ठ है, इसका निर्णय लेने के लिये तीनों मिल कर सम्राट के निजी कक्ष में पहुंची। तीनों को एक साथ देख का सम्राट अवाक रह गया ! बोला–''क्या चाहती हो, किसलिये तीनों का एक साथ मिलकर यहां आना हुआ है।''

बड़ी महारानी ने तीनों की समस्या सामने रखी और दान की सर्वश्रेष्ठता का निर्णय कराने के लिये निवेदन प्रस्तुत किया।

सम्राट स्वयं विचार में पड़ गये–सोचने लगे–यद्यपि छोटी रानी का दान कार्य ही सर्वश्रेष्ठ है किन्तु इसका निर्णय मैं दूंगा तो ये सोच बैठेंगी कि मैंने इसका पक्ष लिया है। अच्छा हो चोर इस बात

का निर्णय दे। यह सोच कर सम्राट ने कहा–''आपकी बात विमर्शनीय है, इसका निर्णय मैं दूं इससे श्रेष्ठ तो यह होगा कि स्वयं चोर ही इस बात का निर्णय दे'' उसे वास्तव में किसने सर्वश्रेष्ठ दान दिया है, तीनों रानियां मान गई। सभी के समक्ष चोर को बुलाया गया और कहा गया कि बोलो–इन चारों रानियों में से सबसे अधिक दान तुम्हें किसने दिया,'' सम्राट की बात सुन कर चोर विस्मय में पड़ गया फिर भी उसे कुछ तो कहना ही था–बोला–राजन ! बड़ी रानी का महान उपकार है, इन्होंने मुझे एक दिन का जीवनदान दिया साथ ही एक हजार स्वर्ण मुद्रायें भी इसी प्रकार दूसरी व तीसरी रानीजी का भी बहुत उपकार है, इन्होंने भी क्रमशः एक–एक दिन का जीवन दान तथा पांच हजार स्वर्ण मुद्रायें भी प्रदान की। इसका उपकार भी मैं नहीं भूल सकता। किन्तु राजन ! चौथी रानी का उपकार तो अनन्य है। इनके दान के लिये तो मेरे पास कहने योग्य कोई शब्द नहीं है। तीनों रानियों ने यद्यपि मेरा रक्षण–सत्कार सम्मान एवं स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया, किन्तु फिर भी मेरा मन अशान्त एवं उद्विग्न ही बना रहा। मुझे मानसिक शान्ति बिल्कुल नहीं मिल पाई क्यों कि राजन ! अन्ततः तो मेरे मस्तिष्क पर मृत्यु मंडरा रही थी। किन्तु जब चौथी रानी ने मुझे अभय कर दिया, मृत्यु का भय चक्र मेरे मस्तिष्क से हटा दिया तो मेरा तन–बदन अत्यधिक परितोष को प्राप्त हुआ। यद्यपि छोटी रानी ने मुझे धन के रूप में कुछ भी नहीं दिया, लेकिन निर्भयता का जो महान दान दिया उसके सामने संसार की सम्पूर्ण वस्तुएं तुच्छ हैं। अतः हे राजन ! छोटी महारानी का दान ही सर्वश्रेष्ठ दान है।

यह तो एक घटना क्रम मैं आपके सामने रखा गया। घटना चाहे किसी भी रूप में घटी हो या नहीं किन्तु इस घटना से यह शाश्वत सन्देश मिलता है कि ::सव्वेसिं जीवियं पियं'' संसार के समस्त प्राणी अपना जीवन चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। अतः मृत्यु के भय से जिसे निर्भय किया जाता है, उसकी आत्मा परम संतोष को प्राप्त होती है इसलिए अभय दान ही सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

❖ ❖ ❖

एक नमन से सभी पापों का विनाश

जब द्रव्य–भाव उभय प्रकार की संधियों का झुकाव होता है, समीक्षण दृष्टि बनती है तो साध्यता प्राप्त हो ही जाती है। अर्थात इस प्रकार का नमन सभी पापों का विनाश करने वाला होता है। बाहुबलीजी का रूपक आपने सुना ही होगा। सांसारिक सारा सुख वैभव त्याग दिया। जिनकी शक्ति के सामने षट्खण्डाधिपति चक्रवर्ती भरत को भी झुकना पड़ा। जिनका भुजबल बड़े–बड़े योद्धाओं को भस्मसात करने में समर्थ था। लेकिन जब अर्न्तजीवन में विरक्ति का बीज प्रस्फुटित हुआ उन्हें सारा संसार निस्सार लगने लगा। भौतिकता में उन्हें सुख नहीं सुखाभास प्रतीत होने लगा। जलती हुई दुनिया में आत्मा का त्राण–रक्षण करने के लिये युद्ध क्षेत्र में ही पंच मुष्टि लुंचन कर लिया। **खंतो दंतो निरारंभो पव्वइयं अणगरियं।**

शान्त, दान्त निरारंभी अनगार के रूप में प्रवर्जित हो गये। चल पड़े आत्मसाधना के विशाल पथ पर। सब कुछ छोड़ दिया, किन्तु अन्तरंग की संधियां पूरी नहीं झुक पाई। अभिमान का विषधर फूत्कार उठा। अहो ! मेरे दीक्षित होने से पहले मेरे ही सहोदर 98 भ्राता दीक्षित हो चुके हैं। मैं उनको कैसे नमन करुं। मैं बड़ा हूं वे छोटे हैं। लेकिन प्रभु के चरणों में जाऊंगा तो अवश्य ही उन्हें नमस्कार करना होगा। इसी विचारधारा ने उनको उद्विग्न बना दिया अन्त में यह निर्णय लिया कि मैं अभी प्रभु चरण में नहीं जाऊंगा। ''जब तक मैं केवल–ज्ञान प्राप्त न कर लूं, तब तक नहीं जाऊंगा। पापों का विनाश और दिव्य ज्ञान उत्पन्न होने के बाद मुझे उन लघु भ्राताओं के चरणों में नहीं झुकना पड़ेगा।''

साधना की चरम परिणिति पाने के लिये बाहुबली अणगार गहन–कान्तार में चले जाते हैं। दृढ़ निश्चय के साथ अर्थात् ''देहं पातयामि, कार्य साधयामिवाध्या तो शरीर को छोड़ दूंगा या कार्य की

सिद्धी कर लूंगा। मुझे या तो केवलज्ञान पा लेना है या शरीर छोड़ देना है। ध्यान साधना में तल्लीन हो जाते हैं।

एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, तीन दिन नहीं, एक मास, दो मास नहीं अपितु एक वर्ष बीत गया। बाहुबली अणगार अपनी साधना में हिमानी की भांति अडोल, अप्रकम्प खड़े रहे।

साहित्य भाषा में कहा जाता है कि उनके शरीर पर पक्षियों ने अपने घोंसले बना लिये, चारों तरफ झाड़ियां बन गई। इतना सब कुछ होते हुए भी उन्हें कहां भान था, शरीर का ममत्व उन्होंने छोड़ दिया था।

एक वर्ष बीत गया, ऋतुए परिवर्तित हो गई। लेकिन बाहुबली के अन्तरंग में केवल ज्ञान का लोकोत्तर आलोक नहीं हो सका। होता भी कैसे, क्योंकि अभी तक आन्तरिक संधियां परिपूर्ण रूप से झुक नहीं पाई थी। मन के एक कोने में अभिमान जो स्थान जमाये बैठा था। छोटे भाइयों को नमन कैसे करुं, इतना सा अभिमान, इतनी सी विषम दृष्टि उनके केवल ज्ञान में बाधक बन रही थी।

जब सती शिरोमणि ब्राह्मी, सुन्दरी के शब्द बाहुबली के कानों में पड़े :–

बीरा म्हारा गज थकी नीचे उतरो,
गज चढ़यां केवल नहीं पासी रे।। वीरा ।।

हे भ्रात बाहुबली अणगार ! गज–हाथी से नीच उतरो। हाथी पर चढ़े–चढ़े केवल ज्ञान प्राप्त नहीं होने वाला है।

अरे ! मैं कहां हाथी पर खड़ा हूं , मैं तो भूतल पर खड़ा ध्यान–साधना कर रहा हूँ। फिर यह ब्राह्मी, सुन्दरी मुझे गज पर चढ़ा कैसे कह रही है ? शब्दों की गहराई में उतरे बाहुबली अणगार और रहस्य को पा गये। अहो ! मैं इस बाहरी हाथी पर नहीं, किन्तु अभिमान रूपी हाथी पर चढ़ा हुआ हूं।

अहो ! यहीं बाधक है अखिल वस्तु विज्ञान में। जब तक अभिमान का स्तम्भ नहीं टूटेगा, आन्तरिक संधियां नहीं झुकेंगी तब तक आत्म शुद्धि की परम प्रकर्षता प्राप्त हो ही कैसी सकती है ? जब मैंने संसार त्याग दिया, राज–पाट, वैभव, परिवार आदि सभी सम्बन्धों का

परित्याग कर दिया, अब क्या उच्चता और निम्नता का प्रश्न रह गया है, जीवन का ही रूपान्तरण हो गया, अब तो वे सभी भ्राता मेरे ज्येष्ठ हैं, दीक्षा पर्याय एवं आध्यात्मिक साधना में। मुझे मन में ऐसी उच्चता, निम्नता की कल्पना ही नहीं करनी चाहिये। जाऊं मैं और नमन करुं। इस भावना के साथ ज्यों ही बाहुबली अणगार ने अपना कदम बढ़ाया, सभी संधियों को झुकाया, त्यों ही केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हो गया। एक दृष्टि से सभी पापों का विनाश हो गया।

बन्धुओं ! देखिये जैसे ही बाहरी और भीतरी संधियां झुकी। आत्मा की काषायिक परिणितियां हटी, समीक्षक दृष्टि की परिपूर्णता आई तथा आत्मा अनन्त सुख, अनन्त शक्ति में लवलीन हो गई। यह है समीक्षण ध्यान की परिपूर्णता, जो कि आत्मा से परमात्म भाव को उजागर करती है। शाश्वत शान्ति को प्राप्त करती हैं।

❖ ❖ ❖

छाछ पीहर भेजूंगी

किसी समय एक छोटे से कस्बे में एक निर्धन व्यक्ति रहता था। पूर्व जन्म के कर्मों का उदय कुछ ऐसा था कि वह बेचारा परिश्रम करता था, किन्तु उसकी स्थिति वैसी की वैसी ही बनी रहती थी। उसका पुरुषार्थ भी एक प्रकार से व्यर्थ हो जाता था। कार्य करने पर भी उसे कुछ मिल नहीं पाता था।

एक दिन संक्रान्ति का दान देने का दिन आया। उस व्यक्ति ने सोचा ''इस दिन लोग दान दिया करते हैं। मैं भी चलूं और दान प्राप्त करने का प्रयत्न करुं।'' यह विचार उसके मस्तिष्क में आया ही था कि इससे जुड़ा हुआ एक प्रश्न भी उसके मन में उदित हुआ। वह प्रश्न था कि लोग जो दान देते हैं, वह तो ब्राह्मणों को देते हैं। मैं तो जाति का ब्राह्मण नहीं हूँ , फिर मैं क्या करुं ? मुझे दान कैसे प्राप्त

हो सकता है। ?

सोचते–सोचते उसे विचार आया, उपाय सूझा कि मैं असली ब्राह्मण नहीं हूँ , किन्तु कृत्रिम ब्राह्मण तो बन ही सकता हूँ। यह सोचकर उसने गले में सूत का धागा डाल लिया कान में जनेऊ डाल ली और छापातिलक चढ़ाकर ब्राह्मण का रूप बना लिया। इस प्रकार वेश–परिवर्तन करके वह अन्य ब्राह्मण के साथ मिल गया और बस्ती में दान लेने चला गया। उस दिन उसे दान के रूप में कुछ साम्रगी मिल गई। वह बहुत प्रसन्न हुआ।

घर आकर मध्याह्न के समय वह अपनी टूटी खाट पर लेट गया और वह सामग्री उसने खाट के नीचे रख ली। प्रातः काल बस्ती के इधर–उधर घूमते हुए काफी थक गया था। अतः उसे धीरे–धीरे झपकी सी लग गई और उसी अर्धनिन्द्रा की सी अवस्था में उसकी कल्पना में पंख लगे। अपनी उस निंद्रा में उसने कल्पना की–बस ! बस ! अब तो आनन्द आ गया। अब तो मैं धनवान बन जाऊँगा आज जो सामग्री मुझे प्राप्त हुई है, इसे मैं कल बेचूंगा। इससे मुझे लाभ होगा। जो धन मुझे मिलेगा उससे मैं घास के पूले खरीदूंगा और गाड़ी में भरकर नगर में बेचूंगा। इससे मुझे और भी अधिक धन मिलेगा। फिर एक भूरी भैंस खरीदूंगा। इस भैंस के दूध को मैं जमा दूंगा। फिर बिलौवना करुंगा। मक्खन निकलेगा। मक्खन से घी बनाकर उसे बाजार में बेच दूंगा। खूब धन मिलेगा। मैं बची हुई छाछ को भी बेचूंगा। इस प्रकार मैं थोड़े ही दिनों में खूब धनवान बन जाऊंगा।

इस प्रकार वह भोला निर्धन कर्मों का फल भोगता हुआ कल्पना का आनन्द लिये चला जा रहा था और तन्द्रा में इन्ही बातों का उच्चारण भी करता चला जा रहा था। उसकी पत्नी भी पास में ही सोई पड़ी थी। उसने जब अपने पति का बड़बड़ाना सुना तो वह सोचने लगी कि ये किससे बातें कर रहे हैं ? ध्यान से देखा सुना तो पता चला कि अपने आप ही वे बोल रहे हैं और तन्द्रा में हैं। उसने यह देखकर मौन धारण कर लिया किन्तु फिर भी उससे रहा नहीं गया और वह भी अपने आप बोलने लगी आप सब कुछ करोगो तो ठीक है। किन्तु छाछ में से आधी छाछ तो मैं अपने पीहर भेजूंगी। मेरा

भी आधा हक है।

इन शब्दों का उच्चारण होने पर पति की तन्द्रा टूट गई। वह बोला ''क्यों री ! तूने क्या कहा'' !

पत्नी ने उत्तर दिया–''आप सब कुछ करोगे, वो करना। मैं आपको नहीं रोकती। किन्तु आधी छाछ तो मैं अपने पीहर अवश्य भेजूंगी''।

पति को क्रोध आया। वह गरजा– ''कैसे भेजोगी ? मैं देखता हूँ कि तू आधी छाछ अपने पीहर– कैसे भेजोगी ?''

पत्नी भी पीछे हटने वाली नहीं थी। आखिर–वह उसकी अर्धांगिनी थी। आधा हक वह अपना ही समझती थी। सो वह भी उत्तेजित होकर बोली–''मैं इतनी मेहनत करुंगी। दही जमाऊंगी, बिलौवना करुंगी, सब कुछ करुंगी और इतना करने पर भी क्या मैं आधी छाछ अपने पीहर नहीं भेज सकती ? अरे छाछ तो क्या, मैं चाहूँ तो आधा मक्खन भी अपने पीहर भेज सकती हूँ। समझे ? तुमने आखिर मुझे समझ क्या रखा है ?''

पत्नी का यह उत्तर सुनकर वह व्यक्ति आग बबूला हो गया। बड़बड़ाते हुए उसने एक डंडा उठाकर पत्नी की पीठ पर जमा दिया। डंडा पड़ा और औरत चिल्लाई। आवाज सुनकर अड़ौसी–पड़ौसी वहां इकट्ठा हो गये कि मामला क्या है ? यहाँ यह लड़ाई किस कारण से हो रही है ? लोगों को देखकर वे पति–पत्नी जोर जोर से एक दूसरे के दोष बताने लगे। आखिर लोगों ने पूछा–''भाई ! पहिले ये बता कि तूने इसे पीटा क्यों ?

उसने उत्तर दिया–''यह कहती है मैं आधी छाछ पीहर भेजूंगी। मेंने कहा कि तू आधी छाछ पीहर नहीं भेज सकती। तो यह कहती हैं कि में तो अवश्य भेजूंगी। यह सुनकर मुझे क्रोध आ गया और मेंने उसे पीट दिया।''

यह सब माजरा देख सुनकर एक चतुर व्यक्ति ने एक मुक्का कसकर उस व्यक्ति की पीठ पर जमा दिया। तब उसने पूछा–''तुमने मुझे क्यों मारा।''

उस चतुर व्यक्ति ने उत्तर दिया–''देख तेरी भूरी भैंस ने मेरा

खेत उजाड़ दिया। अब मैं तुझे मारु नहीं तो क्या तेरी पूजा करुं ?

यह सुनकर वह व्यक्ति बोला–''लेकिन भाई, भैंस है कहाँ ?'' चतुर व्यक्ति ने तब उसे समझाया–''अरे भले मानस ! जब भैंस है ही नहीं, तब तू छाछ के लिये अपनी पत्नी से लड़ाई क्यों कर रहा है ?

अपनी भूल उस व्यक्ति को तुरन्त समझ में आ गई।

बन्धुओं ! यह प्रसंग मैंने आपके समक्ष प्रस्तुत किया। अब मैं सोचता हूँ कि कहीं आज कल अधिकांश बड़े–बड़े परिवारों में जन्म लेने वाले मेरे भाई ऐसा ही काम तो नहीं कर रहे हैं ? आप स्वयं अपनी ही स्थिति से विचार कीजिये। यह दोष कहीं आप में दिखाई देता हो तो उसे दूर कर दीजिये। मौन रहकर हम अच्छी साधना कर सकते हैं। अधिक, अनावश्यक और व्यर्थ की बातें बोलने से क्लेश और कलह बढ़ता है। किन्तु यदि आप मौनी–घ्यानी बनकर चलेंगे तो आप ईश्वरीय शक्ति की ओर बढ़ सकते हैं।

❖ ❖ ❖

सोने की चूड़ी

स्वर्गीय श्री आचार्य जी गणेशीलाल जी महाराज एक बार गोचरी को पधारे तो वहां उन्होंने एक बहिन से पूछा–'बाई' ! आजकल तुम व्याख्यान में नहीं आती हो, क्या कारण है ?"

बहिन ने उत्तर दिया–"महाराज ! मैं क्या करुँ, आपके श्रावक जी मुझे व्याख्यान में नहीं आने देते।" आचार्य श्री महाराज को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। श्रावक जी के आने पर उन्होंने उनसे भी पूछा "भाई ! आप बाई को व्याख्यान सुनने को क्यों नहीं आने देते ? धर्मकार्य में अन्तराय क्यों डालते हो ?" तब श्रावक ने उत्तर दिया–"महाराज ! यह तो सत्य नहीं है। यह झूठ बोलती हैं। मैंने कभी भी इसे व्याख्यान सुनने जाने से नहीं रोका।"

आचार्य श्री को यह सुनकर और भी आश्चर्य हुआ कि एक कहता है, ये जाने नहीं देते और दूसरा कहता है कि मैंने तो कभी

रोका नहीं। तब उन्होंने कहा–"भाई ! इसमें सत्य क्या है? जो सच्ची बात हो वही मुझे बताओ। तब अन्त में प्रकट हुआ और सत्य यह था कि उस बाई की चूड़ी की तीब टूट गई थी। चूड़ी सोने की थी। उस सोने की सुन्दर चूड़ी को पहने बिना बाई व्याख्यान सुनने आना नहीं चाहती थी, क्योंकि भला और स्त्रियों के सामने वह अपनी हेठी होते कैसे देखती ? सेठजी उस छोटी–सी बात पर ध्यान नहीं दे पाये थे। केवल इतनी सी बात के कारण वह बाई व्याख्यान सुनने नहीं आ रही थी।

बन्धुओ ! अब आप समझ ही गये होंगे कि जेवरों या वस्त्रों का झूठा और निरर्थक मोह ही उस बाई के धार्मिक जीवन में बाधा डाल रहा था तथा उसके जीवन को दोष सहित बना रहा था। किन्तु क्या यह बात अच्छी है ? क्या इस प्रकार के व्यवहार से कभी मनुष्य होना संभव है ? अब वह जमाना नहीं रहा जबकि मनुष्य इस प्रकार के प्रदर्शन करता रहे। जो व्यक्ति इस प्रकार के प्रदर्शन करते हैं उनके प्रति अन्य लोगों की तथा समाज की कोई अच्छी धारना नहीं बनती। देखने वाले यही कहते हैं कि यह मनुष्य तो पाखण्ड करता है, प्रदर्शन करता है। कहने को तो यह कहता है कि जीवन सादगी से और सच्चाई से व्यतीत करना चाहिये, किन्तु स्वयं ऐसा नहीं करता। इस प्रकार से धार्मिक क्षेत्रों में ऐसा प्रदर्शन करना उचित नहीं है। इससे किसी भी व्यक्ति का हित नहीं होता बल्कि धर्मभावना से न्यूनता आती है। समाज का अहित होता है।

❖ ❖ ❖

दहेज एक अभिशाप

दहेज–प्रथा को बढ़ाने और मांगने वाले लोग भी भारी हिंसा करते हैं। इस प्रथा ने समाज के जीवन को बहुत दूषित बना दिया है। यह प्रथा अनेक बार हिंसा को प्रेरित तथा उत्तेजित करती है। इस प्रसंग में मैं कभी कभी एक घटना का जिक्र किया करता हूँ। वह

दुःखद घटना इस प्रकार हैः–

देहली में एक अध्यापक थे। वेतन केवल ढाई सौ रुपया था। पत्नी तो थी ही, तीन कन्याएँ भी थी। देहली जैसा नगर और अल्प वेतन, गुजर बसर कठिनाई से ही होता था। किन्तु किसी प्रकार से, कठिनाइयाँ झेलते हुए भी उन्होंने अपनी कन्याओं को अच्छी शिक्षा दिलाई थी। अब उनके सामने यह प्रश्न आया कि उन कन्याओं को किसके सामने सुपुर्द करें ? उनका विवाह किस प्रकार किया जाय ? ढाई सौ रुपये में से तो कुछ बचत होने का प्रश्न ही नहीं था। अब विवाह का खर्च कहाँ से लाए तथा इस प्रकार घोर सामाजिक अभिशाप दहेज का प्रबन्ध कैसे करें ? कन्याएँ सभी प्रकार से सुयोग्य तथा सुशिक्षित थी, किन्तु सास–ससुर को देने के लिये, उनकी अर्थलोलुपता को सन्तुष्ट करने के लिये द्रव्य उन अध्यापक के पास नहीं था।

अतः पति–पत्नी घोर चिन्ता में डूबे रहते थे। प्रायः आपस में चर्चा किया करते थे और समस्या का कोई समाधान खोजने का प्रयत्न करते थे। किन्तु समाधान कोई होता तो निकलता। इस प्रकार दुःखी होकर वे सिर पीटकर रह जाते थे। अपनी बच्चियों की ओर देख देखकर रोया करते थे।

एक दिन बच्चियों ने अपने माता–पिता को गहन चिन्ता में डूबा हुआ देखा और उनकी बातचीत भी सुनी। स्वाभाविक रूप से उनके कोमल हृदय पर इससे बड़ी ठेस लगी।

एक दिन अवसर देखकर जबकि माता–पिता दोनों ही घर से बाहर गये हुए थे, उन बच्चियों ने एक निश्चय किया और मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगाकर जल मरी।

बन्धुओ ! वे कोमल, निष्पाप बालिकाएँ जो यह आत्मघाती हिंसा करके जल मरी, वह किसके सिर पर है ? यह दायित्व किसका।

इतना ही नहीं घटना का अन्तिम चरण यह है कि वे पति–पत्नी जब घर लौटे और उन्होंने यह दर्दनाक दृश्य देखा तब अपनी फूल जैसी कोमल बालिकाओं को दुखदायी मृत्यु को देखकर उनका हृदय हाहाकार कर उठा। अब उनके लिये इस जीवन का

कोई अर्थ कोई मूल्य नहीं रह गया। परिणामतः वे भी इस दुखी जीवन से हताश निराश होकर उसी पथ के अनुगामी बन गये जिस पथ पर उनकी पुत्रियां गई थीं।

बन्धुओ ! बालिकाओं ने सोचा कि हमारा जीवन माता–पिता के लिये आर्त–रोद्र ध्यान का विषय बन गया है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान के अभाव में वे बेचारी आत्मघात जैसे पाप के मार्ग पर चली गईं। उसी प्रकार माता–पिता भी इस दोष सहित जीवन से दबकर जल मरे।

आज समाज एवं देश की यह स्थिति है। कैसी विडम्बना जीवन में भर गई है ? कितना दोषमय हो गया है यह जीवन, आज का बुद्धिवादी वर्ग भी इस चक्र में बुरी तरह पिस रहा है। यह सभ्य हिंसा हो रही है और लोग कानों में तेल डालकर आंखों पर पट्टी बांधकर इन सामाजिक हिंसाओं को देख रहे हैं। इस नर हिंसा से सदा बचना चाहिये।

❖ ❖ ❖

अर्थ का अनर्थ

एक राजा बड़ा दुर्व्यसनी था। उसके अवगुण देखकर जनता में उसकी बड़ी आलोचना होने लगी। स्थान–स्थान पर लोग उसकी निन्दा करते थे। यह देखकर राजा ने विचार किया कि किस प्रकार इस लोकनिन्दा से बचा जाय। उसने अपने दरबारियों से परामर्श किया। एक विद्वान, जो कि व्याख्यान देने में चतुर था, उसने राजा को परामर्श किया कि वह कुछ भी ऐसी धार्मिक क्रियाओं में लग जाय जिससे जनता सोचने लगे कि राजा तो बड़ा धार्मिक है और उसकी निन्दा करना बन्द कर दे। यह परामर्श सुनकर राजा ने पूछा "ऐसा कैसे करना चाहिये।" उस पंडित ने उत्तर दिया–"राजन् इसमें करना क्या है आप किसी पंडित को बुलाकर एक घंटे के लिये उससे पुराण सुन लिया करिये। जनता सोचेगी कि आह राजा जी तो पुराण सुनते

हैं बड़े धार्मिक है।"

राजा को बात जंच गई। वह बोला–"तब तो पंडित जी मैं और किसे ढूंढने जाऊं आप ही आ जाओ।" पंडित ने पूछा आप मुझे कितना वेतन देंगे ? राजा ने पंडित को प्रतिदिन सोने के दो टके देना स्वीकार किया और बात पक्की हो गई। राजा प्रतिदिन पुरान सुनने लगा और पंडित प्रतिदिन सोने के दो टके प्राप्त करने लगा। दोनों प्रसन्न थे।

एक दिन पंडित के सम्बन्धियों का समाचार आया कि विवाह का प्रसंग है। आपका इसमें सम्मिलित होना आवश्यक है। अब पंडित असमंजस में पड़ गया कि यदि उस विवाह में सम्मिलित होने जाता हूँ तो एक सप्ताह लग जायेगा और सोने के चौदह टकों की हानि हो जायेगी और यदि नहीं जाता हूँ तो सम्बन्ध टूट जाता है। बड़ी उलझन है, क्या किया जाय और क्या न किया जाय।

पंडित का लड़का विद्वान था। उसने अपने पिता को चिन्तातुर देखा तो पूछा कि वे क्यों चिन्तित हैं ? जब पंडित ने सारी बात कही तो उसने कहा–"पिताजी, आप व्यर्थ चिन्ता कर रहे हैं। आप प्रसन्नतापूर्वक विवाह में सम्मिलित होने पधारिये, मैं राजा को पुराण सुनाने चला जाया करुंगा। इस प्रकार दोनों ही कार्य हो जायेंगे। पंडित को बात ठीक लगी। उसने लड़के को सावधान किया कि पुराण ठीक से सुनाना और स्वयं विवाह यात्रा पर चल पड़ा।

पंडित–पुत्र, राजा को पुराण सुनाने गया। उस पंडित पुत्र ने अपने व्यावहारिक जीवन में एक गुण अपना रखा था कि किसी को धोखा नहीं देना। जैसी हो, वैसी सत्य बात कह देना पुराण–वाचन के समय एक श्लोक ऐसा आया किः–

तिल सर्षप मात्रं, यो नरो मासं भक्षति.....।
समृत्वा नरकं. च यान्ति यावत चन्द्र दिवाकरो।

उस श्लोक का सारांश यह था कि तिल–सरसों मात्र भी मांस, जो मनुष्य खाता है वह नरक में जाता है और वह नरक में तब तक रहेगा जब तक कि चांद सूर्य आकाश में घूमेंगे।

पंडित पुत्र ने सच–सच बात थी वह बता दी। श्लोक का

जैसा अर्थ था वह कर दिया। किन्तु इस कटु सत्य को सुनकर राजा चिढ़ गया और कुपित हो गया। वह बोला–"पंडित ! अपना पौथा बन्द करो। मैं तो आज तक मनो मांस खा गया हूँ। तुम्हारे पुराण के अनुसार मुझे नरक हो ही गया और वह भी अनन्तकाल के लिये। सो मुझे अब तुम्हारा पुराण नहीं सुनना और सोने के टके भी नहीं देने हैं। तुम जा सकते हो।"

पंडित पुत्र सत्यवादी था, स्पष्टवादी था। उसने कहा–हाँ, राजन पुराण तो ऐसा ही कहता है और इतना कहकर वह अपने घर चला आया।

अब जब उसका पिता घर लौटकर आया तो उत्सुक होकर उसने अपने पुत्र से हालचाल पूछा कि सब कुछ ठीक है कि नहीं, सोने के टके आ रहे हैं कि नहीं ? पुत्र ने जो कुछ घटित हुआ था वह सब कुछ अपने पिता को बता दिया। पंडित सिर पीटकर रह गया। बहुत क्रोधित हुआ। बड़ा दुखी हुआ। बोला–"अरे मूर्ख ! तूने घर आती लक्ष्मी को ठोकर लगा दी। हमें सच्ची बात से क्या मतलब है ? जिसे सुनकर राजा प्रसन्न रहे, वैसी ही बात सुना देनी चाहिये। हम तो व्यवसायी हैं।

लड़के ने जो उत्तर दिया वह मनन करने योग्य है। उसने कहा "पिताजी। मैं तो भूखों मर जाना श्रेयस्कर समझूंगा, किन्तु धोखेबाजी करना मैं पाप समझता हूँ। अर्थ का अनर्थ मुझ से नहीं हो सकता।"

आखिर पंडित अपना पुराण लेकर स्वयं राजा के पास गया और बोला–"राजन ! मैं बाहर चला गया था मेरा लड़का अभी छोकरा है। उसे अनुभव नहीं हैं आप रुष्ट न हों, मैं आपको पुराण सुनाता हूँ। राजा ने कहा–"मुझे पुराण–वुराण अब कुछ नहीं सुनना है। मुझे तो नरक में जाना ही है, अब मैं सोने के टके देने वाला नहीं हूँ।"

यह सुनकर पंडित ने कहा महाराज–"मैं आपको बिना मूल्य लिये ही पुराण सुनाऊंगा आप सुनिये तो सहीं।"

आखिर पुराण–पाठ आरम्भ हुआ। वही श्लोक सामने आया "तिल सर्षप मात्रं"–इसे सुनते ही राजा फिर चमका, बोला इसका अर्थ आपका पुत्र मुझे बता गया है, आप रहने दीजिये। "तब पंडित ने

कहा–आप इसका अर्थ जरा ध्यान से सुनिये। वह बच्चा क्या अर्थ बताएगा ? राजन इस श्लोक का अर्थ यह है कि "जो तिल सरसों जितना ही मांस खाता है वह नरक में जाता है किन्तु आप जैसा राजा जिसे कि मांस खाना ही पड़ता है, वह यदि मनोबंध मांस खाता है तो वह नरक में नहीं जाता। अतः आप जब मांस खावें तो तिल–सरसों मात्र मत खाइये, खूब खाइये। भरपेट खाइये। मनोबंध खाइये"।

बंधुओ ! यह कैसी क्षुद्र, कैसी स्वार्थ प्रेरित दृष्टि है ? जब ऐसी दृष्टि आ जाय, तब सत्य का निरुपण किस प्रकार हो सकता है ? और जब तक सत्य का निरुपण नहीं होता, तब तक मनुष्य की आत्मोन्नति कैसे सम्भव है ?

अतः बन्धुओ ! सद्ज्ञान की प्राप्ति के लिये, मंगलमय शान्ति प्राप्त करने के लिये, अपनी आत्मा को पवित्र बनाकर आध्यात्मिक उत्थान हेतु सदगुरु की शरण लीजिये और यह भी कभी न भूलिये कि जैसी संगति होगी, वैसा ही जीवन बनेगा।

❖ ❖ ❖

गुरु बिन ज्ञान नाही

एक साधक था। वह साधना के क्षेत्र में अग्रसर हुआ। किन्तु उसे कोई नहीं मिला। गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिलता। किन्तु उस साधक ने इसकी चिन्ता नहीं की और सोचा कि वह तो अकेला ही रहेगा और साधना करेगा। उसे जीव–अजीव का कोई ज्ञान नहीं था। वह अज्ञान तप करने के लिये जंगल में चला गया। हठधर्मी के वशीभूत होकर वह गुफा में प्रविष्ठ होकर वहीं रहने लगा। दिन में एक बार ही वह बाहर निकलता था और भोजन के स्थान पर एक वृक्ष की छाल को छीलकर उसमें से जो रस द्रवित होता उसे ही चाट लेता बस यही उसका भोजन था।

लोगों ने यह देखा तो उन्हें बड़ा कुतूहल हुआ कि देखो, यह कैसा तपस्वी है, भोजन भी नहीं करता, केवल वृक्ष की छाल से थोड़े

से रस को अपनी जीभ से चाटकर ही रह जाता है और दिन रात गुफा में रहकर साधना करता है। धीरे–धीरे लोगों का यह कुतूहल श्रद्धा एवं प्रशंसा में बदल गया। वे कहने लगे कि यह तो बड़ा योगी–महात्मा है। अन्न जल भी ग्रहण नहीं करता, मात्र तनिक सा रस चाटकर जीवन–यापन करता है, कहते हैं कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं, किन्तु यह तो अकेला ही अपनी साधना में निमग्र रहता हैं

इसी प्रकार की अनेकों बातें लोगों में चलती। धीरे–धीरे बहुत से लोग उसके दर्शनों के लिये आने लगे। वह साधक जब गुफा से निकलता तो लोग उससे आशीर्वाद प्राप्त करते। होते होते यह समाचार राजा के पास भी गया उसकी प्रशंसा सुनकर राजा के मन में आया कि ऐसे सिद्ध महात्मा के दर्शन स्वयं भी करने चाहिये और अपने अन्तःपुर को भी कराने चाहिये। अस्तु अपने मंत्री को आदेश दिया वह उस साधक को महल में बुलाकर ले आये ताकि वह तथा उसकी रानियां उसके दर्शन कर सके। राजा का अभिप्राय लेकर मंत्री उस साधक के पास गया और जब वह गुफा से बाहर आया तब उससे कहा कि वह महल में चल कर राजा–रानियों को दर्शन दें।

किन्तु साधक ने इन्कार कर दिया। मंत्री निराश लौट आया उसने जब राजा से कहा कि वह साधक तो महलों में आने के लिये तैयार नहीं है तो राजा ने स्वयं ही उसके दर्शनार्थ जाने का निश्चय किया। जब राजा मंत्री के साथ वहां गया और जब महात्मा गुफा से बाहर आया तब राजा ने उसका अभिवादन कर प्रार्थना की कि महात्मा जी ! महलों में पधारिये। किन्तु महात्मा ने पुनः यह आग्रह–स्वीकृत नहीं किया।

महात्मा को ऐसा तप करते हुए देखकर राजा बहुत प्रभावित हुआ किन्तु मंत्री ज्ञानी था उसने राजा से कहा–"राजन ! यह महात्मा अज्ञान तप कर रहा है। इसे तो अभी यह भी ज्ञान नहीं कि वनस्पति में जीव है कि नहीं अतः मुझे तो सन्देह है कि इसकी साधना आगे बढ़ सकेगी। सिद्धान्त की दृष्टि से यह कुछ भी नहीं जानता।"

किन्तु राजा को मंत्री की बात से संतोष नहीं हुआ। उसने कहा–''मंत्री तुम कुछ नहीं जानते। यह सच्चा महात्मा है।''

यह सुनकर मंत्री ने कहा–"महाराज ! विज्ञान के बिना साधु–जीवन पनप नहीं सकता। मैं आपसे पुनः कहता हूँ कि इसकी साधना में दोष है इसकी साधना आगे नहीं बढ़ेगी।

मंत्री ने जब दृढ़ विश्वास के साथ यह बात कही तो राजा ने कहा ''क्या तुम सिद्ध करके बता सकते हो ?''

मंत्री ने चुनौती स्वीकार कर ली और कहा–"राजन ! मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ किन्तु इसके लिये मुझे कुछ समय तथा कुछ धन की भी आवश्यकता होगी।"

राजा ने यह स्वीकार कर लिया।

अब मंत्री यह विचार करने लगा कि किस उपाय से उस महात्मा को राजा के पास लाया जाय। अन्त में उसे एक उपाय सूझा, उस नगर में एक वेश्या रहती थी। वह बड़ी रूपवती थी तथा चतुर भी थी। मंत्री ने उसके पास जाकर सारी बात उसे बताई और कहा–"महात्मा दिन में केवल एक ही बार अपनी गुफा से बाहर आता है तथा वृक्ष की छाल हटाकर, वृक्ष का रस चाट कर वापस गुफा में चला जाता है। अब किसी न किसी प्रकार उसे राजा के पास नगर में ले जाना है। बोलो, क्या तुम ऐसा कर सकती हो ?"

वेश्या ने उत्तर दिया–"मंत्रीवर ! यह तो बहुत सरल काम है। आप देखते जाइये, मैं चुटकियों में यह काम कर दूंगी।"

उसके बाद वह वेश्या भी अन्य लोगों के साथ उस महात्मा की भक्ति करने जाने लगी। उसने महात्मा की सारी दिनचर्या का सूक्ष्मता से अध्ययन किया। फिर एक दिन उसने चुपचाप पतला हलुवा बनाया और उस वृक्ष की छाल हटाकर वह हलुवा चुपड़ दिया। महात्मा जब वृक्ष का रस चाटने के लिये आया, वेश्या दूर छिपी हुई सारा दृश्य देखती रही। उसने देखा कि महात्मा ने वृक्ष की छाल हटाई, रस चाटा और वापस गुफा में चला गया।

किन्तु उस महात्मा को उस दिन वृक्ष के रस में कुछ विशेष ही आनन्द आया। अधिक मधुरता उसे उस रस में मिली। अतः उसका मन डोला और वह थोड़ी देर के बाद ही रसपान करने पुनः गुफा से बाहर निकल आया। इस बीच वेश्या ने उस स्थान पर पहले हलवे का

लेप फिर से कर दिया था। इस प्रकार महात्मा का मन अब साधना में नहीं लगा और वह हलवे में डूबने लगा। पहले वह चौबीस घन्टों में एक ही बार रस चाटने आता था, अब तो बार–बार आने लगा, और सोचने लगा कि इतना मधुर रस आता कहां से है।

अवसर देखकर वेश्या प्रकट हुई और महात्मा से बोली–महात्मन ! यदि आप चाहें तो मैं आपको यह मधुर रस भरपेट प्रदान कर सकती हूँ। समीप ही मेरी कुटिया है, आप मेरी कुटिया में पधारिये।"

महात्मा ने उत्तर दिया–"मैं तुम्हारी कुटिया में नहीं आ सकता हूँ। तब वेश्या ने कहा–"अच्छा, मैं आपको वह रस यहीं लाकर देती हूँ।"

इस प्रकार धीरे–धीरे महात्मा जी साधना को शिथिल करके वेश्या के रस में निमग्न होने लगे। शनैः शनैः वे वेश्या की कुटिया में भी आने–जाने लगे और परिणाम यह हुआ कि वे कुछ ही समय में उस वेश्या के पुत्र के पिता भी बन गये। अब वे अपनी सन्तान तथा वेश्या के मोह में पूर्णतया फंस चुके थे और उसकी साधना गायब हो चुकी थी। वेश्या जब अपने काम से शहर में जाती तब वे उस बालक को खिलाया करते।

एक दिन वेश्या ने महात्मा से कहा कि अब वह नगर में जाकर रहेगी। यह सुनकर वे बोले–"यदि तुम चली जाओगी तो फिर मैं कैसे रहूँगा ? मैं तो तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।"

वेश्या ने कहा–"आप भी मेरे साथ नगर में चलिये।"

महात्मा ने स्वीकार कर लिया। वेश्या ने मंत्री को समाचार भिजवा दिया कि वह महात्मा को लेकर आ रही है। महात्मा जी बच्चे को गोद में उठाये नौकर के समान जब नगर में पहुँचे तब वह दृश्य दर्शनीय ही था। यह सब देखकर राजा ने मंत्री से कहा–"मंत्रीवर ! क्या ऐसा होना भी सम्भव है ? इस महात्मा की साधना का क्या हुआ।"

मंत्री ने राजा को बताया–"राजन सच्चे गुरु के अभाव में सच्ची एवं शुद्ध साधना नहीं हो सकती। यही कारण है कि यह महात्मा आज आत्मिक शान्ति का अनुभव नहीं कर सका।"

❖ ❖ ❖

सेठ ऐसा हो

एक नौकर एक सेठ के यहां नौकरी करने के लिये गया। सेठ ने उससे पूछा कि वह कितनी तनख्वाह लेगा। नौकर ने सोचा कि यदि अधिक तनख्वाह मागूंगा तो ये मुझे नौकर नहीं रखेंगे। अतः उसने कहा कि वह 250/– रुपये लेगा। तब सेठ ने पूछा कि तुम्हारे घर का खर्च कितना है ? नौकर ने उत्तर दिया कि खर्च तो साढ़े तीन सौ का है। परिवार में सदस्य अधिक है। तब सेठ ने पूछा कि जब तुम्हारे घर का खर्च साढे तीन सौ का है, तब तुम ढ़ाई सौ में कैसे काम चलाओगे। इसका अर्थ है कि तुम चोरी करके काम चलाओगे। किन्तु ऐसा नहीं करना चाहिये। मैं तुम्हे साढ़े तीन सौ रुपये ही दूंगा। बोला, अब तो तुम ईमानदारी से काम करोगे ना ?

नौकर सेठ की इस उदारता से बहुत प्रभावित हुआ। वह सदा के लिये सेठ का भक्त हो गया। उसने उत्तर दिया सेठ साहब ! "आप बड़े कृपालु हो। आपने मेरे मन की बात जान ली। अब आप विश्वास कीजिये कि मैं अपने तन मन से आपकी सेवा करुंगा तथा कभी आपको कोई शिकायत का मौका नहीं दूंगा।"

बन्धुओ ! इस प्रकार की स्थिति जब बनती है तो मानवता मुस्कराती है और मनुष्य जीवन का उत्थान होता है। इसके विपरीत अपने सेवकों से दुर्व्यवहार करने पर मानवता का पतन होता है, मनुष्य की हानि होती है, चोरी होती है, बेइमानी होती है, हिंसा होती है। जरा विचार कीजिये और अपने हित के लिये तथा समस्त मानव जाति के कल्याण के लिये अपने व्यवहार और आचरण को सुधारिये।

❖ ❖ ❖

संयमित जीवन हो

एक डॉक्टर थे। उनका नाम था डॉक्टर थूर। वे अपने क्षेत्र में तो कार्य करते ही थे, उसके अतिरिक्त छात्रों को शिक्षा देने का भी कार्य करते थे। एक दिन एक छात्र ने पूछा–"डॉक्टर साहब मैं इस संसार में रहता हुआ सुखी कैसे रह सकता हूँ। कृपया मुझे यह मंत्र बताइये डॉक्टर थूर ने कहा–"यदि तुम सुखी रहना चाहते हो, तो ब्रह्मचर्य का पालन करो।" यह सुनकर छात्र ने कहा–"मेरे लिये आजीवन ब्रह्मचर्य रहना तो कठिन है। तलवार की धार पर तो एक बार चला भी जा सकता है, किन्तु व्रत तो लगभग असम्भव है। डॉक्टर ने कहा–"यदि आजीवन ब्रह्मचारी रह सकते हो तो जीवन में एक बार के अतिरिक्त ब्रह्मचारी रहो। छात्र ने कहा कि यह भी कठिन है। तो डॉक्टर ने कहा कि महीने में एक बार के अतिरिक्त ही ब्रह्मचारी रहना। छात्र को इसमें भी कठिनाई प्रतीत हुई तो डॉक्टर ने कहा कि महीने में दो बार के अतिरिक्त ही ब्रह्मचारी रहो। किन्तु छात्र के लिये तो यह भी कठिन था। तब डॉक्टर ने कहा कि यदि यह भी तुम्हारे लिये कठिन है तब तो जब तुम जिस किसी के भी साथ रहो कफन की सामग्री अपने साथ रखना।

इस प्रसंग की आपके सामने रखने का यही अभिप्राय है कि जीवन में संयम की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि आप मर्यादित जीवन व्यतीत करेंगे तो सुखी रह सकेंगे, अन्यथा अमर्यादित जीवन कभी सफल और सुखी नहीं बन सकेगा।

❖ ❖ ❖

राधा वेध और समीक्षण ध्यान

कौरवों और पाण्डवों के जीवन का एक प्रसंग है। जब द्रोणाचार्य के पास में वे धनुर्विद्या का अध्ययन कर रहे थे, उस समय भीष्म पितामह आदि संरक्षकों की इच्छा हुई थी कि इनकी परीक्षा आम जनता के बीच में हो। द्रोणाचार्य ने मंजूरी दे दी। विशाल मैदान का चयन हुआ। मैदान के मध्य में एक स्तम्भ रोपा गया। स्तम्भ के ऊपरी भाग पर एक मयूर का पंख बाँधा गया और स्तम्भ के मूल भाग में एक खड्डा खोदकर तेल भर दिया गया।

द्रोणाचार्य सभी विद्यार्थियों को लेकर परीक्षा स्थल पर पहुँचे। यथास्थान बैठाने के बाद किस विद्यार्थी को पहले खड़ा करना चाहिये इसका चिन्तन करने लगे इधर दुर्योधन अपनी ईर्ष्यालु बुद्धि के अनुसार सोचने लगा कि द्रोणाचार्य जी कहीं अर्जुन को पहले खड़ा न कर दें। ऐसा सोचकर वह स्वयं ही सबसे पहले जहां मयूर पिच्छ चाँदले के तीर से बींधने का स्थान था, वहां जाकर खड़ा हो गया। धनुष को व्यवस्थित कर निशाना साधने लगा। इतने में द्रोणाचार्य जी ने पूछा, वीर दुर्योधन ! तुझे क्या दिखलाई दे रहा है, गर्व के साथ उत्तर दिया दुर्योधन ने "मुझे आप दिखाई दे रहे हैं, साथ ही सभी दर्शक एवं स्तम्भ, मयूर पिच्छ तथा बाण की नोक भी दिखाई दे रही है।"

द्रोणाचार्य चिन्तन करने लगे कि यह कितना कठिन विषय है और इस वक्त इसको सब कुछ दिखलाई दे रहा है, यह क्या सफल हो पायेगा, इसका मन बिखरा हुआ है। फिर भी द्रोणाचार्य उसकी भावना को देखकर बोले अच्छा।

इतना सुनते ही दुर्योधन ने तीर चला दिया। फलस्वरूप निशाने पर तीर नहीं लगा। मयूर पिच्छ किधर ही रहा और बाण किधर ही चला गया। लोगों में खूब हँसी हुई तालियों की गड़गड़ाहट हुई। इतना होने पर भी ईर्ष्यालु दुर्योधन ने अपने बाद अपने ही भ्राताओं को

एक के बाद एक को भेजा लेकिन सारे ही उसके भाई असफल रहे। तब द्रोणाचार्य ने अर्जुन को संकेत किया। अर्जुन खड़ा होकर हाथ जोड़कर सिर झुकाता हुआ बोला "क्या आज्ञा है आपकी द्रोणाचार्य बोले–"एक ही निशाने में मयूर पिच्छ का चांदला उड़ाना है।" तथास्तु कहकर अर्जुन ने द्रोणाचार्य एवं तत्रस्थ सभी महानुभावों को नमन करके उपस्थित जन–समूह को नमस्कार किया। तदनन्तर नियत स्थान पर पहुँचा। उसका मस्तिष्क ईर्ष्या के दुर्गुणों से रहित था अतएव वह सही सोचने में भी सक्षम था। चिन्तन करने लगा कि स्तम्भ के नीचे ही तेल क्यों भरा गया है। स्वयं की प्रतिभा से उसे बोध हुआ कि चांदला ऊँचा है। ऊपर दृष्टि करने से निशाना चूक जाता है। तेल के अन्दर चांदले का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। इस प्रतिबिम्ब को देखकर निशाना जमाना चाहिये। वैसा ही किया उसने एकाग्रता के साथ। द्रोणाचार्य ने अर्जुन से भी पूछा–अर्जुन ! क्या दिखता है तुम्हें ? तब अर्जुन ने कहा–"गुरुदेव ! चांदला एवं बाण की नोक के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखता है।" द्रोणाचार्य बोले, "बस तुम्हारा कार्य सफल है।"

बाण छूटा और सीधा निशाने पर लगा। जयनाद से गगन मण्डल गूंज उठा।

द्रोणाचार्य ने कहा एक ही बाण में चांदला उड़ाने की एकाग्रता अर्जुन को प्राप्त हो गई है। अब यह राधा–वेध नाम की विद्या सीखने के योग्य है। राधा वेध नाम की विद्या में अत्यधिक एकाग्रता की आवश्यकता रहती है। क्योंकि अनेक पंखड़ियों वाले दो चक्र एक दूसरे के विपरीत दिशा में जोर से घूमते हैं। उन चक्रों के ऊपरी भाग पर निशाना रहता है। उन विपरीत दिशा में घूमते हुए चक्रों के बीच में से निशाना साधना होता है। बन्धुओं ! यह तो एक रुपक है। मन में शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के विचार रुप चक्र परस्पर विपरीत दिशा में घूमते रहते हैं। इन शुभाशुभ विचार चक्रों के बीच से समीक्षण अवलोकन के साथ परमात्मा के तुल्य आत्मा का साक्षात्कार करना, लक्ष्यानुरुप निशाना साधना होता है। इस निशाने को साधने में वही साधक सफल हो सकता है, जिसकी दृष्टि बाहर की ओर प्रसूत न

होकर स्वच्छ मन में लगती है, उस मन की स्वच्छता, स्निग्धता एवं गम्भीरता में रही हुई है। जिस प्रकार तेल स्वच्छ, स्निग्ध एवं भारी होता है, उसी प्रकार जिस साधक का मन जगत के प्रत्येक प्राणी के साथ आत्मीय स्निग्धता से युक्त हो याने सभी को अपनी आत्मा के तुल्य देखने की क्षमता हो, विषमता की मलीमष गन्दगी से रहित समता की स्वच्छता से युक्त हो एवं अनेक विकट परिस्थितियों के बावजूद भी धैर्य रूप गम्भीरता से वजनी हो, वही व्यक्ति स्थूलावस्थान आदि की सभी सन्धियों को समीक्षण दृष्टि से देखता हुआ अरिहंत पद के अर्थ के प्रति झुका देता है तो वह एक पद के नमस्कार से सभी पापों का नाश करने में समर्थ हो जाता है, अर्थात आत्मा एवं परमात्मा के निशाने को साध लेता है। जिस प्रकार कि अर्जुन ने अपनी एकाग्रता से निशाना साधा था।

❖ ❖ ❖

सद्व्यवहार से हृदय-परिवर्तन

पूर्वकाल के श्रावकों की आदर्श रीति–नीति मेरे मानस पटल पर रह–रह कर उभर आती है। अतएव मैं समय–समय पर उसका उल्लेख करता रहता हूँ। ऐसा ही एक प्रसंग मुझे याद आता है।

एक बारह व्रतधारी श्रावक पौषध में बैठे थे। उनकी अनुपस्थिति में चोरों ने उनके घर में प्रवेश किया और धन माल चुरा कर ले गये। ये समाचार सेठ जी को मिले। वे अपने पौषधव्रत की आराधना में लीन रहे। थोड़ी देर बाद फिर समाचार मिले कि चोर पकड़ लिये गये है और धन माल उनसे बरामद कर लिया गया है। इस समाचार से उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई। उनकी चिन्तन धारा ने दूसरा ही रूप लिया। वे सोचने लगे, "चोरी के अपराध में राजा उन भाइयों को कठोर दण्ड देगा। मेरा धन और मैं उसमें निमित्त बन रहा हूँ। मुझे ऐसा यत्न करना चाहिए कि मेरे उन भाइयों को कठोर दण्ड न मिले और उनका सुधार भी हो जाय।"

प्रातःकाल पौषध की क्रिया पूर्ण कर श्रावक अपने घर पर पहुंचा। घर वालों ने उसे घटना का विवरण सुनाया परन्तु उसकी विचारधारा कुछ और ही चल रही थी। उसने तिजोरी से कुछ रत्न निकाले और उन्हें लेकर राजा को रत्न समर्पित किये और निवेदन किया कि "मैं विशेष प्रयोजन से आपके पास आया हूँ। मेरे घर चोर पकड़े गये हैं। आप उन्हें दण्ड देने वाले हैं। परन्तु मैं चाहता हूँ कि आप उन्हें दण्ड न दें।"

राजा ने कहा "अपराधी को दण्ड मिलना ही चाहिए। उन्होंने तुम्हारे घर पर चोरी की है और तुम उन्हें छुड़ाना चाहते हो, यह कैसी विचित्र बात है,"

सेठ ने निवेदन किया, "महाराज ! व्यावहारिक और न्यायिक दृष्टि से अपराधी को दण्ड देना उचित है परन्तु मैं धार्मिक दृष्टिकोण को प्रधानता देकर उन्हें छुड़ाना चाहता हूँ। कल सांवत्सरिक प्रसंग से हमने 84 लाख जीवयोनियों से क्षमायाचना की है। इस प्रकार की उदात्त और उदार धार्मिक भावना लेकर हम चल रहे हैं। इसलिए आपसे निवेदन है कि उन्हें क्षमादान दे दीजिये।"

राजा ने चोरों को बुलाकर कहा, "तुमने चोरी का भयंकर अपराध किया है। मैं तुम्हें कठोर दण्ड देना चाहता था परन्तु तुमने जिस सेठ के यहां चोरी की है। वही उदारता एवं दया का सागर सेठ तुम्हें छोड़ देने का आग्रह कर रहा है। उसके निवेदन करने से मैं तुम्हें क्षमा दान करता हूँ। भविष्य में यदि कभी ऐसा अपराध करते पकड़े जाओगे तो भयंकर दण्ड भोगना पड़ेगा।"

चोरों को जब यह ज्ञात हुआ तो वे आश्चर्यचकित हो गये। वे सेठ की धार्मिक एवं उदार भावना से बड़े प्रभावित हुए। वे उस श्रावक के घर पहुंचे। उसके चरणों में गिर पड़े। सारा धन सेठ को समर्पित करते हुए बोले कि "आप जैसा उदार और विशाल दृष्टिवाला व्यक्ति हमने कहीं नहीं देखा है। आपने न केवल हमें दण्डमुक्त ही करवाया अपितु हमें अपने जीवन–सुधार की दिशा प्रदान की है। हम आपको गुरु मानते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि भविष्य में कभी चोरी नहीं करेंगे। यही गुरु दक्षिणा आपको समर्पित करते हैं।

बन्धुओं ! देखिये, मानवी धरातल पर चोरों के प्रति भी सद्व्यवहार करने से उनका हृदय किस तरह परिवर्तित हो जाता है।

❖ ❖ ❖

पल का बोया मोती निपजे

एक ज्योतिष के पंडित ने ज्योतिष विज्ञान का गहन अध्ययन किया था उसकी पत्नी प्रतिदिन उससे झगड़ा करती हुई कहती कि तुम पोथियां पढ़ते रहते हो, कमाई तो कुछ करते नहीं। ज्योतिषी ने कहा–मैं ऐसा मुहूर्त निकालूंगा जब जुवार से मोती बन जाएंगे।" पत्नी को उस पर विश्वास नहीं था। वह कहने लगी, "गप्पे हांकना जानते हो, करते धरते कुछ नहीं। जुवार से कभी मोती बन सकते हैं।"

संयोग से, आकाश में नक्षत्रों के योग का वैसा प्रसंग आया। उस पंडित ने गणित द्वारा समय का निर्धारण किया। उसने अपनी पत्नी से कहा, "देखों, अब मैं साधना करता हूँ। तुम जुवार लेकर बैठना, चूल्हे पर गरम पानी का बर्तन चढ़ा देना। जिस समय मैं "हूँ" कहूँ, उसी क्षण जुवार के दाने गरम जल के बर्तन में डाल देना। थोड़ी ही देर में वे मोती बन जाएंगे।"

पत्नी को उसकी बात पर विश्वास तो था नहीं, फिर भी वह कहने लगी, "घर में एक समय का खाना भी नहीं है, जुवार कहां से लाऊं, पंडित ने कहा–"पडौस में सेठानी रहती है, उससे उधार ले आओ।"

पत्नी पडौसिन के पास गई और बोली कि सेठानी जी मुझे 20 सेर जुवार उधार दे दीजिए।

सेठानी ने सहज भाव से पूछ लिया, "क्यों बाई, ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गई, जो जुवार उधार मांग रही हो,।" उस विद्वान की पत्नी ने कहा, मेरे पति कहते हैं कि ऐसा मुहूर्त आने वाला है जब जुवार को चूल्हे पर चढ़े हुए गरम पानी के बर्तन में डाल देने पर वह मोती रूप में बदल जाएंगे।"

सेठानी को उस विद्वान ज्योतिषी पर विश्वास था। वह मन ही मन प्रसन्न हुई और उसने 20 सेर जुवार उसको दे दी। सेठानी ने सोचा कि नक्षत्रों का योग तो आकाश में होगा। पंडित जी के घर में नहीं। यदि ऐसा योग आने वाला तो जैसे पंडित जी के घर में आएगा, वैसे ही मेरे घर में भी आएगा। उनके यहां उस समय में जुवार से मोती बन सकते हैं तो मेरे घर पर भी क्यों नहीं बनेंगे। उसने शीघ्र सिगड़ी तैयार करके गरम पानी का बर्तन उस पर रख दिया और 20 सेर जुवार पास में रख कर दीवार के पास बैठ गई। उसके कान दीवार पर लगे हुए थे।

उधर उस विद्वान की पत्नी भी पानी उबाल कर जुवार पास में लेकर बैठ गई। विद्वान ने अराधना शुरू की जैसे ही उसने "हूँ" कहा, सेठानी ने तो जुवार पानी में डाल दी किन्तु उस विद्वान की पत्नी ने "हूँ" शब्द सुनकर कहा "क्या जुवार डाल दूं" समय बहुत सूक्ष्म होता है। वह शुभ योग निकल गया।

पंडित ने माथा धूना। उसने कहा, "मैने पहले ही समझा दिया था कि "हूँ" कहते ही जुवार डाल देना। पूछने की क्या आवश्यकता थी, इस मूर्खा ने सुअवसर गंवा दिया।" उसकी पत्नी ने वह योग निकल जाने पर जुवार पानी में डाली तो वह घूघरी बन गई। उसने क्रोधित होकर कहा– ''यह क्या हुआ। यह जुवार तो घूघरी बन गई। बड़े चले थे जुवार से मोती बनाने अब मैं पड़ोसिन को 20 सेर जुवार कहां से लाकर दूंगी," उसको इतना क्रोध आया कि उसने वह बर्तन लाकर पति के सामने पटक दिया और सारी घूघरी बिखर गई।

उधर सेठानी ने बर्तन उघाडा तो उसमें मोती के दाने चमक रहे थे। 20 सेर जुवार मोती के रूप में परिणत हो गई थी। उसमें से थोड़े मोती लेकर वह उस विद्वान ज्योतिषी के घर आई। उसके सामने मोती के दाने रखे और बोली, "पंडित जी ! आपकी कृपा का परिणाम है। आपके बताये हुए मुहूर्त पर मैंने जुवार पानी में डाल दी जिससे सब मोती बन गये ! उस उपलक्ष्य में यह तुच्छ भेंट आपको समर्पित करने आई हूँ।"

यह सुनकर विद्वान को अपनी विद्या पर और अधिक विश्वास

हुआ वह अपनी पत्नी से बोला, "तुमने मुहूर्त चुका दिया ! सेठानी ने मुहूर्त साध लिया तो वह निहाल हो गई।"

यह सुनकर पत्नी के नेत्र खुले और वह रोने लगी। वह कहने लगी, "एक बार और वही मुहूर्त ले आओ।" पंडित जी ने कहा, "ऐसा दुर्लभ संयोग बार–बार नहीं आया करता। वह तो कभी–कभी आता है। जो उसका लाभ उठा लेता है, वह निहाल हो जाता है। जो उसे गंवा देता है, वह रोता रह जाता है।"

❖ ❖ ❖

दोषी कौन

एक धर्म सभा की घटना है। धर्मस्थान में सब तरह के व्यक्ति पहुंचते हैं। सेठ, साहूकार, राजा–महाराजा, नेता, गरीब, मजदूर, राह के भिखारी आदि सब आते हैं। धर्म स्थान सबको प्रश्रय देता है, सब आत्मसाधना के अधिकारी हैं। धर्मस्थान गंगा के समान होता है। वहां भेदभाव नहीं होना चाहिए। संत जन सबको समभाव से उपदेश करते हैं।

एक सम्पन्न सेठ धर्मस्थान में आया। वह आर्थिक दृष्टि से बड़ा कमजोर था। सेठ ने रात्रि के समय पौषध किया और कंठा उतारकर अपने पास रख लिया। दूसरा व्यक्ति जब धर्मस्थान में आया था तब उसकी भावना मलिन नहीं थी परन्तु सेठ का कंठा देखकर उसके मन में मलिन भावना आ गई। उसने सोचा "मैं बहुत दुखी हूँ, बाल–बच्चों का भरण पोषण भी नहीं कर पाता हूँ, मेरे पास साधन नहीं है, आजीविका चलती नहीं कोई उधार भी नहीं देता, क्या करूं, कैसे परिवार का निर्वाह करूं, क्यों न सेठ जी का यह कंठा चुपके से उठा लूं।"

धर्मस्थान में आने से भावना पवित्र बननी चाहिए परन्तु परिस्थितिवश उस भाई के दिल में मलिन भावना आ गई। वर्षा में सब वनस्पति हरी–भरी हो जाती है परन्तु जवासा सूखता चला जाता है।

परिस्थिति और संयोग की होने के कारण उस व्यक्ति के दिल में पाप आ गया और उसने वह कंठा उठा लिया।

सेठ उस समय पौषध में थे। धर्मध्यान की भावनाएं प्रबल थी। सेठ ने उसे कंठा उठाते हुए देख भी लिया था परन्तु वह चुपचाप रहा। उसने विचार किया कि "इस समय मैं व्रत में हूँ। कंठे को मैंने उतार रखा है। वह अभी मेरा नहीं है।"

सेठ शान्त भाव से पौषध में स्थिर रहा। उसने किसी से कोई चर्चा नहीं की। कितनी विशालता है सेठ के दिल की। आज तो परिस्थिति कुछ और ही है। यहां भाई–बहिनें व्याख्यान श्रवण कर रहे हैं परन्तु बहुतों का ध्यान शायद अपने जूतों और चप्पलों की ओर है कि कोई उन्हें उठा न ले जाये। सेठ का कंठा लिया गया परन्तु सेठ ने किसी से चर्चा तक नहीं की। कितना बड़ा है उसका दिल !

वह व्यक्ति कंठा चुरा कर चला गया। लेकिन उसके मन में उथल–पुथल मच गई। वह सोचने लगा "मैंने बड़ा भारी पाप किया है। धर्मस्थान में चोरी की है। अन्य स्थान पर किया हुआ पाप धर्मस्थान में आकर छुड़ाया जाता है। धर्मस्थान में किया हुआ पाप तो वज्रलेप होता है। उससे छुटकारा कहां मिलेगा, वह अपने आपको कोस रहा था और घबरा भी रहा था"। उसे भय था कि प्रातःकाल पौषध पार कर सेठ घर आएगा तो मुझे पकड़वा कर दंडित कराएगा। शंका और भय के कारण वह आकुल–व्याकुल था। उसका चित्त अशान्त था। वह पाप करना नहीं चाहता था परन्तु परिस्थिति ने उसे लाचार बना दिया था। वह आदतन अपराधी नहीं था। अतः उसे अपने इस कार्य पर बहुत खेद हो रहा था।

प्रातःकाल सेठ पौषध पार कर अपने घर पहुंचा। सेठ के गले में कंठा न देखकर परिवार और दुकान के लोगों ने पूछा तो सेठ ने कहा–चिन्ता न करो, वह ठिकाने पर है। सेठ ने गंभीर दृष्टि से विचार किया, "इन्सान परिस्थितियों का दास है। वह पाप करना नहीं चाहता परन्तु परिस्थितियां उसे लालची बना देती है। उस व्यक्ति ने कंठा चुरा लिया है, निश्चित ही वह बहुत परेशान और दुखी होगा। यह मेरा अपराध है कि मैंने सम्पन्न होते हुए भी दूसरे साधार्मिक भाइयों की

सार–संभाल नहीं की। यदि मैं पहले ही अपने इस कर्तव्य का पालन करता तो उस व्यक्ति को यह पाप करने का प्रसंग नहीं आता।" सेठ को अपने साधार्मिक के प्रति उपेक्षा–भाव रखने का पश्चाताप हो रहा है। उधर वह व्यक्ति भी पश्चाताप कर रहा है। परन्तु उसको अपनी समस्या का समाधान नहीं मिल रहा है। दोपहर तक उसने राह देखी कि सेठ क्या करता है, सेठ के घर के पास होकर वह निकला, सेठ की और उसकी दृष्टि मिली भी लेकिन सेठ ने कुछ नहीं कहा। तब उसके मन में आया कि सेठ का दिल बहुत बड़ा है। यह कुछ कहने वाला नहीं है। वह कुछ आश्वस्त हुआ।

अब उसके सामने समस्या है कि इस कंठे को गिरवी रखकर रुपये कहां से प्राप्त करे, वह सोचता है कि यदि अन्यत्र कहीं गिरवी रखता हूँ तो चोरी की शंका में पकड़वा दिया जाऊंगा। अतः उसी बड़े दिल वाले सेठ के यहां कंठा गिरवी रखकर रुपये प्राप्त करूं तो ठीक रहेगा।

दिन के पिछले भाग में वह कंठा लेकर उसी सेठ के पास गया। लज्जित और भयभीत होते हुए उसने कहा, "मैं मुसीबत में फंसा हुआ हूं। कृपया यह कंठा गिरवी रख लीजिये और दस हजार रुपये दे दीजिये। वह कंठा उसने उनके सामने रख लिया। सेठ समझ रहा था कि यह मेरा ही कंठा है किन्तु वह यह भी समझ रहा था कि यह व्यक्ति अत्यन्त ही मुसीबत का मारा हुआ है। उसने कहा–"अच्छा तुम दस हजार रुपये ले जाओं और यह कंठा भी ले जाओ। मुझे तुम्हारा विश्वास है।" उस व्यक्ति ने आग्रह करके कंठा सेठ के यहां गिरवी रख दिया और दस हजार रुपये ले लिये। वह व्यक्ति सोच रहा था कि यह सेठ सचमुच देव–पुरुष है। सेठ के विचारों में बहुत ही विशालता और उदारता आ गई थी। उसकी मानवता प्रबुध्द हो उठी थी। स्वधर्मी वात्सल्य की उर्मिया उसके हृदय में हिलोरें ले रही थीं। तभी ऐसा व्यवहार हो सकता है, अन्यथा अपना ही चुराया हुआ माल अपने यहीं गिरवी रखने कोई आवे उस समय अन्य उसके प्रति कैसा और क्या व्यवहार करेंगे, यह मुझे बताने की आवश्यकता नहीं है।

वह सेठ और सेठानी मानवता का पाठ पढ़े हुए थे। सेठानी

सेठ से दो कदम और आगे थी। उसने सेठ से कहा, "आपने अपने साधार्मिक भाई का कंठा गिरवी रखकर रुपये दिये," तब सेठ ने कहा–मैं तो कंठा उसे वापस दे रहा था, परन्तु वह बहुत आग्रह करने लगा, अतएव रख लिया। जिन परिवारों में धार्मिक संस्कार होते हैं, जहां स्वधर्मी बन्धुओं के प्रति आत्मीय भावना जागृत रहती है, उन परिवारों के सदस्यों में कितनी उदार भावना आ जाती है, यह इस उदाहरण के द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

कालान्तर में उस व्यक्ति ने दस हजार रुपयों से व्यापार शुरु किया और उसे लाभ होने लगा। उसने द्रव्य कमा लिया। उसके दिल पर सेठ के उदार व्यवहार का बहुत प्रभाव पड़ा था। वह सेठ को अपना उपकारी मान रहा था। कृतज्ञता के भार से दबा हुआ वह व्यक्ति दस हजार रुपये और उचित ब्याज लेकर सेठ के पास पहुँचा और उन्हें रुपये दे दिये। उस व्यक्ति की आँखों में आंसू आ गये और वह कहने लगा, "सेठ साहब, क्षमा करना, यह कंठा आपका ही है। मैंने परिस्थितिवश धर्मस्थान में इसे चुरा लिया था। मैं अत्यन्त पापी, अधर्मी और अनैतिक हूँ। आप मानव नहीं, देव हैं। आपकी उदारता, दिल की विशालता और गंभीरता ने मेरे जीवन को बदल दिया है। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। किन शब्दों में आपका आभार व्यक्त करूं, समझ नहीं पड़ता। सेठ साहब मुझे क्षमा कीजिये।"

सेठ ने उसे आश्वासन देते हुए कहा, "भाई ! अधीर न बनो। तुम्हारा कोई दोष नहीं है। यह तो मेरा अपराध है कि मैंने तुम्हारी सार संभाल नहीं की। अतएव तुम्हें गलत मार्ग पर कदम बढ़ाने के लिए मजबूर होना पड़ा।"

❖ ❖ ❖

मंत्री का उपदेश : सम्राट में परिवर्तन

"तेणं कालेणं तेणं समएणं" उस काल उस समय में चप्पा नामक सुरम्य नगरी के राजा जितशत्रु और प्रधान अमात्य सुबुद्धि थे।

जितशत्रु सम्राट की धर्म के प्रति रुचि कम थी। किन्तु सुबुद्धि प्रधान जीवा–जीव के विज्ञाता तथा बारह व्रतधारी श्रमणोपासक थे। दोनों में धार्मिक भिन्नता होते हुए भी परस्पर किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं था। शत्रुओं का नगर में प्रवेश नहीं हो सके, तदर्थ दुर्ग के बाहर चारों ओर विशाल खाई थी। जिसका पानी चर्बी, मांस, पीब के समूह से मिश्रित था। कुत्ते, मार्जार आदि मृत कलेवरों से संयुक्त था। गंध, रस, स्पर्श आदि से वह अत्यधिक विकृत बना हुआ था। उस पानी को "परिहादए" परिखोदक के नाम से सम्बोधित किया जाता था।

किसी समय सम्राट स्नानादि कार्यों से निवृत्त हो सर्वालंकारों से विभूषित होकर जब भोजन करने के लिए रमणीय आसन पर बैठे थे, तब उनके साथ अन्य अनेक राजेश्वर, अमात्य, सार्थवाह आदि भी उपस्थित थे। सभी ने सुस्वादित असणं–पाणं, खाइमं, साइमं चारों प्रकार का आहार किया। भोजनोपरान्त सम्राट ने उपस्थित व्यक्तियों को सम्बोधित करते हुए कहा–

हे देवानुप्रियों, यह तृप्तिकारक अंशनादि शुभ वर्णादि से युक्त है। आस्वादनीय है, स्वादनीय है। समस्त इन्द्रियों को तृप्ति देने वाला है। जठराग्नि का उदीपक, बलवर्धक आदि अनेक विशेषताओं से सम्पन्न है।

सम्राट की बातों को सुनकर उपस्थित अनेक व्यक्तियों ने कहा स्वामिन् जैसा आप फरमाते हैं, अंशनादिक उसी प्रकार का है। अपनी बात का समर्थन सुनकर प्रधान अमात्य से भी सम्राट ने यही बात कही किन्तु सुबुद्धि प्रधान ने अन्यों की तरह सम्राट की बात का समर्थन नहीं किया, प्रत्युत मौन रहे। सम्राट के द्वारा दो बार, तीन बार अपनी बात के दोहराने पर सुबुद्धि ने कहा राजन ! मुझे इस प्रकार के अंशनादिक से किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं है। क्योंकि राजन ! व्रब्भि सद्यणि पुग्गला दुब्भि सद्यलाए परिणमुंति दुब्भि। जिस प्रकार शुभ शब्द रूप पुद्रगल और अशुभ शब्द रूप पुदगल परस्पर परिणमित हो जाते है। उसी प्रकार गन्ध, रस, स्पर्श, में भी परिणमन होता रहता है। यह परिणमन प्रायोगिक और नैसर्गिक दोनों प्रकार से होता है।

सुबुद्धि प्रधान की इस विवेकपूर्ण बात सुनकर सम्राट संतुष्ट

नहीं हुआ किन्तु बात आगे न बढ़े इस दृष्टिकोण से मौन रहा। कुछ दिवसान्तर में जब अश्व क्रीडा के लिए अपने सुभटों के साथ नगर से बाहर निकले, तब बाहर परिखोदक से भयंकर दुर्गन्ध फूट रही थी। सम्राट सहित प्रायः सभी सुभट उस भयंकर दुर्गन्ध से अभिभूत होकर नासिका पर दुपट्टा लगाकर शीघ्रता से खाई पथ को पार करने लगे। चलते हुए सम्राट की बात का प्रायः सभी ने समर्थन किया किन्तु सुबुद्धि प्रधान मौन थे। सम्राट ने जब उनसे भी एतद् विषयक प्रतिक्रिया करने के लिए बहुत आग्रह किया, तब प्रधान समदृष्टि भाव से उदासीनता पूर्वक बोले :–

राजन ! इस दुर्गन्ध से मुझे कोई आश्चर्य नहीं है। यह तो पुद्गलों के परिवर्तन की विचित्रता का ही परिणाम है। सज्जनों। जीवाजीव के विज्ञाता श्रावक किसी के दबाव से सत्य तथ्य छिपाकर कभी भी अन्य को खुश करने के लिए असत्य बात का समर्थन नहीं करते। सुबुद्धि श्रावक ऐसा ही श्रावक था। जिसने ऐसी विकट परिस्थितियों में भी किसी प्रकार की परवाह नहीं करके सत्य तथ्य को सम्राट के समक्ष रख ही दिया। किन्तु इस बार सम्राट आक्रोश में आ गए और सुबुद्धि प्रधान से बोले है देवानुप्रिये ! अविद्यमान तत्वों के प्रतिपादन से तथा मिथ्याभिनिवेश से इस तरह की प्ररूपणा मत करो। इस प्रकार की झूठी प्ररूपणाओं द्वारा अपने को एंव दूसरों को भ्रमित मत करो।

सम्राट के आक्रोश पूर्ण शब्दों को सुनकर के भी सुबुद्धि प्रधान के मन में किसी प्रकार का विचार नहीं आया। वे अपने सत्य पर अविचल बने रहे साथ ही मन में विचार हुआ सम्राट को जब तक पुदगलों के परिवर्तन का प्रत्यक्षीकरण नहीं होगा, तब तक वे इस तथ्य को स्वीकार नहीं करेंगे। यह सोच कर सुबुद्धि प्रधान ने गुप्त रूप से परिखोदक को अर्थात दुर्गन्ध पूर्ण कुछ पानी को घड़ों में भरवाया और सात दिन–रात तक उसी प्रकार रखकर पुनः दूसरे घड़ों में वही पानी भरवाया। इस बार उसे फिल्टर करने के लिए क्षार पदार्थ भी डलवा दिया और लाक्षादिव से मुहर लगवा दी। सात दिन–रात उस पानी को उस प्रकार रखने के बाद पुनः नये घड़ों में उस पानी

को भरवाया। यही प्रक्रिया सात बार की गयी। इस प्रकार की प्रक्रिया से पानी बहुत स्वच्छ, मधुर एवं आरोग्य प्रद बन गया। उसे और अधिक मधुर एवं सुगन्धित बनाने के लिए केतकी, गुलाब, आदि पुष्पों में संस्कारित किया। जब वह उदकरत्न अत्यधिक मधुर एवं सुगन्ध पूर्ण बन गया तब सुबुद्धि प्रधान ने इस पानी को राजा जितशत्रु को पिलाने के लिए भृत्य–नौकर को सौंप दिया। सम्राट जितशत्रु उस पानी को पीकर बहुत प्रसन्न हुए और उदकरत्न की प्रशंसा करते हुए भृत्य को इसकी उपलब्धि के विषय में पूछने लगे। तब भृत्य ने बताया कि यह सुबुद्धि प्रधान के यहां से लाया गया है।

तत्क्षण सम्राट ने सुबुद्धि प्रधान को बुलाकर कहा अहो तुम्हारे यहां इतना मधुर उदक रत्न होते हुये भी तुमने मुझे नहीं पिलाया। क्या कारण है कि मैं तुम्हारा अप्रिय बना हुआ हूँ। प्रधान ने कहा राजन ! यह उसी परिखोदक का पानी है। सम्राट का आश्चर्य हुआ कि दुर्गन्ध पानी ऐसा मधुर सुस्वादनीय कैसे बन गया। सुबुद्धि प्रधान ने कहा राजन ! मैंने आपको पहले ही निवेदन किया था कि पुद्गलों के परिवर्तन से अशुभ भी शुभ रूप में परिवर्तित हो जाता है। इतने पर भी जब सम्राट को विश्वास नहीं हुआ कि यह पानी परिखोदक का ही है तब सुबुद्धि प्रधान ने पानी को शुद्ध करने की सारी प्रक्रियाएं सम्राट के सामने प्रत्यक्ष की। इस प्रत्यक्षीकरण से सम्राट को आश्चर्य हुआ, साथ ही जिज्ञासा भी कि सुबुद्धि प्रधान ने ऐसा विशिष्ट ज्ञान कहां से प्राप्त कर लिया। जिज्ञासा का समाधान किया सुबुद्धि प्रधान ने राजन ! मुझे ऐसा अब सदभूत भाव रूप विशिष्ट ज्ञान जिन वचनों से प्राप्त हुआ है। इससे सम्राट का भी धर्म की ओर आकर्षण हुआ और उसने सुबुद्धि प्रधान से जीवाजीव का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही, सुबुद्धि प्रधान से पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये बारह व्रत अंगीकार किये। इस प्रकार सम्राट पुद्गलों के स्वरूप को समझ कर उसी की आसक्ति से टल कर आत्माभिमुख बनने लगे।

❖ ❖ ❖

संस्कारों का महत्व

कोमल वय में पड़े हुए सुसंस्कार और कितने प्रभावशाली होते हैं, इसको समझने के लिए एक उपयोगी रूपक इस प्रकार है :–

एक राजा घोड़े पर सवार होकर जंगल में हवाखाने की दृष्टि से निकला। घोड़ा पवन वेगी था। राजा जहां ठहरना चाहता था, वहां वह न थम कर वेग के साथ भाग कर सघन वन में पहुंच गया। राजा हैरान था। वह भूख प्यास से पीड़ित था। संत्रस्त होकर वह सोच रहा था कि किसी स्थान पर विश्राम का संयोग जुड़ जाय। उस वीरान जंगल में कुछ झोपड़ियां नजर आई। राजा को कुछ शांति का अनुभव होने लगा। झोपड़ियों में मानव का स्थान होना चाहिए। जैसे ही राजा वहां पहुंचा उसने तोते को वृक्ष की टहनी पर बैठे हुए देखा। तोते ने ज्यों ही राजा को देखा वह जोर–जोर से चिल्लाने लगा "लटयताम् लुटयताम्"। राजा संस्कृत भाषा जानता था उसने समझ लिया कि यह तो किसी को लूटने की सूचना दे रहा है। यहां से बच निकलना चाहिए। राजा ने घोड़े को शीघ्र गति से आगे बढ़ाया।

आगे बढ़ने पर राजा को कुछ और झोपड़ियां नजर आई राजा सोचने लगा कि यहां भी कहीं वही दशा न हो। ज्यों ही समीप आया, उसने वहां भी वृक्ष पर बैठा हुआ तोता देखा। राजा को देख कर तोता बोलने लगा। "स्वागतम, सुस्वागतम, आगम्यताम, तोते की आवाज को सुन कर एक ऋषि कुटिया से बाहर आया और उसने राजा को आश्वस्त करते हुए कहा कि आप यहां विश्राम कर सकते हैं। राजा वहां ठहर गया। उसने शांति का अनुभव किया। परन्तु उसके मन में यह जिज्ञासा बलवती हो रही थी कि समान वन, समान झोपड़ियां और समान तोते होने पर भी दोनों की वाणी दो तरह की क्यों है। अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए उसने ऋषि से पूछा कि "ऋषिवर ! दोनों तोतों की वाणी में इतना अन्तर होने का क्या

कारण है।" ऋषि ने उत्तर दिया, "राजन ! वह तोता लुटेरों की संगति में रहता और लुटेरे उससे गुप्तचर का काम लेते हैं। उसकी सूचना पाकर वे पथिकों को लूटते हैं। तुम सुज्ञ हो, अतएव वहां से बच निकले। यह तोता ऋषियों के सम्पर्क में रहता है, इसे सुन्दर संस्कार दिये जाते हैं। यही कारण है कि यह अपने यहां आये हुए का "स्वागतम" कहकर स्वागत करता है।

राजा ने भी प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया कि संस्कारों के आधार पर जीव का निर्माण होता है। कोमल वय के बालकों को जैसे संस्कार मिलेंगे, उसी के अनुसार उसका जीवन बनेगा। अतएव यदि आप अपने बालकों को सुयोग्य बनाना चाहते हैं तो आपको इसी विषय में सतर्क रहना चाहिए।

❖ ❖ ❖

धर्म की विजय

जैन संस्कृति में वर्णन आता है कि अकम्पन आचार्य सात सौ शिष्यों के साथ उज्जैन में पधारे। उज्जैन के सम्राट के दीवान आदि नास्तिक थे। आत्मा के स्वरूप को नहीं मानते हुये भौतिकता को प्रश्रय देते थे। सन्तों की मजाक उड़ाते थे। धार्मिक जीवन को खराब समझते थे। क्रूर वृत्ति वाले थे। खास तौर पर श्रमणसंस्कृति पर उनकी अधिक क्रूरता थी। सम्राट अकप्पनाचार्य के दर्शनों के लिये जाने की तैयारी करने लगा तो दीवान ने कहा कि क्या पड़ा है वहां, कोई तथ्य नहीं है, परन्तु सम्राट गये तो उनको भी जाना पड़ा। साथ में अकम्पन आचार्य को पहले ही जानकारी थी, अतः सब शिष्यों को सूचना कर दी कि सम्राट आ रहे हैं, परन्तु उनका दीवान जिज्ञासु वृत्ति वाला नहीं है। वह दूसरों को परास्त करके स्व अहंकार को तृप्त करना चाहता है। ऐसे व्यक्तियों से बोलना श्रेयस्कर नहीं है। सम्राट उन सब अधिकारीगण के साथ दर्शन करके बाहर निकले तो दीवान आदि नास्तिक मत वालों ने मजाक की कि कुछ बोले नहीं अरे ! कुछ

आता तो बोलते। बस ! मूक बनकर बैठ गये। परन्तु योग से रास्ते में आचार्य श्री के दो शिष्य, भिक्षावृत्ति लेकर आ रहे थे। सम्राट ने एक वृक्ष के नीचे, उनके दर्शन किये। पीछे से दीवान आदि भी पहुंच गए और उनसे प्रश्न करने लगे। उन्होंने उसी ढंग से उसका जवाब दिया, जिसे सुन उनके अहंकार की स्थिति डांवाडोल हो गई।

जब व्यक्ति के अहंकार को चोट लगती है तो वह तिलमिला उठता है। दीवान ने देखा कि अरे ! इनमें तो ज्ञान–विज्ञान बहुत है। यदि ये कुछ दिन टिक गए तो हमारी अहंकार की वृत्ति पनप नहीं सकेगी। रात्रि में षडयन्त्र रचा–प्लान बनाया और मुनियों की घात करने की सोची, नंगी तलवारें लेकर निकल गए। अकम्पन आचार्य ने अपने ज्ञान के माध्यम से दोनों शिष्यों से पूछा कि तुम्हें रास्ते में कोई मिला था, उन्होंने कहा–हाँ। सम्राट और दीवान मिले थे, दीवान ने हमसे प्रश्न किए थे और हमने उत्तर दिए। आचार्य श्री ने कहा कि मैंने शिष्यों को आदेश दिया उसके पहले ही तुम भिक्षा के लिए चले गये। इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। परन्तु बोलना नहीं चाहिए था।

क्योंकि ऐसे अहंकारी पुरुष से बोलना योग्य नहीं रहता, तुम्हारे उत्तर से वे खिन्न हो गये हैं, सात सौ मुनियों पर आपत्ति आने वाली है, अतः तुम शक्ति से रोको। दोनों मुनि सूर्यास्त से पहले रात्रि निवास करने का सोच लेते हैं। शास्त्रीय विधान है कि आवश्यकता के अनुसार वृक्ष के नीचे भी मुनि ठहर सकते हैं, आचार्य की आज्ञा से वे मुनि उसी वृक्ष के नीचे ध्यान में खड़े हो गए। आध्यात्मिक उज्जवल धारा बहने लगी। आधी रात्रि को दीवान और उसके साथी जहर लिप्त नंगी तलवारें लेकर आए। वे सात सौ मुनिराजों की घात करना चाहते थे। किन्तु रास्ते में वे दोनों मुनि मिल गए। सोचा कि पहले यहीं मंगलाचरण कर लो, तलवारें उठा ली, मारने के लिए। तलवारें उठ तो गई परन्तु आध्यात्मिक बल जहां होता है, वहां भौतिक बल टिक नहीं सकता।

आध्यात्मिक बल की ताकत बहुत बड़ी होती है, दोनों मुनि ध्यानस्थ खड़े थे। उनकी तलवारें ऊपर ही रह गयी हाथ खम्बे की तरह खड़े ही रहे। रात्रि भर दोनों मुनियों के ध्यान था और इनके भी

ध्यान हो गया है। भगवान ने चार प्रकार के ध्यान बताए हैं–आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान। चार ध्यानों में से यह आत्मा किसी न किसी ध्यान में रहती ही है। दीवान आदि का ध्यान क्रूर था, तलवारें, लेकर वहां खड़े हुए थे और मुनियों का ध्यान धार्मिक था। जब प्रातःकाल हुआ, सूर्य की प्रभा आने लगी, लोग बाहर निपटने के लिए आने लगे। लोगों ने देखा तो उनके रोंगटे खड़े हो गए कि अरे ! मुनियों पर उन्होंने तलवार उठाई। ये सारे विश्व के प्राणियों का घात करने वाले हैं। क्योंकि सारे प्राणियों के संरक्षक अभय दान देकर चलने वाले इन धर्मी पुरुषों पर तलवार उठाई है। सम्राट घटनास्थल पर दौड़कर गये और उनको पकड़वाया। प्रातःकाल का समय हो गया था। अतः मुनिराज ध्यान पूर्ण कर आचार्य प्रवर की सेवा में पहुंच गए। सम्राट ने उन दीवान आदि को देश निकाला दे दिया। दीवान ने सोचा कि इन मुनियों ने हमारी बेइज्जती कराई है। अब इन से बदला लेना है। वह दीवान वहां से चलकर एक चक्रवर्ती महाराज के राज्य में पहुंच गया और अपनी कला से वहां का मंत्री बन गया।

आचार्य श्री भी शिष्यों के साथ उसी नगर में पहुंच गये। दीवान ने वहां ऐसा कार्य किया था कि वहां के राजा के मुंह लग गया। एक दिन सम्राट ने खुश होकर वरदान देने को कहा तो उसने कहा–अभी आपके भण्डार में रहने दीजिये जब आवश्यकता होगी तब मांग लूंगा। अब इसने सोचा अकम्पन आचार्य आ गए हैं और चक्रवर्ती का छः खण्डों में राज्य है। राजा ने वरदान देने के लिए कह रखा है। अब अच्छा मौका है, मेरे अपमान का बदला लेने का। अब वरदान मांग लूं। उसने सम्राट से वरदान मांगा। महाराज ने पूछा क्या वरदान मांगते हो, दीवान ने कहा–हुजूर ! मैं आठ रोज के लिए सर्व सत्ता के साथ राज्य माँगना चाहता हूँ, वह मिलना चाहिये। आप अन्तःपुर में चले जायें, किसी प्रकार का आपका हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। चक्रवर्ती महाराज ने वचन दे रखा था। अतः सारा राज्य मंत्री के हाथों में देकर महल में चले गये। दीवान सिंहासन पर बैठ गया। इसने सात दिनों में सात सौ मुनियों का काम तमाम करने का विचार कर लिया। कोई कुछ भी नहीं कर सकता था। सारे नगर में तहलका मचा

हुआ था कि अब क्या होगा। इसी समय दो मुनि गुरु के शिष्य किसी गुफा में ध्यान कर रहे थे। स्वाध्याय कर रहे थे। आकाश का पलेवन करने के लिए उनके गुरु बाहर निकले तो देखा कि श्रावण मास की पूर्णिमा आज श्रावण नक्षत्र रहा है। इसे देख जोर से बोल उठे कि अहो कष्टम ! अहो कष्टम ! भयंकर विपत्ति ! भयंकर विपत्ति ! ये गुरु के शब्द शिष्य ने सुने तो सोचा कि गुरुदेव पर कोई आपत्ति आ गई है, बाहर आया और पूछा–गुरुदेव क्या हुआ ! गुरुदेव ने कहा कि आज सूर्योदय होते ही सात सौ मुनियों की घात होने वाली है। शिष्य ने पूछा कि ऐसे समय में कुछ हो सकता है। तो गुरुदेव ने कहा कि ऐसे समय में रक्षा करने वाली ताकत तो लब्धिधारी मुनि में हो सकती है। चक्रवर्ती महाराज के छोटे भाई जो मुनि बने हुए हैं वे अन्य गुफा में ध्यान कर रहे हैं, उनमें यह लब्धि है। वे यदि रक्षा का बीड़ा उठायें तो साधकों की बहुत बड़ी रक्षा का प्रसंग है। पर उन्हें सूचना कौन दे, तब शिष्य ने कहा कि गुरुदेव ! कुछ लब्धि तो मुझ में प्रकट हुई है। मैं वहां तक जा तो सकता हूँ, परन्तु आ नहीं सकता। तब गुरु ने कहा कि कोई बात नहीं। तुम वहां पहुँच जाओ और उनको सूचना दे दो कि लब्धि प्रयोग से सूर्योदय होते ही राजधानी में पहुँच जायें।

शिष्य गया और विष्णुकुमार मुनि के समक्ष सारी स्थिति स्पष्ट की और कहा कि आप वहां पहुँचिए और रक्षा कीजिये। विष्णु कुमार मुनि लब्धि प्रयोग से वहां पहुँचे और सम्राट से जाकर मिले। कहने लगे राजन ! आपने छः खण्ड साधे और ऐसे ऐसे गैर दीवान को हुकूमत की इजाजत दे दी। उसने ऐसा ऐलान करवा दिया है कि सूर्योदय होने से पहले–पहले सात सौ मुनियों की घात हो जायेगी। सम्राट ने कहा–क्या करूं, मैंने तो जबान दे दी है। अब मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूँ। सूर्योदय होने पर ही मैं मुँह खोल सकता हूँ। विष्णुकुमार मुनि ने कहा कि यदि पहले ही यह मामला हो जाएगा तो आप क्या कर सकते हैं, तो सम्राट ने कहा कि उसमें छः खण्ड की ताकत है। मुझे भी जेल में डाल सकता है। परन्तु आप यह कार्य कर सकते है। तब विष्णु कुमार मुनि दीवान के पास पहुँचे। दीवान अभी चक्रवर्ती पद को लेकर चल रहा था। उसे जाकर कहा कि आप यहां

यज्ञ कर रहे हो, तो दान देने की स्थिति भी होनी चाहिये। दीवान ने कहा–हाँ दे सकता हूं आपको। परन्तु उन मुनिराजों को नहीं दे सकता हूँ। मुनि ने कहा उनको मत दीजिए। परन्तु मैं तो चक्रवर्ती का छोटा भाई हूँ और मुनि बनकर आया हूँ। मुझको स्थान दीजिए। उसने पूछा क्या चाहते हो। विष्णुकुमार मुनि ने कहा कि साढ़े तीन कदम जमीन चाहिए। दीवान ने कहा–बस, ! साढ़े तीन कदम जमीन चाहिये ! अच्छी भूमि ले लीजिये। ज्यों ही दीवान ने भूमि को देने के लिये वचन दिया, तब विष्णुकुमार मुनि ने विराट रूप बनाकर तीन पैर में सारी जमीन माप ली, अब आधा पैर कहां रखा जा सकता था।

पुराण की कथा के अनुसार बतलाया जाता है कि उस पर (दीवार पर) पैर रखकर उसे पाताल भेज दिया, किन्तु विष्णुकुमार मुनि परम दयालु थे, जैन परम्परा के अनुसार उन्होंने दीवान की बुद्धि का दमन कर दिया, उसे प्रतिज्ञा करवा दी कि कभी ऐसा अनर्थकारी कार्य नहीं करुंगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करवा कर उसे अभय दान दे दिया। इस प्रसंग से जैन परम्परा के अनुसार रक्षा बन्धन का पर्व सामने आता है।

❖ ❖ ❖

रक्षा-सूत्र का प्रभाव

जब मेवाड़ के शासक राणा साँगा थे। उस समय गुजरात के सम्राट बहादुरशाह ने मेवाड़ के गढ़ चित्तौड़ को हस्तगत करने के लिये उसके चारों ओर घेरा डाल दिया। कई वर्ष व्यतीत हो गये इस प्रकार के घेराव में रहते हुए चितौड़ की नागरिक जनता का जीवन अस्त–व्यस्त हो गया। इधर मेवाड़, शक्तिशाली सम्राट बहादुरशाह का सामना करने में अपने आपको असमर्थ महसूस कर रहा था। उस समय मेवाड़ एक विकट मोड़ पर खड़ा था। सभी मेवाड़ी चिंतित थे।

ऐसी स्थिति में मेवाड़ की महारानी कर्मवती ने मेवाड़ की सुरक्षा के लिये सूझ–बूझ का परिचय दिया। उसने कुल, वंश का

विचार किये बिना ही मानव जाति की एकता को लक्ष्य में रखकर मेवाड़ की रक्षा के लिए दिल्ली के बादशाह हुमायूँ को रक्षा–सूत्र "राखी" भेज दी।

राखी भेजने का तात्पर्य होता है। तुम मेरे भाई हो, अब मेरी रक्षा तुम्हारे हाथों में है।

बादशाह हुमायूँ, कर्मवती के रक्षा–सूत्र को देख सोचने लगे अहो ! मेवाड़ी क्षत्राणी ने मुझे राखी भेज कर भाई बनाया है। अतः मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मैं जाकर महारानी के साथ सारे चित्तौड़ का रक्षण करूं। बादशाह ने बंग देश की विजय के लिये सजाई हुई सेना को मोड़ दिया और विजय के स्थान पर रक्षा के लिये चल पड़े मेवाड़ की ओर। बादशाह की विराट शक्ति के समाने बहादुरशाह की शक्ति कहाँ टिकने वाली थी। अन्त में बहादुरशाह पराजित हुआ और चित्तौड़ की रक्षा हुई।

हुमायूँ ने यह नहीं सोचा की बहादुरशाह तो मेरा जाति भाई है, उसे पराजित कर एक विधर्मी की रक्षा क्यों करूं। वहां जाति का महत्व नहीं रहा, वहां रक्षा का महत्व बन गया। रक्षा–सूत्र की पवित्रता से हुमायूँ के विचारों में कितना परिवर्तन हो गया था।

❖ ❖ ❖

दो व्यापारी

एक गांव में दो व्यापारी रहते थे। छोटा गांव होने के कारण विशेष व्यापार नहीं चल पाता था। थोड़ा बहुत घर खर्च निकल जाता था। इससे व्यापारियों की लालसा पूरी नहीं हो पाती थी। दोनों ने परस्पर विचार किया और एक, दिन अधिक धन कमाने के लिये पेट नहीं पेटी भरने के लिये गांव छोड़ कर शहर की ओर प्रस्थान कर गये।

प्राचीन युग में आज की तरह तो साधन नहीं थे। जिससे मोटर–कार, हवाई जहाज आदि साधनों से दूर यात्रा स्वल्प समय में

तय की जा सके। उस समय तो प्रायः पैदल या ऊंट, घोड़े, बैलगाड़ी आदि पर यात्रा की जाती थी। ये दोनों व्यापारी पैदल ही यात्रा कर रहे थे। रास्ता कच्चा था और रास्ता बताने वाला मार्ग निर्देशक भी कोई साथ में नहीं था। चलते–चलते रास्ता भूल गए। घोर जंगल में आ फंसे, सूर्यास्त होने की तैयारी थी। क्या किया जाय इस समय, यही चिन्ता उनको सता रही थी। यदि इसी जंगल में रात्रि बिताई जाएगी तो निश्चित ही जंगली हिंसक जन्तु उनको खा जायेंगे। इधर कोई रास्ता भी नजर नहीं आ रहा था। इसी चिन्ता में उन्हें पहाड़ की टेकरी पर एक झोंपड़ी नजर आई, विचार किया क्यों न ऊपर चढ़ा जाय, झोंपड़ी में कोई न कोई तो रहता ही होगा न भी हो तो भी अपनी तो रक्षा हो सकेगी। इन्हीं विचारों में खोए समय की स्वल्पता को देख वे जल्दी–जल्दी पहाड़ पर चढ़ने लगे।

अन्धेरा होते–होते तो वे झोंपड़ी तक पहुँच ही गये। झोंपड़ी में जाकर देखा तो वहां उन्हें एक ध्यानस्थ योगी नजर आए। जिनका चेहरा बहुत ही शान्तप्रशांत परिलक्षित हो रहा था। परन्तु हीरे की परीक्षा तो जौहरी ही कर सकता है, कंगला नहीं। इन दोनों व्यक्तियों का तो व्यापारी मस्तिष्क था, वे अपने ही दृष्टिकोण से सोचने लगे–यह कोई जंगली व्यक्ति लगता है। दिन भर जंगल में घूम–घूमाकर रात को यहां आकर पड़ा रहता होगा।

व्यापारियों ने संबोधित किया उस योगी को अरे ओ जंगली ! अमुक शहर का रास्ता कहां जाता है। योगी बहुत चतुर और व्यवहार कुशल था। यद्यपि योगी के सांसारिक संबंध नहीं थे तथापि वह जैन साधु भी नहीं, संन्यासी था। यौगिक साधना की भूमिका पर चल रहा था। जिस साधना के बल पर वह व्यक्ति की प्रकृति को पहचानते देर नहीं करता था। योगी ने इनको देखते ही पहचान लिया कि ये कोई व्यापारी है। किन्तु अभी घबराये हुए हैं। व्यापारियों ने तो योगी को जंगली कहा था किन्तु इस उच्चारण से योगी नाराज नहीं हुआ। वह योगी ही क्या, जो थोड़ी सी बात के पीछे नाराज (क्रोधित) हो जाए और अपनी परिश्रम–साध्य तप–साधना को क्रोधाग्नि में जला कर भस्म कर डाले।

योगी ने बहुत ही स्नेह के साथ कहा–भैया ! अन्दर आ जाओ, बैठो कुछ क्लान्ति–परिहार कर लो फिर अगले कार्यक्रम पर विचार करना। व्यापारियों ने योगी की बात को सुनकर विचार किया–अरे ! इसकी भाषा तो बहुत ही शिष्ट सभ्य है। जंगलियों की ऐसी भाषा नहीं होती।

दोनों व्यापारी अन्दर आ गए और बैठ गए। योगी ने पूछा कहां रहते हो, तब व्यापारियों ने अपनी सारी स्थिति बता दी और यह स्पष्ट कर दिया कि हम धन कमाने बड़े देश में जा रहे हैं योगी ने कहा–अच्छा ! लेकिन अभी तो रात हो गई है अतः रात्रि विश्राम यहीं कर लो। मालूम होता है तुम दोनों भूखे–प्यासे हो। देखो, पहाड़ी के उस किनारे पानी का झरना है, वहां पानी पी लो फिर मेरे लिये जो भोजन आया है उसे कर लो।

वास्तव में इन दोनों को भी बहुत जोर से भूख लगी थी। दोनों ने पहाड़ी झरने में हाथ–मुंह धोकर योगी के लिये आए भोजन को ग्रहण किया, उदर तृप्ति की।

योगी ने विचार किया इन लोगों को पता नहीं है कि शांति किस में है, कितना भी धन–वैभव प्राप्त कर लें लेकिन व्यक्ति कभी शांति प्राप्त नहीं कर सकता। सुख इन भौतिक तत्वों में नहीं है लेकिन इन्हें समझाया कैसे जाय। सिद्धान्त की दृष्टि से इन्हें कितना भी समझाया जाय इन पर कुछ भी असर पड़ने वाला नहीं है। इन्हें प्रायोगिक रूप से ही समझाना होगा।

योगी ने उनकी मनः स्थिति को देखते हुए, इनके मनोनुकूल ही आदेश देना प्रारम्भ किया। पूछा तुम दोनों को कितना धन चाहिये, दोनों ही विचार में पड़ गये। कितना बतलाया जाय, क्योंकि मानव की इच्छा तो शैतान की आंत की भांति बढ़ती ही जाती है। जितना बतलाया जाय उतना ही कम है।

संसार का सारा ही धन उसे दे दिया जाय तो भी उसकी लालसा पूर्ण होने वाली नहीं है। उनको विचारों में खोए देखकर स्वयं योगी ने ही कहा–तुम्हें खाने के अतिरिक्त धन मिल जाय तो कैसे क्या रहे, तब तो दोनों ही बोल उठे हां, हां, बस–बस इतना धन पर्याप्त है।

आप हमें इतना ही दे दीजिये। हम आपको उपकार कभी नहीं भूलेंगे। आप तो महायोगी हैं। हम पामरों के प्रति कृपालु हैं। इस जंगल में वास करते हैं। आपसे जंगल की कोई भी वस्तु छिपी हुई नहीं होगी। इस प्रकार अनुनय–विनय करते हुए योगी की सेवा में जुट गये।

जैसे तैसे रात्रि व्यतीत हुई। योगी तो प्रातः कालीन यौगिक साधना में लग गए। ये दोनों अर्थ लोलुपी क्या करते, इनके मन में तो एक ही बात उठ रही थी, कब धन प्राप्त हो बड़ी मुश्किल से समय व्यतीत किया। योगी अपनी योग साधना करके जब स्वाभाविक स्थिति में आ गए तब दोनों ही व्यक्ति उनकी सेवा में उपस्थित हो गए।

योगी ने एक गंभीर दृष्टि से उनको देखा और बोलना प्रारम्भ किया–देखो, जो पहाड़ मेरी पीठ के पीछे–झोंपड़ी के पिछले भाग में नजर आ रहा है उसके नीचे एक लम्बी गुफा है। उस गुफा को पार करने के बाद परले किनारे विचित्र प्रकार के रत्नों के ढेर पड़े हैं। जितने चाहो उतने ग्रहण कर सकते हो। लेकिन इस अन्धकारमय गुफा को प्राप्त करने के लिये प्रकाश की आवश्यकता है। मेरे पास दो प्रकाश की शक्ति है। तुम दोनों एक–एक ले लो और उसके प्रकाश के सहारे गुफा में प्रवेश करो। देखो इस बात का ध्यान रखना की टार्च का प्रकाश सीधा सामने ही रखोगे, इधर–उधर नहीं घूमाओगे। यदि सीधे–सीधे चलोगे तब तो गुफा पार कर सकोगे। यदि इधर–उधर देखने का प्रयास किया तो शक्ति का प्रकाश मध्य में ही पूर्ण हो जाएगा। अन्धकार में सही मार्ग नहीं मिल पायेगा। क्योंकि इस गुफा के मध्य अनेक छोटी–छोटी परिति गुफाएँ हैं जिनमें प्रवेश करने के बाद तो गुफा से निस्तार पाना बहुत मुश्किल है, फिर तो जीवन का प्राणान्त ही हो जाएगा। सीधे–सीधे प्रकाश लेकर चलते रहो, वहां रत्न मिल जाएंगे उन रत्नों के प्रकाश से तुम मेरे तक पहुंच सकोगे। यहां से मैं तुम्हें तुम्हारे नगर का सही रास्ता बतला दूंगा।

दोनों वित्तार्थियों ने योगी की बात को ध्यान से सुना और प्रकाश शक्ति जलाकर चल पड़े गुफा में। थोड़ी देर तक दोनों व्यक्ति बराबर प्रकाश को सीधा रखते हुए चलते गये।

थोड़े समय के पश्चात एक व्यक्ति के मन में विचार उठा क्या

पता गुफा के उस पार जाने पर रत्न मिलेंगे या नहीं, यदि नहीं मिले तो फिर पुनः गुफा पार करना मुश्किल हो जाएगा। कितना अच्छा हो कि यहीं कहीं रत्न की खोज करली जाय। यहीं कोई रत्न मिल जाता हो तो उसे ही लेकर के पुनः गुफा पार कर लेना चाहिये। यह सोचकर वह अपनी टार्च का प्रकाश अधर–उधर घुमाने लगा। कभी इधर देखता तो कभी उधर। ऐसे देखने में गुफा पार न होने से पहले ही उसका प्रकाश समाप्त हो गया। अब वह न इस पार जा सकता था न उस पार ही। इधर उधर भटकता हुआ कोई दूसरी गुफा में चला गया। रास्ता नहीं मिल पाने के कारण उसी गुफा में चला गया। रास्ता नहीं मिल पाने के कारण उसी गुफा में तड़फ–तड़फ करके अपना प्राणान्त कर दिया।

दूसरा व्यक्ति जिसके हाथ में भी टार्च का प्रकाश था वह बराबर योगी के कथनानुसार टार्च का प्रकाश अधर–उधर न घुमाते हुए सीधा सामने रख चल रहा था। अन्ततः ज्योंही टार्च का प्रकाश समाप्त हुआ त्योंही गुफा भी पार होती गई। गुफा के पार होते ही देखा तो वास्तव में मणि रत्नों का जग–मग, जग–मग करता भण्डार पड़ा था। उसे देखकर वह बहुत खुश होता हुआ जितना उठा सका, उतने रत्नों को एकत्रित कर पुनः उसी गुफा मार्ग से सुरक्षित रूप में योगी के पास पहुंच गया। योगी को प्रणाम कर रत्नों का ढेर उसके सामने कर दिया।

बहुत देर तक इन्तजार करने पर भी जब उसका सहयात्री नहीं आया तो उसने योगी से पूछा, योगी प्रवर ! मेरा साथी जिसने मेरे साथ ही गुफा में प्रवेश किया था वह अब तक क्यों नही आया। योगी ने अपनी योगनिष्ठ साधना के बल पर जानकर बतलाया कि तुम्हारे साथी ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। अब वह कभी भी आ नहीं सकता। उसने टार्च के प्रकाश को इधर–उधर घुमाया था अतः वह प्रकाश मध्य में ही समाप्त हो चुका था, जिसके कारण वह किसी दूसरी गुफा में चला गया है। वहीं रास्ता नहीं मिलने के कारण छटपटाहट के साथ खत्म हो चुका है। योगी की बात सुनकर वह व्यक्ति उदास होकर रत्नों के ढेर को एकत्रित कर अपने गंतव्य स्थान

की ओर चला गया।

बंधुओ ! यह तो एक रूपक है। यह मनुष्य जीवन, टार्च के समान है। इसके प्रकाश से, इन्द्रियों के माध्यम से आने वाले प्रकाश को आत्म जागरण की दिशा में नियोजित करना चाहिये। यदि एक ही लक्ष्य के साथ अविराम रूप से उस ही दिशा में गति करते जाएं तो आत्म जागरण अर्थात परमात्म रूप प्राप्त हो सकता है। योगी ने तो उन्हें भौतिक धन का पथ बलाया था। वह धन अधिक टिकने वाला नहीं है। एक–न एक दिन समाप्त हो ही जायेगा। सोना–चांदी, माता–पिता, परिवार कोई भी मृत्यु से तुम्हारी रक्षा करने में समर्थ नहीं है।

यहां पर तो आपको अध्यात्म का पथ बतलाने वाले संत एवं महासतियों का संयोग मिला है। जिस अध्यात्म श्रेय पथ पर चलकर आत्मा अपनी शक्ति का परिपूर्ण जागरण कर सकती है। आवश्यकता है आत्मिक टार्च से इन्द्रियों द्वारा आने वाले वाले प्रकाश को सही दिशा में नियोजित करें।

❖ ❖ ❖

मानवता-परीक्षक नीति वाहन

बनारस–काशी नगरी के नरेश विजय वाहन जब स्वर्गस्थ हो गये तो उनका सुपुत्र जो नीतिवाहन था उसे राज्य मिला। वह बड़ा बुद्धिमान था। उसमें बड़ी क्षमता थी। उसने विचारा की राज्य मुझ को प्राप्त हुआ तो उसमें बेभान न बनूं। वह होश में चलने वाला था। उसने सोचा कि राज्य का सिस्टम इस प्रकार से चला आ रहा है कि पूर्व का राजा स्वर्गवासी हो जाय तो उसके सिंहासन पर युवराज उसका लड़का बनता है। उसका राज्याभिषेक पुरोहित, सेनापति, दीवान और उच्चस्तरीय अधिकारी लोग करते है। यह इस राज्य की परम्परा है। परन्तु यह परम्परा मानवता के अनुकूल नहीं है। यह दीवार भेद खड़ा कर रही है। यह दीवान है, सेनापति है, इनका तो

मान ऊँचा है और दूसरे नीचे हैं, तो उनके हाथों से अभिषेक नहीं हो सकता है। यह लोगों के मन में हीन भावना पैदा करने वाली है। मैं राजा बनने वाला हूँ, अभिषेक होने वाला है। परन्तु किससे अभिषेक कराऊँ, जो मानवता के धरातल पर नैतिकता को वहन करता हो उसी से कराऊँ। मैं उन्हीं व्यक्तियों को ऋध्दिशाली और पदाधिकारी समझता हूँ जिनमें मानवता है। परन्तु जो मानवता के धरातल से गिरे हुए हैं। वे चाहे सेनापति हो या दीवान परन्तु उनमें मानवता की भूमिका नहीं है, होश और जोश की स्थिति नहीं है तो मैं ऐसे व्यक्ति को ऊँची स्थिति में नहीं समझता हूँ। उनके हाथ से अभिषेक नहीं कराना चाहता हूँ। यह विपरीत नियम होगा, पर मैं उसे तोड़ना चाहता हूँ। इससे मैं मानवीय धरातल से विपरीत नहीं होता हूँ।

निर्णय कर लिया मन में कि मुझे अभिषेक परम्परागत रीति से नहीं कराना है और जब दीवान जो कहने लगे कि युवराज ! राज्याभिषेक का मुहूर्त निकलवाना है, तो नीतिवाहन ने कहा कि कराना अवश्य है। पर मैं कुछ और ही सोच रहा हूँ दीवान ने पूछा–आप क्या सोच रहे हो, तब युवराज ने कहा–यह समय पर बताऊँगा। परन्तु राज्य में एक ऐलान कराना चाहता हूँ कि जिसकी जो आवश्यकता हो मानवीय दृष्टि से जीवन गुजारने के लिए वे सब व्यक्ति अपनी–अपनी लिस्ट बनायें और मेरे सामने पेश करें। मैं इनका प्रबन्ध करके आगे के लिये सोचूंगा। यह सुनकर दीवान जी आश्चर्य में आ गये और कहने लगे कि आप यह कार्य कर रहे हैं तो क्या पहले ही आप खजाना खाली करना चाहते हैं। युवराज ने कहा दीवान जी ! मैं और ही ढंग का प्राणी हूँ। आप मेरी आज्ञा का पालन करिये और जब जनता के कर्ण गोचर यह ऐलान हुआ कि राजकुमार राज्याभिषेक कराने से पहले जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहते हैं। वे लिस्ट पेश करें। परन्तु ईमानदारी से करें।

अब कौन क्या सोचे, जब मिलने वाला था तो जिसको आवश्यकता न थी, उसने भी आवश्यकता लिख दी और जनता के अन्दर से जो लिस्ट मिली तो देखकर सब हैरान हो गए। अरे ! गरीबों की तो आवश्यकताएँ थीं वह तो ठीक है, उचित है। परन्तु धनवानों

ने भी अपनी आवश्यकताएं लिख दी। जो इस लिस्ट को ले रहा था वह हैरान हो गया। उसने सारी लिस्टें युवराज के सामने रखी और कहने लगा कि आप देख लीजिए। आप तो मानवों में समानता लाना चाहते हैं, आप किसे इन्कार करेंगे इसमें अफसर, दीवान वगैरह सब कोई आ गए। यहां भी यदि कोई ऐलान किया जाय कि अपनी–अपनी आवश्यकता की लिस्ट रख दें तो पता लग जायेगा। और यदि यहां के दलाल, दया पौषध की लिस्टें बनाने लगे तो कितनी लिस्टें आयेंगी।

खैर ! युवराज के सामने दीवान जी बैठे और कहा–हुजूर ! इन लिस्टों के मुताबिक तो यह खजाना जितना है उतना उलटना पड़ेगा। गरीब बनना पड़ेगा। और फिर अभिषेक होगा तो आपको राजा कौन मानेगा, परन्तु उस समय युवराज बड़े गम्भीर थे। क्योंकि उनके सामने मानवता की समान भूमिका थी। जोश के साथ होश में समन्वय की दृष्टि से चले। मानव के साथ मानवता का सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे। रास्ता ढूंढना चाहते थे कि कैसे क्या करूं लिस्ट देखकर युवराज ने दीवान को उत्तर दिया कि आपकी बात मान्य है। लिस्ट तो देख ली, परन्तु एक बार फिर सर्वे करो कि गरीब या अमीर कोई बाकी तो नहीं रह गया है। सरकारी कर्मचारी घर–घर पहुंचने लगे। सारे गांवों में घूम गए।

एक गांव में एक किसान जो पढ़ा–लिखा कम था और घास–फूसकी झोंपड़ी में रहता था। उसके थोड़ी सी खेती थी, जिससे जीवन निर्वाह भी पूरा नहीं होता था। लकड़ियां काट कर बेचता था। वस्त्र भी पहन रखे थे। पैरों में जूतियां और सिर पर पगड़ी नहीं थी। उसके गांव में कर्मचारी पहुंचे और पूछा कि इस गांव में तुम्हारे गाँव में कोई निवेदन करने वाला अवशेष तो नहीं रहा गांव के सदस्यों ने कहा–हाँ हुजूर ! एक बुद्धिहीन किसान गांव के बाहर झोंपड़ी बना कर रहता है। वह बाकी रह गया है। वह तो इतना बुद्धू है कि निवेदन नहीं दे रहा है। हम उसके पास निवेदन लिखाने के लिए पहुंचे तो इसने कहा कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तो अपने पुरुषार्थ बल पर विश्वास करता हूँ। मानवता की भूमिका पर मानवता को तिलांज्जलि

देने वाला कार्य नहीं कर सकता हूँ। हाँ ! पुष्टि करने वाला कार्य कर सकता हूँ। सरकार देना भी चाहे तो भी मैं कुछ नहीं लेना चाहता। यह सुनकर पुलिस के जवान उसके यहां पहुंचे, उनको देख कर किसान ने मानवता के नाते सत्कार किया। इस दृष्टि से नहीं कि सरकारी पुलिस है। किसान ने एक चटाई डाल दी और बैठाया। और कहने लगा कि आप दूर से चल कर आये हैं तो कुछ प्यास लगी होगी। सचमुच वे प्यासे थे। उनकी प्यास बुझाई। पुलिस ने कहा–हम यहाँ इसलिए पहुँचे हैं कि अजीब राजकुमार मानवों में एकता लाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि निवेदन करने में कोई भी अवशेष नहीं रहना चाहिये। अतः तुम भी अपनी मांग को पेश करो। उसने कहा कि मुझे नहीं करना है। उन्होंने कहा–मत करो। परन्तु युवराज के सामने तो चलो। तो वह साथ चला गया। शिष्टाचार साधा। युवराज ने उसकी तरफ एक दृष्टि डाली। सिर से पैर तक उसको देखा वे युवराज आज की पढ़ाई वाले युवराज नहीं थे। उन्होंने सरकारी नीतियों के अलावा मानवीय धरातल पर मानवता को पहचानने की कला भी सीखी थी। इन्होंने जब अवलोकन किया तो ऊपरी आकृति की सौम्यता है, फटे वस्त्र हैं, पैरों में जूतियाँ नहीं हैं, ब्याऊँ फट रही है, सिर पर कुछ नहीं है। परन्तु उत्साह का पुतला है।

युवराज उसको देखकर जोश में आ गया कि मेरे नगर में ऐसा उत्साह रखने वाला गरीब मनुष्य भी मिल सकता है। तब युवराज ने कहा भाई ! तुमने आवेदन–पत्र क्यों नहीं पेश किया जबकि तुम्हारी ऊपरी आकृति बता रही है कि तुम्हारी बहुत कुछ आवश्यकता है। परन्तु तुम क्यों नहीं लिस्ट पेश कर रहे हो। तब उसने कहा–हुजूर ! आपकी कृपा दृष्टि चाहिये। मेरे पास ऊपरी स्थिति तो नहीं है। परन्तु मानवता की छाती है। मेरे शरीर के अंग–उपांग आप देख रहे हैं। इनमें सब कुछ पूर्ति करने की क्षमता है। मैं नैतिक तरीके से प्राप्ति करता हूँ। अनैतिक तरीके से मुफ्त का नहीं लेना चाहता हूँ। यह आपके खजाने की जो चीजें है वे आपकी नहीं, जनता की है। इन्हें यों ही नहीं लुटा दें। मानव–मानव में दरारें पड़ रही है।, उनको पाटने के लिये यह खजाना है। ये दीवान,

ऑफीसर, धनवान यदि और लेना चाहते हैं तो ये मुफ्त खोरे नहीं तो और क्या हैं।

मैं यही कहना चाहता हूँ कि जनता की सम्पत्ति का दुरुपयोग नहीं करें। आप इन पुरुषों के पीछे यदि जनता के पैसों को खर्च करेंगे तो बड़ी अराजकता फैल जायेगी। यह सुनकर युवराज सोचने लगा कि मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि कोई मुझ को भी उपदेश दे सकेगा। युवराज ने कहा–भाई ! यह तो तुम्हारा सुझाव ठीक है कि जो कर्मचारी हैं, ऑफीसर हैं, उन्होंने जनता से और मुझ से लेकर घर भर लिया है और अब इसकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु तुम आवश्यकता वाले हो। तुम क्यों नहीं निवेदन करते हो, तब उसने कहा हुजूर ! आपकी बात ठीक है। पर मेरे पास तो भुजबल है। मुझे केवल पेट की आवश्यकता है।, पेटी की आवश्यकता नहीं, वह मैं पुरुषार्थ द्वारा भर लेता हूँ और जिस दिन पेटी के पीछे पड़ गया तो मानव न रह कर दानव बन जाऊँगा।

बन्धुओं ! सोचो कि भगवान महावीर के यही तो वचन हैं "माणुसत्तं सुइ सध्दा" जब तक मानवता नहीं आयेगी तो सच्चे मान में शास्त्र का श्रवण नहीं होगा। आज तो शास्त्र श्रवण भी दुर्लभ हो रहा है। चन्द चाँदी के टुकड़ों की जो लालसा लग रही है, उसके पीछे एक घण्टा भी वीतराग वाणी का श्रवण नहीं कर पा रहे हैं। श्रवण कर लें तो जल्दी श्रद्धा नहीं जगती और श्रद्धा आ जाय तो आचरण जल्दी से नहीं बनता। वीतराग सर्वज्ञ तो मानव की अन्तरंग और बाहरी बातों को जानने वाले थे। उन्होंने जो कुछ कहा है वह तहमेव सत्य है।

हाँ तो युवराज उस किसान फटे हाल की मानवता से ओत–प्रोत वाणी को सुनकर फूला नहीं समाया और उसी समय दीवान, सेनापति, अफसरों को सामने बुलवाया और कहने लगा कि आज आप ऊँची–ऊँची पदवियाँ लेकर चल रहे हो और ऊँचे–ऊँचे कहलाते हो परन्तु आपमें मानवता कितनी है और इसमें मानवता कितनी भरी हुई है जबकि इसको हर चीज की अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु आग्रह करने पर भी नहीं ले रहा है और आप लोगों ने इतनी लम्बी लिस्ट बनाकर भेज दी। मैं पूछता हूँ कि आप इनका क्या

करोगे, यह सम्पत्ति तो एक दिन नष्ट हो जायेगी पर मानवता अमर रहेगी। अब मैं राजा बनना चाहता हूँ पर मेरा राज्याभिषेक आप से नहीं होगा। मानवता के प्रतीक, नैतिक प्रामाणिक इस पुरुष से होगा।

जब उस नीति वाहन ने यह ऐलान करवाया तो सब ठण्डे हो गये। लोग उसे कहने लगे कि अब तो तुझे ही अभिषेक करना है। कुछ कपड़े तो अच्छे पहन लो। तो वह कहने लगा–नहीं ! मैं तो इन वस्त्रों में ही करुंगा। उसने अभिषेक किया। सबके मुँह से निकला कि मानवता की जीती जागती मूर्ति यह किसान है। सब ने सोचा कि अब हमको भी जीवन में जीवित मानवता लाने की चेष्टा करनी चाहिये। देखिये ! कितना भी प्रलोभन आने पर भी इस किसान ने अपनी नैतिकता और मानवता नहीं छोड़ी।

❖ ❖ ❖

रत्न परीक्षक

मानव जीवन की दुर्लभता को स्पष्ट करने के लिये मैं आपको जौहरियों का एक रुपक सुना देता हूँ। प्राचीनकाल में वाहनों का अभाव होने से व्यापारी वर्ग पैदल यात्रा किया करते थे। एक जवाहरात का व्यापारी, व्यापार के लिये दूर प्रदेश की यात्रा किया करता था। उसी यात्रा के दौरान वह एक गांव पहुंचा और भोजन सामग्री के लिये किसी वणिक की दुकान में गया। वहां उसे यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि बनिये के तराजू पर एक चमचमाता सवा लाख का हीरा बंधा हुआ है। जौहरी सोचने लगा यह बुध्दू हीरे के महत्व को नहीं समझता है, यदि जानता होता तो इस प्रकार नहीं बांधता। वास्तव में बनिये को भी यह नहीं मालूम था कि तराजू पर बंधा पत्थर बहुमूल्य हीरा है। उसने तो एक किसान गडरिये से दो चिमटी तम्बाकू में उसे लिया था। गडरिये को जंगल में चमचमाता पत्थर मिला। उसने उस पत्थर को यह सोचकर रख लिया कि सेठों के लड़के खिलौनों से खेलते हैं। मेरी स्थिति यह नहीं है कि मेरे बच्चों के लिये भी खिलौनों

से खेलते हैं। मेरी स्थिति यह नहीं है कि मेरे बच्चों के लिये भी खिलौने खरीद कर ला सकूं। मेरे बच्चे इस पत्थर से खेलेंगे। किन्तु जब वह बनिये की दुकान पर दाल–आटा लेने पहुंचा तो बनिये ने तराजू की काण ठीक करने के लिये उससे वह पत्थर मांगा। ज्योंहि तराजू में पत्थर रखा गया, त्योंहि काण बराबर हो गई। रोज–रोज की झंझट मिटाने के लिये बनिये ने दो चिमटी तम्बाकू देकर वह पत्थर खरीद लिया और तराजू के बांध दिया।

जौहरी ने खाद्य सामग्री को लेने के साथ ही बनिये से पूछा–क्यों भाई इस को तुम बेच सकते हो ?

बनिये ने कहा–क्यों नहीं जरुर। मैं तो व्यापारी हूँ। व्यापारी तो थाली में परोसी रोटी को भी समय पर बेच देता है। अच्छा तो बताओ तुम इस पत्थर के कितने पैसे लोगे ? जौहरी के पूछने पर बनिये ने सोचा जरुर यह पत्थर कोई साधारण पत्थर नहीं हैं, अन्यथा यह व्यक्ति इस खरीदने की बात नहीं करता। उसने सोच कर कहा–मैं इसके पांच रुपये लूंगा। जौहरी ने कहा–नहीं, इसके चार रुपये ले लो। बनिया बोला–नहीं, मैं पांच रुपये से एक पैसा कम नहीं लेता, जौहरी यह सोचकर चला गया कि इसे दूसरा कौन ले जाने वाला है। अभी तो भोजन कर लूं बाद में आकर चार रुपये में देगा तो ठीक अन्यथा पांच रुपये में ले लूंगा।

संयोग की बात है–कुछ समय के बाद एक दूसरा जौहरी भी इसी गांव में आ पहुंचा और वह भी भोजन सामग्री लेने के लिये उसी बनिये की दुकान पर गया। उसने भी जब उस पत्थर के मूल्य के विषय में पूछा तो बनिये ने सोचा–वास्तव में यह पत्थर बहुत अधिक कीमत का है, उसने उसके दस रुपये बतलाये। इस जौहरी ने भी उसे एक रुपया कम कर नौ रुपये लेने के लिये कहा तो वह टस से मस नहीं हुआ। यह जौहरी भी पहले वाले जौहरी की तरह बाद में आकर ले जाऊँगा, इसे दूसरा कौन ले जाने वाला है। सोच कर भोजन के लिये चला गया।

कुछ ही समय बीतने के बाद एक तीसरा जौहरी भी उसी गांव में पहुँचा और वह भी भोजन सामग्री के लिये उसी बनिये की

दुकान पर गया। उसने भी जब उस चमचमाते हीरे को देखा तो उसे खरीदने के लिये बनिये से मूल्य पूछा इस बार बनिया और अधिक विचार में पड़ गया बात क्या है–इस पत्थर में जरूर कुछ न कुछ करामात है, तभी तो एक के बाद एक तीन व्यक्ति इस खरीदने के लिये आ पहुँचे। पहले वाले को पांच रुपये के लिये कहा तो वह चार रुपये देने के लिये तैयार हो गया। दूसरे को दस रुपये के लिये कहा तो वह नौ रुपये देने के लिये तैयार हो गया। अतः इस व्यक्ति से और अधिक रुपये मांगना चाहिए। यह सोच कर बनिये ने कहा–इसके पन्द्रह रुपये लूंगा। उसने भी चौदह देने को कह कर बाद में आकर पूरे दे जाऊंगा। यह सोचकर वह भी भोजन करने के लिये चला गया।

कुछ ही समय और बीतने के बाद चौथा रत्नों का व्यापारी भी संयोग से उसी गांव के उसी बनिये की दुकान पर भोजन की सामग्री लेने के लिये पहुंच गया। इसने भी जब की उसी पत्थर रूपी हीरे को देखा तो उसकी कीमत के विषय में पूछा। इस बार तो बनिये ने आव देखा न ताव और सीधे ही इक्कीस रुपये मांग लिये। यह चौथा व्यापारी विलक्षण था। उसने सोचा मोल–भाव करने का समय नहीं है। उसने तुरन्त इक्कीस रुपये देकर उस पत्थर रूपी सवा लाख रुपये के हीरे को खरीदकर बहुत खुश होता हुआ अपने शहर की ओर चला गया।

पहला व्यापारी खा–पीकर मस्ती के साथ बनिये की दुकान पर पहुँचा और बोला लो पांच रुपये ले लो और वह पत्थर दे दो। इतने में ही दूसरी दिशा से दूसरा जौहरी आ पहुँचा–वह बोला लो दस रुपये लो और वह पत्थर मुझे दे दो। दोनों जौहरी संघर्ष करने लगे–एक बोला, मैंने पहले मोल किया है। इसलिये मैं लूंगा तो दूसरा बोला नहीं मैं तुम्हारे से अधिक रुपये दे रहा हूँ, इसलिये मैं लूंगा, इनके संघर्ष के बीच ही तीसरा रत्न व्यापारी भी, भोजनादि कार्यों से निवृत्त होकर बहुत लाभ की खुशी में झूमता हुआ–बनिये की दुकान पर आ पहुँचा और चिल्लाने लगा लो मैं पन्द्रह रुपये देता हूँ– वह पत्थर मुझे दे दो। तीनों जौहरी पत्थर की मांग करने लगे। हरेक

कहता है मैं लूंगा। तीनों में जोरदार संघर्ष होने लगा। उनके इस संघर्ष को देखकर बनिया बोला तुम लड़ते क्यों हो ? जिस पत्थर के लिये तुम लड़ रहे हो, वह तो मैंने कभी का ही बेच दिया।

ज्यों ही जौहरियों ने रत्न के बिक जाने की बात सुनी त्यों ही होश उड़ गए। झगड़ा स्वतः ही समाप्त हो गया। सच है एक कोए के मुंह में मांस का टुकड़ा रहेगा तो सभी कोए लेने के लिये टूट पड़ेंगे और ज्योंही टुकड़ा समुद्र में गिर जाता है तो सबका झगड़ा समाप्त हो जाता है। यही संसार की स्थिति है। सभी धन के टुकड़ों के लिये दौड़ रहे हैं। संघर्ष कर रहे हैं। भाई, भाई को मारने के लिये तैयार है। कितना ही किया जाय पर धन भी स्थायी नहीं रहने वाला है।

उन रत्न व्यापारियों ने बनिये से पूछा–तुमने उसको कितने में बेचा ?

बनिये ने कहा–पूरे इक्कीस रुपये में।

तीनों व्यापारी बोले तुम तो ठगा गए। अरे, वह तो पूरे सवा लाख रुपये का बहुमूल्य हीरा था।

बनिया बोला–मैं नहीं, तुम लोग ठगा गए। मैं तो उस हीरे के मूल्य से अनभिज्ञ था किन्तु तम तो सब जानते थे। फिर भी मोल भाव करके छोड़ कर चले गये। इसलिये मैं नहीं, तुम लोग ठगा गए।

वे सभी व्यापारी रत्न के चले जाने से पश्चाताप करते हुए अपने अपने स्थान पर लौट गये।

सुज्ञ बन्धुओं, यह तो एक रुपक है। आपको तरस आ रही होगी उन व्यापारियों पर, जो मोल–भाव करते रह गये और उस बहुमूल्य रत्न को गंवा दिया। किन्तु क्या यह भी सोचा कि कहीं हमारी हालत तो ऐसी नहीं हो रही है ? मानव जीवन रूपी अमूल्य रत्न जो आपको मिला है। इस रत्न के द्वारा परमसुख को प्राप्त करने के लिये मुनि–जन बराबर उपदेश दे रहे हैं। लेकिन अभी नहीं बाद में धर्म–ध्यान कर लेंगे इस प्रकार सोचते हुए अमूल्य मानव जीवन को कहीं खो तो नहीं रहे हैं ? जब हीरा हाथ से चला जायेगा तो उन व्यापारियों की तरह पश्चाताप ही हाथ में रह जायेगा। वह हीरा तो फिर मिल सकता है, किन्तु मानव जीवन रूपी हीरे का पुनः मिलना

बहुत मुश्किल है।

अब भी समय है जागने का, जागिये और इस अमूल्य जीवन में मुक्ति रूपी परम सुख को पाने के लिये आगे बढ़िये। भगवान महावीर का कहना है– "समयं गोयम मा पमायए।"

समय मात्र का भी प्रमाद मत करिये। आप लोगों को भी इन व्यापारियों की तरह पश्चाताप नहीं करना पड़े। इसलिये परम शांति को पाने के लिये धर्म–ध्यान में प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

❖ ❖ ❖

श्रेय मार्ग की प्रेरिका

एक बहुत बड़े वकील थे, जिनकी प्रतिभा बहुत तीक्ष्ण थी। मुकदमों में किस प्रकार दांव–पेच करके अपने पक्ष को जिताना वे अच्छी तरह जानते थे। गलत केस भी यदि उनके हाथों आ जाता तो वे उसे भी अपने बुद्धि बल के द्वारा न्यायालय में सही प्रमाणित कर देते। एक बार की घटना है कि उनके पास एक ऐसा केस आया कि एक भाई को सामने वाले व्यक्ति के पचास हजार रुपये देने थे और वह देने की स्थिति में नहीं था, सामने वाले ने उस पर केस (दावा) कर दिया, उस व्यक्ति ने भी अपने पक्ष को रखने के लिए इन वकील साहब को अपना वकील बना लिया। वकील साहब यह अच्छी तरह जानते थे कि जिसका केस मैंने लिया है उसे सामने वाले व्यक्ति को पचास हजार रुपये देने हैं, किन्तु केस जब वकील साहब ने अपने हाथ में ले लिया तो ऐसे झूठे केस को भी जिताने के लिए लगाने लगे अपनी बुद्धि की दौड़। बुद्धि ने कमाल दिखाया। एक के बाद एक तर्क कोर्ट में पेश करने लगे। आखिर उन्होंने अपने पक्ष को जिता ही दिया। जिताया ही नहीं अपितु जिसको उसे पचास हजार रुपये देने थे उसे देने की बात दूर रही, उससे पचास हजार रुपये लेने निकलवा दिये। देखिये, आज के कोर्ट का न्याय, जहाँ दूध का दूध और पानी का पानी होना चाहिए वहाँ ऐसे वकीलों के परिणाम स्वरूप

आज कैसे अन्धकारमय निर्णय सामने आते हैं, जहाँ दुःख का मारा व्यक्ति अपना न्याय लेने के लिए न्यायालय में आए और उसकी ऐसी स्थिति बने तो उसके दिल पर क्या बीतती है ? आज तो कई सुज्ञ व्यक्ति अपनी हानि सहन कर लेते हैं, किन्तु कोर्ट में लड़ने नहीं जाते, वकील साहब तो केस जीत लेने के कारण बहुत प्रसन्न हो रहे थे, मन ही मन फूले नहीं समा रहे थे, जीत की खुशी में उन्मत्त होते हुए वे घर पर पहुँचे। भोजन करने के लिए बैठे ही थे और उनकी धर्मपत्नी भोजन परोस ही रही थी, इतने में ही जिस पक्ष को उन्होंने जिताया था, उस पक्ष का व्यक्ति बहुत खुश होता हुआ वहां आ पहुंचा और दस हजार रुपयों के नोट वकील साहब को लेने के लिए आग्रह करने लगा।

वकील साहब समझ गये, मैंने इसके पक्ष को जिताया उसी के फलस्वरूप यह दस हजार रुपये देने का आग्रह कर रहा है, लेकिन मेरे इस बुद्धि के चमत्कार को मेरी पत्नी कैसे जानेगी, मैं अपने मुँह से कहूँ, इसकी अपेक्षा इसके मुँह से कहलाऊँ, तो ज्यादा अच्छा होगा, यह सोचकर वकील साहब तिरछी नजर से इसे देखते हुए बोले, यह रुपये किस बात के हैं ? इस पर वह व्यक्ति हाथ जोड़ कर विनम्रता के साथ बोला–वकील साहब यह रुपये आपकी बुद्धि बल के चमत्कार के हैं। आपने कोर्ट में वह चमत्कार दिखाया जिससे मेरा असत्य पक्ष भी, सही साबित हो गया। मुझे जो सामने वाले व्यक्ति के पचास हजार रुपये देने थे, उसके बदले आपने पचास हजार रुपये और दिलवाये, इस प्रकार मुझे एक लाख रुपये की आमदनी करवा दी। इतने रुपये तो मैं नहीं दे सकता किन्तु आपकी फीस के दस हजार रुपये दे रहा हूँ।

वकील साहब सोच रहे थे कि इस व्यक्ति की बात सुनकर मेरी पत्नी बहुत खुश होगी और कहेगी कि बहुत अच्छा किया आपने, मैं आपकी बुद्धि की दाद देती हूँ अब मेरे बहुत जेवर और पोशाक बन जाएंगे, अपने ही विचारों में खोए वकील साहब ने ज्यों ही अपनी धर्मपत्नी की ओर देखा तो उनके विचारों पर कुठाराघात हो गया। उनकी सारी भावनाओं पर पानी फिर गया। पत्नी के खुश होने की

बात तो दूर रही, उसकी आँखों में धर–धर आँसू आ रहे थे।

वकील साहब की तो सारी प्रसन्नता ही कहीं गायब हो गई। वे सहमते हुए बोले–अरे, तुम रो क्यों रही हो ? लो ये दस हजार रुपये मैं तुम्हें दे देता हूँ, उससे तुम जो चाहो सो बनवा लेना। इसके अतिरिक्त भी जो तुम्हारी इच्छा होगी सो भी पूरी कर दूंगा, लेकिन तुम रोती क्यों हो ?

पत्नी का रोना इसलिए तो था नहीं कि उसे रुपये चाहिये, उसकी आत्मा तो इसलिये कराह रही थी कि अहोः कितना घोर अन्याय हो रहा है, जिस कोर्ट से न्याय की अपेक्षा रखी जाती है उसकी कोर्ट में यह घोरतम अन्याय और वह भी मेरे पति द्वारा तुच्छ रुपयों के लिये। वह बोल उठी पति से, मुझे नहीं चाहिए ऐसा रुपया और न ही मुझे ऐसी कोई भी फैशनबल साड़ी या जेवर ही चाहिए। मैं एक पोशाक से भी अपनी गुजर कर सकती हूँ। किन्तु मुझे अनीति का एक पैसा भी नहीं चाहिए। ईमानदारी का तकाजा था कि आप इस व्यक्ति के पचास हजार रुपये सामने वाले को दिलवा कर ही इन्साफ करवाते। लेकिन आपने पचास हजार रुपये उसे दिलवाने की बात तो दूर रही बल्कि उससे पचास हजार रुपये और निकलवा लिये, क्या आपने सोचा कि जिसके एक लाख का घाटा हुआ उसका कितना कलेजा टूटा होगा ? कलम और बुद्धि से होने वाली कितनी क्रूर हिंसा है यहाँ। ऐसे कृत्यों से भारी कर्मों का बन्धन होता है।

मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ और आप मेरे पति, अतः मेरे पति ऐसे हिंसाकारी कार्यों से उपरत होकर ऊपर उठें। न्याय और नीति से वित्तोपार्जन करें, जिससे यह जीवन भी सुखी बने और पर जीवन भी सुखमय बन सके, ऐसा मैं चाहती हूँ। यही निवेदन है कि आप इस प्रकार के अनीति पूर्ण कार्यों को छोड़ें। ऐसे धन की अपेक्षा सीधा और सात्विक जीवन जीना बहुत उत्तम है।

पत्नी की मानवीय भावना और आध्यात्मिक जीवन का प्रभाव वकील साहब पर भी गहरा पड़ा। वे भी सोचने लगे–जब मेरी पत्नी भी अनीति पूर्ण धन को नहीं चाहती है तो फिर इसे रखकर क्या करना है ?

वकील साहब ने उस भाई से कहा–यह रुपये तुम वापिस ले जाओ। मेरी पत्नी इस प्रकार के अनीतिपूर्ण धन को रखना बिल्कुल पसन्द नहीं करती। तुम्हें भी जो पचास हजार रुपये और मिले हैं, उन्हें भी वापस सामने वाले व्यक्ति को देने पड़ेंगे।

देखिये बहिन की धार्मिक भावना–समीक्षण दृष्टि के अभ्यास ने क्या चमत्कार बताया, हेयमार्ग की ओर बढ़ने वाले अपने पति को भी श्रेयमार्ग की ओर लगा दिया। ऐसी शक्ति भी बहिनों में होती है, वह अनीति युक्त कार्यों में लगे अपने पति को धर्म की ओर लगा सकती है ऐसी बहिनें ही श्रेय मार्ग की प्रेरिका बन जाती है।

❖ ❖ ❖

छोटी बहू का श्रेय कार्य

एक गांव में अंगदत्त नाम का एक श्रेष्ठी रहता था, उसके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी, उसके चार पुत्र थे। उन चारों पुत्रों का विवाह भी योग्य कन्याओं के साथ कर दिया था। सभी प्रकार से सम्पन्न था वह किन्तु यह सम्पन्नता अधिक दिनों तक नहीं टिक पाई। कुछ ऐसा उतार आया कि उसकी सम्पन्नता विपन्नता में परिणित होने लगी। विपन्नता भी इस तरीके की आई की जीवन निर्वाह करना भी मुश्किल होने लगा। सेठाई में फैशन के जो तौर–तरीके अपनाए थे, अब उनका निर्वाह मुश्किल हो गया।

ऐसी विकट परिस्थति में भी सेठ अपनी फैशनपरसती को नहीं छोड़ना चाहते थे। इनका निर्वाह करने के लिए वे छल–कपट, अनीति के द्वारा धन का उपार्जन करने लगे।

श्रेष्ठी के व्यापार करने के तौर तरीके जब उसकी छोटी पुत्र–वधू मदन मंजरी को ज्ञात हुए तो उसे यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। जब उसके पति घर पर आये तो उसने उन्हीं से प्रश्न कर लिया–पतिदेव ! आज–कल व्यापार का रंग–ढंग किस प्रकार चल रहा है ? पति ने कहा प्रिये ! क्या कहूं, आज–कल बड़ी विकट स्थिति

है, पिताजी की पोजीशन घट गयी है। धन–सम्पत्ति के मद में जो फिजूल के रीति–रिवाज चालू किए थे, आज वे दुःखदायी बन गये हैं। हमने कुंआ खोदा और हम ही गिर रहे हैं। ऐसी स्थिति में अपनी इज्जत को बनाए रखने के प्रयास में सभी प्रकार का व्यापार करके किसी भी प्रकार से धन कमाने में लगे हुए हैं।

इस बात को सुनकर मदन मंजरी बोली–पतिदेव ! यह क्या हो रहा है ? इस झूठी इज्जत के पीछे इस प्रकार अनीति पर चलेंगे तो इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ जायेंगे। मुझे नहीं चाहिए, धन दौलत, मैं एक सफेद साड़ी में टूटी–फूटी झोंपड़ी में दिन काट सकती हूँ। लेकिन इस प्रकार का अनीतिपूर्ण व्यापार नहीं होना चाहिए।

पति बोले–प्रिये ! इसे मैं कैसे रोक सकता हूँ यह सब काम पिताजी के हैं। वे ही इसे रोक भी सकते हैं। आप उन्हें मना कर दीजिए कि वे इस प्रकार से व्यापार नहीं करें, मदन मंजरी ने पति से कहा। तब वे बोले, नहीं, मैं तो पिताजी को नहीं कह सकता, मैं उन्हें कहूँ और वे मुझे डांट दें तब क्या करूं ?

पतिदेव का साहस नहीं देखा तो मदन मंजरी स्वयं ही श्वसुरजी को कहने के लिए तत्पर हो गई। देखिए बहिन का साहस। क्या भावना थी इसमें धर्म और नीति की। कहां आज का युग, किसे परवाह, पति कैसे व्यापार कर रहे हैं, नीति से कमा रहे हैं यह अनीति से, किसी भी प्रकार कमाएं, बस हमारी तो आवश्यकता पूर्ति होनी चाहिए।

मदन मंजरी ने साहस किया और वह श्वसुरजी के पास पहुंच कर बहुत विनम्र शब्दों में निवेदन करने लगी–पिताश्री (श्वसुरजी) आज कल का व्यापार किस रीति नीति से चल रहा है ? पुत्र–वधू के मुँह से यह प्रश्न सुनकर श्रेष्ठी अंगदत्त कुछ चौंके–सोचने लगे, इसे क्या मालूम कि अभी व्यापार किस प्रकार चल रहा है।

सेठजी कुछ गंभीर होकर बोले–पुत्र वधू क्या बताऊँ ? इस समय धनोपार्जन की विकट समस्या आ खड़ी हुई है। रीति–नीति से व्यापार करने पर धनोपार्जन नहीं होता। बिना धन के घर–गृहस्थी अच्छी तरह से चल नहीं सकती, इसलिए छल–कपट के साथ व्यापार

करना पड़ता है।

बहुत ही विनम्रता के साथ मदन मंजरी बोली– पिताश्री ! अनीति एवं छल–कपट द्वारा उपार्जित धन से इज्जत नहीं बचाई जा सकती, ऐसा धन कभी शांति देने वाला नहीं। मेरा तो आपसे यही निवेदन है कि आपश्री इन धन्धों को छोड़कर न्यायनीति से व्यापार करें। न्यायोपार्जित सूखी रोटी भी शांति देने वाली बनेगी।

पुत्र–वधू के विनम्र शब्दों का सेठ अंगदत्त पर प्रभाव पड़ा। उसके कथनानुसार सेठ ने घर की सीधी–सादी स्थिति बना दी, खान–पान रहन–सहन सब सीधा–सादा कर दिया, व्यापार भी नीति और विवेक के साथ करने लगे। नीति से उपार्जित धन से घर का खर्च चलने के बाद सिर्फ पांच स्वर्ण मुद्राएं बची।

मदन मंजरी ने कहा–आप फिक्र न कीजिए। बस पूर्ण नीति के साथ व्यापार करते रहिए, एक न एक दिन पुण्यकर्म का उदय होगा। सारी स्थिति पूर्ववत हो जायेगी।

जिस नगर में श्रेष्ठी निवास करता था, उस नगर के राजकुमार को भयंकर दाहज्वर हो गया। बहुत उपचार करने पर भी उसका रोग शामित नहीं हुआ। उसी समय एक योगी किसी अन्य नगर से वहां आ पहुँचा। उसके कानों में जब राजकुमार के दाहज्वर की बात पड़ी तो वह अनुकम्पा भावना से, राजकुमार को बचाने के लिए राजभवन जा पहुँचा। योगी ने सम्राट से कहा–राजन ! तुम्हारे पुत्र को स्वस्थ तो मैं कर सकता हूँ किन्तु इसकी स्वस्थता के लिए बिल्कुल न्याय से उपार्जित पांच स्वर्ण मुद्राएं चाहिए। मैं मंत्र पढ़कर उन मुद्राओं पर पानी डालूंगा। उस पानी को राजकुमार को पिलाने पर राजकुमार स्वस्थ हो जायेगा।

सम्राट विचार में पड़ गये कि न्याय से उपार्जित धन कहाँ मिले, आखिर उन्होंने नगर में पटह बजवा दिया। मदन मंजरी ने भी पटह सुना। उसने सेठ अंगदत्त से कहा–पिताश्री ! मौका आ गया हे, इस परमार्थ के काम को हाथ से न जाने दीजिए। आप ये पांचों स्वर्ण मुद्राएं ले जाईये और सम्राट को कह दीजिये कि ये पांच स्वर्ण मुद्राएं न्याय से उपार्जित हैं। सेठ अंगदत्त ने वैसा ही किया। सम्राट ने वे

पाँचों स्वर्ण मुद्राएं योगी के समक्ष रख दी। योगी ने मंत्र जाप करना प्रारम्भ कर दिया। मंत्र जाप कर ज्यों ही स्वर्ण मुद्राओं पर पानी डाला, त्यों ही वे चमक उठीं। योगी ने वह पानी राजकुमार को पिलाया–पीते ही राजकुमार का दाहज्वर समाप्त हो गया। सारे नगर में प्रसन्नता छा गई। सम्राट ने रत्नों से भरी मंजूषा भेंट करनी चाही किन्तु योगी ने कहा–सन्यासी अकिंचन होते हैं। मैं तो यह रत्न मंजूषा नहीं रखता। यदि आपको देना ही है तो इन सेठजी को दीजिए। इनकी स्वर्ण मुद्राओं के कारण ही राजकुमार स्वस्थ हुए हैं। सम्राट ने खुश होकर वह रत्नों से भरी मंजूषा अंगदत्त के हाथों में सौंप दी और बहुत ठाट–बाट के साथ समारोह पूर्वक उसे घर पहुंचाया। सारे नगर में उसकी ख्याति फैल गई। अब तो व्यापार भी वेग के साथ चलने लगा। सेठ अंगदत्त के पास करोड़ों की सम्पत्ति हो गई। अब उसका जीवन शांति के साथ चलने लगा। न्याय नीति से उपार्जित धन से सारे परिवार में शांति छा गई। सारा का सारा परिवार श्रेय मार्ग का राही बन गया।

❖ ❖ ❖

विचित्र रूप महायोगी का।

राजगृह नगरी के बाहर, दोनों, भुजाएं ऊपर करके सूर्याभिमुख हो, एक महायोगी ध्यान साधना में तन्मय बने हुए थे। प्रातःवेला में सम्राट श्रेणिक भगवान महावीर स्वामी को वन्दन–नमस्कार करने के लिये नगर से बाहर निकले। नगर से बाहर निकलते ही उनकी दृष्टि ध्यान साधना में स्थित महायोगी पर गिरी। उनकी प्रखर ध्यान साधना को देखकर श्रेणिक का मस्तिष्क श्रद्धावनत हो गया। भाव–विभोर होकर सम्राट ने महायोगी को वन्दन–नमस्कार किया और गुणशील उद्यान की ओर प्रस्थित हुए। जब वह, भगवान महावीर के चरणों में पहुँचा, वन्दन–नमस्कार कर भगवान की ओर सन्मुख हो आसन पर बैठ गया, तब तक भी उसके मन में राजगृह के बाहर ध्यानस्थ

महायोगी के विषय में विचार चल रहे थे। आखिर सम्राट ने संशयहर्ता, सर्वत्र सर्वदर्शी प्रभु से पूछ ही लिया–भगवन आपके शिष्य, जो नगर से बाहर सूर्याभिमुख हो, दोनों भुजाएं ऊपर करके ध्यान में तल्लीन हैं। यदि वे इस समय काल धर्म को प्राप्त हो जाय तो कहाँ जावें ?

सम्राट के प्रश्न को श्रवण कर वीतरागी प्रभु जिनको न अपनी पर राग था न अन्यों पर द्वेष। जो वीतराग अवस्था में रमण कर रहे थे। स्पष्ट फरमाया–श्रेणिक ! वह यदि साधक इस समय आयुष्य बन्धन कर ले तो सातवीं नरक में जाय। भगवान ने यह उत्तर देते समय नहीं सोचा कि मैं अपने शिष्य के विषय में ऐसा कहूंगा तो जनता क्या सोचगी। लोगों की श्रद्धा उठ जायेगी, इसलिये यह बात नहीं कहनी चाहिए। परन्तु प्रभु ने जो बात जैसी थी, वैसी ही स्पष्ट कर दी। नीतिकार ने सत्य ही कहा है–

पक्षपातो न मैं वीरो, न द्वेषः कपिलादिषु
युर्क्ति मद वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः

न तो मेरा प्रभु के प्रति राग ही है, न अन्य कपिलादि दर्शनों पर द्वेष ही। युक्ति–युक्त वचन जिसके भी हों, वही ग्राहय हैं।

प्रभु ने अपने शिष्य के प्रति भी मोह न करके, सत्य बात को स्पष्ट कर दिया। वैसे वीतरागी देवों के वचन निश्शंक ग्राहय होते है।

सम्राट श्रेणिक तो इस बात को सुनकर एकदम स्तब्ध हो गया। अहोः इतने बड़े योगी, इतनी कठोर साधना में तल्लीन, क्या वे भी सातवीं नरक में जा सकते हैं ? प्रभु के वचनों में सन्देह का तो कोई अवकाश ही नहीं है। इस प्रकार सम्राट श्रेणिक के मन में विचार चल रहे थे। विचार धारा फूट पड़ी वचनों के माध्यम से–क्या भगवन ऐसा भी हो सकता है ? तब प्रभु ने कहा–राजन ! यदि इस समय वे योगी काल कर जाय तो देवलोक में जावें।

यह विचित्र बात सुनकर तो सम्राट के मन में उथल–पुथल मच गई। अरे ! कुछ क्षण पूर्व जिस योगी के लिये प्रभु ने नरक बतलाया, उसी योगी के लिये अब स्वर्ग बतला रहे हैं। यह विचित्र स्थिति कैसे बन गई ? कुछ ही क्षणों में इतना परिवर्तन कैसे हो सकता है। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। भगवान का कथन तो

अवितथ सत्य है। मेरी अल्प बुद्धि तथ्य को समझ नहीं पा रही है। बाहर से इतनी संयमपूर्ण अवस्था परिलक्षित होते हुए भी इतना परिवर्तन किस प्रकार हो जाता है ? सम्राट के मन में इस प्रकार विचार चल ही रहे थे। इतने में आकाश में देव दुंदभिगूँज उठी। अहो ज्ञानं, अहो ज्ञानं की तुमुल उद्घोषणा होने लगी। इस तुमुल स्वर से सम्राट श्रेणिक की विचारधारा टूट गई। वह सोचने लगा–यह आवाज कहाँ से आ रही है ? दिव्य ज्ञानी प्रभु तो यहाँ विद्यमान हैं और देव किसके लिए–अहो ज्ञानं अहो ज्ञानं की उद्घोषणा कर रहे हैं ?

प्रभु घट–घट के अर्न्तयामी होते हैं, उनके ज्ञान में संसार की कोई वस्तु अदृश्य नहीं रहती है। प्रभु महावीर ने भी श्रेणिक की विचारधारा जान ली और कहा–सम्राट ! क्या सोच रहे हो ? वही योगी जिसके लिये तुम चिन्तन कर रहे थे, अब घनघाती कर्म को क्षय करके केवल ज्ञान, केवल दर्शन को प्राप्त कर चुके हैं। जितना ज्ञान मुझ में है, उतना ही ज्ञान उनकी आत्मा में भी उदभासित हो चुका है। उनकी आत्मा इसी भव में मुक्तिगामी बन गई है अर्थात वे योगी इसी भव में मुक्ति को प्राप्त करेंगे।

सम्राट ने, प्रभु के मुख से ज्यों ही यह बात सुनी तो उसकी जिज्ञासा की कोई सीमा नहीं रही, वह सोचने लगा–आज यह क्या हो रहा है ? जो साधक कुछ क्षणों पहले महानरक में जाने की स्थिति में थे, वे ही साधक कुछ क्षणों के बाद स्वर्ग में जाने वाले बन गये तथा अब तो केवल–ज्ञान, केवल–दर्शन को पाकर मुक्तिगामी बन गये हैं। बड़ा विचित्र रहस्य है।

भगवान क्या फरमा रहे हैं, आप। आप श्री के विशिष्ट ज्ञान–लोक में आलोकित तथ्य को मेरी मति समझ नहीं पा रही है। यह तो सत्य है–

तमेव सच्चं णीसंकं जं, जिजेहिं पवेइयं

वही सत्य है, जो जिनेश्वर देव द्वारा प्ररुपित है। भगवान आपके वचनों में मुझे कोई सन्देह नहीं है, परन्तु मेरी जानने की जिज्ञासा है कि नरक–स्वर्ग, अन्य वर्ग की अवस्था योगी के जीवन में कुछ ही क्षणों में किस प्रकार परिवर्तित हो गई ? प्रभु ने समाधित

किया–सम्राट की जिज्ञास को।

राजन ! इस परिवर्तन के लिये बाहरी परिवर्तन होना आवश्यक नहीं है। स्थूल दृष्टि में अन्तरंग का परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता है। वह परिवर्तन समीक्षण दृष्टिपूर्वक अन्तरंग के ज्ञान से ही जाना जा सकता है। जिन योगी को तुमने सूर्याभिमुख होकर ध्यान साधना में देखा था। उनके कानों में सुमुख और दुर्मुख नाम के दो व्यक्तियों के शब्द सुनाई दिये। सुमुख ने दुर्मुख से कहा–धन्य है ऐसे महायोगी को जो विशाल वैभव, साम्राज्य को त्याग कर कठोर साधना में तन्मय बने हुए हैं।

दुर्मुख को यह बात नहीं जंची, वह अपने नाम के अनुसार ही दुर्मति से सोचने लगा और बोला–सुमुख, तुम भोले हो, इस तथ्य को समझ नहीं पा रहे हो। यह महायोगी तो कायर है। इसने अपने अबोध बच्चे को 500 मंत्रियों के हाथ में सौंप कर दीक्षा अंगीकार कर ली है। वे 500 मंत्री गुप्त मंत्रणा करके इस निर्णय पर पहुँच गये हैं कि इस बच्चे को मारकर सारे राज्य को हथिया लें। वे इस फिराक में हैं कि कब बच्चे को मारें और राज्य हड़प लें। इसलिए मेरा यह कहना है कि योगी वन्दनीय कैसे हो सकता है ? जो अपने बच्चे की रक्षा नहीं कर सकता, वह अपनी क्या रक्षा करेगा ?

सुमुख और दुर्मुख दोनों के शब्द योगी के कानों में पड़े। मन ने शब्दों पर क्रिया–प्रतिक्रिया करना प्रारम्भ कर दिया। सुमुख के शब्दों को श्रवण कर प्रफुल्लित हो उठा तो दुर्मुख के शब्दों को श्रवण करते ही तीव्र क्रिया–प्रतिक्रिया प्रारम्भ कर दी। अहो ! क्या ये मंत्री मेरे बच्चे को मारकर राज्य हड़प लेंगे, मेरे रहते ही। नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा, किसी हालत में मंत्रियों को राज्य हड़पने नहीं दूंगा। योगी भूल गये कि मैं तो खंत्तों दंत्तो निरारंभो पवइयमण गारियं शान्त, दान्त निरारंभी अणगार प्रवर्जित हो चुका हूँ। अब कौन मेरा है और मैं किसका हूँ। वे अपनी मूल स्मृति से विस्मृत हो गए। मन का वेग बड़ी तीव्रता के साथ प्रतिक्रिया करने लगा। मन के द्वारा ही कल्पित पांच सौ मंत्री सामने आ गये। मन से ही घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। अचूक निशाने के साथ कल्पित धनुश से कल्पित तीर छूटने लगे।

एक के बाद एक मंत्री तीरों से आहत होते हुए खत्म होने लगे। इस प्रकार एक नहीं, दो नहीं, 499 मंत्रियों को भूमिसात कर दिया गया। एक मंत्री अवशेष रह गया। इधर तरकस में तीर खत्म हो चुके थे। क्रोधवश मन तीव्रता के साथ क्रिया–प्रतिक्रिया में लगा हुआ था। योगी रूप सम्राट ने विचार किया–खैर तीर समाप्त हो गये तो कोई बात नहीं, मेरे मस्तिष्क पर मुकुट तो विद्यमान है। मैं मुकुट को भी उतार कर इस तरीके से फैकूंगा कि यह भी खत्म हो जायेगा। मुझे एक भी शत्रु को अवशेष नहीं रखना है। कितना आवेश, कितना क्रोध और कितनी हिंसात्मक भावना चल रही थी, योगी के मन में, उन्हीं तीव्र भावनाओं के साथ उनका ऊपर उठा हाथ नीचे आने लगा। जब योगी के मन में इस प्रकार की तीव्रता चल रही थी, तब तुमने मुझे पूछा तो राजन ! मैंने बतलाया–यदि उन योगी का उस समय आयुष्य बन्धन हो जाय तो सातवीं नरक में जाए।

कुछ ही क्षणों के बाद अर्थात ज्यों ही उनका हाथ मस्तक पर गया और उनको भान हुआ–अहो, मैं तो साधु बन चुका हूँ। आगारी से अणगारी बन गया हूँ। भोग से योग की तरफ मुड़ चुका हूँ। अब मेरा है कौन ? पुत्र, राज्य, परिवार की बात तो दूर रही, यह शरीर भी मेरा नहीं है। एक न एक दिन यह भी विलीन हो जायेगा। मैंने स्वत्व को भूल कर कैसा अकार्य कर डाला। अरे जहाँ साधक सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव की हिंसा नहीं करता, वायु काय के रक्षण के लिए मुख पर मुख वस्त्रिका धारण करता है। उसके हिंसा का त्रिकरण, त्रियोग से, त्याग होता है। वहां आज मैंने साधकावस्था में कितन क्रूर मानसिक हिंसा कर डाली, अहो, मैं ऐसे पाप से अपनी आत्मा की, निदांमि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि, निन्दा करहा हूँ, गर्हा करता हूँ और ऐसे दुष्कृत्य को वोसिराता हूँ। इस प्रकार जब उनकी भावनाऐं, अध्यवसाय अशुभ से हट कर शुभ की ओर मुड़ने लगे, विचारों में तीव्रता के साथ समीक्षण होने लगा। जिस समीक्षणता में अशुभ विचार हटकर शुभ विचारों की प्रादुर्भूति उत्पत्ति होने लगी। तब जिन कर्मदलिकों का अशुभ रूप में संचय हो चुका था। वे कर्मदलिक शुभ रूप में परिणित होने लगे। यह शुभ रूपता वृद्धिगत होती चली गई। जब उनके

विचार शुभ रूप में गति कर रहे थे तब राजन मैंने यह कहा था कि यदि इस समय वे आयुष्य बंधन करें तो उच्च देवलोक में जावें। किन्तु देवानुप्रिय ! उनकी भावना शुभ, शुभतर, शुभतम होती चली गई। वे गुणस्थानों पर आरोहण करने लगे। क्रमशः सातवें, आठवें गुणस्थान में आकर क्षपक श्रेणि में प्रवेश कर गए। अन्तर्मुहूर्त में ही वे नव्वां, दसवां, बारहवां गुणस्थान पार करते हुए घनघाती कर्मों को क्षय करके केवल ज्ञान, केवल दर्शन पाकर, तेरहवें में प्रवेश कर चुके हैं। अन्तरंग के समीक्षण द्वारा जिन्होंने काषायिक क्रिया–प्रतिक्रिया को विनिष्ट कर आत्मा का सही रूप में संशोधन किया है। अर्थात घनघाती कर्मों को विलग कर डाला और अन्त में मुक्ति को भी प्राप्त कर लिया। ये महायोगी थे–प्रसन्न चन्द्र राजर्षि

❖ ❖ ❖

पूणिया श्रावक

पूणिया श्रावक का मूल्यांकन भगवान महावीर ने किया। उसके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी। कथा भाग की दृष्टि से कथाओं में भिन्नता हो सकती है। कथाओं के कलेवर को पकड़ने की आवश्यकता नहीं है परन्तु उनकी भावना में क्या सार है, उसको ग्रहण करने की आवश्यकता है। करोड़ों की संपत्ति होने पर भी उसने उस संपत्ति को अभाव ग्रस्त व्यक्तियों के लिये सुरखित रखा। वह उस संपत्ति का ट्रस्टी बनकर रहने लगा, न कि उसका मालिक। अपने जीवन का निर्वाह करने के लिये, इस कथा भाग की दृष्टि से, वह सवा रुपये की पूणिया बेचकर व्यापार करता था। और अपना तथा अपनी पत्नी का जीवन निर्वाह करता था। निर्वाह की यह स्थिति जिस सादमी के साथ बनती है, नैतिकता की दृष्टि से वह जीवन कितना पवित्र होता है।

पूणिया आध्यात्मिक जीवन की साधना में बैठता था तो उसकी साधना एकाग्र होकर चल पड़ती था। परन्तु एक रोज अकस्मात उसकी एकाग्रता भंग हुई उसने चिंतन किया कि आज मुझ से क्या

पाप बना, जिसके कारण मेरी साधना में बाधा उत्पन्न हो रही है। उसने अपने जीवन को देखा, कुछ भी गल्ति दृष्टिगत नहीं हुई। फिर उसने सोचा मेरी धर्मपत्नी मेरे साथ रहती है।, उसके जीवन से यदि कोई त्रुटि हुई हो तो उस त्रुटि का भाग मेरे साथ जुड़ता है। क्योंकि मैं उससे संबंध रख कर चलता हूँ। अतः उसने अपनी धर्मपत्नी से कहा प्रिये, आज तुमसे तो कोई गल्ति नहीं बनी ? तुम अपने चौबीस घण्टों का चिंतन करो।

उसकी पत्नी ने पति की आज्ञा शिरोधार्य करके चिंतन किया तो ज्ञात हुआ कि उस दिन प्रातःकाल रसोई बनाने के लिये वह पडौसी के यहाँ से आग लाई तो उसके पास कुछ साधन नहीं था। इसलिये उसने पड़ौसी के यहाँ से आधा छाना उसकी आज्ञा प्राप्त किये बिना ही उठा लिया और आग लाकर चूल्हे में रख दी। संभव है उस छाने का असर भोजन पर पड़ा हो और इसी कारण से उसके पतिदेव के परिणाम चलायमान हुए हों।

आत्मावलोकन की इस स्थिति को उसने अपने पतिदेव के सामने रखा, पूणिया श्रावक ने कहा ठीक है, तुमने यह अपराध किया कि बिना आज्ञा के आधा छाना वहाँ से उठाया। परन्तु अब उसकी सफाई करो। पड़ौसी के यहाँ जाकर स्पष्ट कहो कि मैंने बिना पूछे आपका छाना उठाया, मुझसे यह गलती हुई। आप क्षमा करें और उस आधे छाने की जो कीमत हो, वह मुझ से लेवें। यदि बदले में छाना चाहे तो छाना लेवें।

वह पड़ौसिन के यहाँ गई और उसे सारी बात कह दी। यह सुनकर पडौसिन हैरान हो गई। वह बोली, आप सरीखे धर्मनिष्ठ मेरे पड़ौस में रहे और मेरे यहाँ से आग ले जाये, उससे मेरा घर पवित्र हो गया। मुझे कीमत नहीं चाहिये आप जो चाहें, यहाँ से ले जा सकती है। लेकिन उसने उत्तर दिया, बहिन आपका यह कहना ठीक है परन्तु मुझे तो अपने पति की आज्ञा का पालन करना है।

सुना जाता है कि औरंगजेब के जमाने में एक रुपये का सेर घी था, फिर भगवान महावीर के समय में तो घी कितना सस्ता होगा। अनाज भी सस्ता होगा। उस समय एक छाने की कीमत क्या होगी ?

आज तो छाने की भी कीमत है और घी भी क्या खरा है, यह तो आप जान ही रहे हैं। छाने की क्या कीमत है, यह भी आपको ज्ञात है। यह इस जमाने की ही बात है। परन्तु उस समय यदि आधा छाना भी मालिक की आज्ञा के बिना ले लिया तो चित भंग हो गया और वापिस दे दिया तो चित समाधि में लग गया।

बंधुओ ! आज के भाई भी अपने मन को एकाग्र करना चाहते हैं और चित की समाधि को कायम रखने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु क्या आप चौबीस घण्टों में पूर्व की दिनचर्या को देखने का प्रयत्न करते हैं ? कि बीते हुए चौबीस घण्टे कितनी गल्तियों में गये, हमने कितनी अनीति की, किस प्रकार से हमने आजीविका का उपार्जन किया, बिना मालिक की आज्ञा के आधा छाना तो घर में नहीं आ गया। उन सबका अपना समीक्षण करिये।

❖ ❖ ❖

परमात्मा कहाँ हैं और क्या करते हैं

एक समय बादशाह अकबर के मस्तिष्क में भी यह प्रश्न पैदा हुआ कि दुनिया में परमात्मा, परमात्मा तो सभी कहते हैं परन्तु परमात्मा कहाँ है और वह करता क्या है ? राजकीय कार्य समाप्त होने के पश्चात बादशाह ने अपने बुद्धिमान दीवान बीरबल से इस प्रश्न को पूछा, तब बीरबल ने निवेदन किया–जहांपनाह, इस प्रश्न का उत्तर सप्ताह भर के बाद मिलेगा। बादशाह ने कहा, अच्छा।

राजकीय कार्य करने के बाद संध्या के समय जब बीरबल अपनी हवेली पहुँचा तो उस समय भी उसके मस्तिष्क में वही प्रश्न घूम रहा था। उसने सोचा कि इस प्रश्न का समाधान कैसे किया जाय ? उसने कई व्यक्तियों के समक्ष इस प्रश्न को दोहराया परन्तु इसका कोई भी उत्तर नहीं दे सका। इस प्रकार की स्थिति में कुछ दिन और निकल गए।

एक दिन बीरबल बगीचे में से गुजर रहा था कि सहसा एक

अनाथ की ओर उसकी दृष्टि गई। उसने देखा कि वह बालक वहाँ एक–एक दाने को चुग रहा है और खाता जा रहा है। उसके सामने कुछ अनाज बिखरा हुआ था। परन्तु वह उसे बटोरता नहीं था और कुछ ही दाने उठा कर अपने मुँह में रख लेता था।

बीरबल ने पूछा, अरे, तू यह क्या कर रहा है। उस अनाथ लड़के ने कहा, मैं उदर की पूर्ति कर रहा हूँ। पिता बचपन में ही स्वर्ग सिधार गए और माता ने भी साथ नहीं दिया। वह भी परलोक सिधार गई। समाज के व्यक्ति भी मेरी ओर देखने वाले नहीं मिले। कोई मानव मेरा संरक्षण करे, ऐसी स्थिति नहीं बनी। तब दो हाथों के बीच पेट है तो उसकी पूर्ति तो करनी ही पड़ती है। मैं उसी के लिये यह दाने चुग रहा हूँ।

बीरबल ने कहा, बच्चे जब इतना अनाज बिखरा हुआ है तो तू इसको इकट्ठा करके और फिर व्यवस्थित रूप से रोटी बनाकर क्यों नहीं खाता है। बालक ने कहा मैं इस प्रकार की गफलत में रहने वाला नहीं। देखिए, समय की गति बड़ी विचित्र है। मैं पहिले इसको बटोर कर संग्रहित करूं और फिर रोटी बनाकर खाने की कोशिश करूँ। कदाचित इसके बीच में ही कोई बाधा आ सकती है। इसीलिये एक–एक दाना चुग रहा हूँ।

ऐसा सुनकर बीरबल ने सोचा कि यह बालक बुद्धिशाली मालूम हो रहा है। इसके कथन में मानव जीवन की शुभ प्रेरणा मिल रही है। इन्सान को मात्र संग्रह में ही न लग कर उपभोग करते हुये चलना चाहिये। जो मात्र संग्रह में ही लगे रहते हैं और उपभोग के लिये सोचते हैं कि आज करेंगे, कल करेंगे और बीच में ही आयुष्य समाप्त हो जाये तो उनके पाप का संचय तो हो गया परन्तु उपभोग नहीं हो पाया। इस बच्चे से बड़ी शिक्षा मिल रही है। यह कह रहा है कि जितना मिले उसे खा लिया जाय, संग्रह में न पड़ा जाये। संभव है यह बच्चा बादशाह के प्रश्न का उत्तर दे सकेगा।

गरीबी में रहने वाले व्यक्ति के मस्तिष्क में कई तरह की बातों का अनुभव होता है। उसके मस्तिष्क में कई ऐसी बातें भी रहती हैं, जो सुख में रहने वाली और गादी तकियों के सहारे बैठनेवालों के

मस्तिष्क में जल्दी नहीं बैठती।

बीरबल ने उस बालक से कहा, तूं यहां क्यों बैठा है ? मेरे साथ चल, मैं तुझे खाना खिलाऊँगा। यह सुनकर वह बीरबल के साथ चलने को तैयार हो गया। हवेली पर पहुँचकर बीरबल ने उसे खाना खिलाया और अच्छे कपड़े भी पहनने को दिये। इस प्रकार उसे इज्जत के साथ बिठाया और फिर कहा, तुम्हारे अन्दर बुद्धि का जो यह विकास हुआ है, इस विकास में तुम्हें सहायक कौन मिला। क्या तुमने अनुभवी पुरुष के साथ रह कर यह अनुभव प्राप्त किया है ?

लड़के ने उत्तर दिया, नहीं मुझे अनुभवी पुरुष का सहयोग कहाँ मिला ? मुझे तो अपने जीवन से ही कुछ अनुभव मिला है और मैं जीवन की ही बात सोचता हूँ। इस पर बीरबल ने कहा, लड़के, क्या तू बादशाह के प्रश्न का उत्तर दे सकता है ? लड़के ने कहा, कहिये प्रश्न क्या है ? बीरबल ने कहा, प्रश्न यह है कि परमात्मा कहां है और वह क्या करता है ?

उस अनाथ बालक ने प्रश्न सुनकर कहा, मैं इसका उत्तर दे सकता हूँ, आप निश्चित रहिये। जिस रोज बादशाह को उत्तर देना हो, उस रोज आप मुझे उसके पास ले चलिये।

सातवें दिन बीरबल उस बालक को लेकर दरबार में पहुँचा। राजकीय कार्य पूरा होने के पश्चात बादशाह ने बीरबल से अपने प्रश्न का उत्तर पूछा तो बीरबल ने निवेदन किया, जहांपनाह आपके इस प्रश्न का उत्तर तो यह एक छोटा बालक भी दे सकता है। तब बादशाह ने कहा, सचमुच क्या यह बालक हमारे प्रश्न का उत्तर दे सकेगा ? बीरबल ने कहा, हाँ जहांपनाह।

इस पर बादशाह ने बालक से पूछा, क्या तू हमारे प्रश्न का उत्तर दे सकता है। बालक ने अदब से सलाम करके कहा, हाँ जहांपनाह। बादशाह ने कहा, अच्छा, बतलाओ परमात्मा कहाँ और क्या करता है। बालक ने निवेदन किया, जहांपनाह एक कटोरे में दूध मंगवाईये। बादशाह के इशारे पर दूध का कटोरा आ गया। अनुचर ने उसे बालक के सामने रख दिया। बालक कुछ चिन्तन करता हुआ दूध में उंगली डालकर चखता है और बादशाह के सामने

देखता है।

बादशाह ने कहा, अरे तू यह क्या कर रहा है ? हमारे प्रश्न का उत्तर दे कि भगवान कहां है ? इस पर लड़के ने कहा हुजूर, आपके प्रश्न का उत्तर हो गया। बादशाह ने उत्सुकता से पूछा, अरे क्या हुआ ? हम तो नहीं समझे। लड़के ने कहा, यदि आप नहीं समझे तो मैं खुलासा करता हूँ, जब मैं छोटा बच्चा था, तब मेरी माता ने मुझे मक्खन की एक डली दी थी। मैं उस मक्खन को खाने लगा। उस समय मेरे मन में प्रश्न उठा कि यह मक्खन किस वृक्ष का फल है ? और माँ इसे कहाँ से तोड़ लाई है। इस प्रकार मेरे मन में जिज्ञासा हुई और मैंने माँ से पूछ ही लिया कि यह मक्खन किस वृक्ष का फल है। माँ ने कहा, बेटा यह वृक्ष का फल नहीं यह तो दूध में से निकलता है।

बालक की यह बात सुनकर बादशाह ने सोचा कि यह प्रश्न का क्या उत्तर देगा ? इसको तो यह भी मालूम नहीं कि मक्खन भी कहीं वृक्ष से निकलता है।

लड़के ने आगे कहा, जहाँपनाह, मेरी माता ने कहा था कि मक्खन दूध में से निकलता है। आपने दूध तो मंगवाया परन्तु वह मुझे इसमें मिल नहीं रहा है। बादशाह ने कहा मक्खन दूध में से निकलता है यह बात तेरी माता की सत्य है। परन्तु तेरे अन्दर दिमाग की कमी है। दूध में मक्खन भरा हुआ है पर अंगुली से नहीं निकलता है। दूध को संस्कार देकर जमाना पड़ता है। और फिर बिलौना करके मक्खन निकाला जाता है।

लड़के ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया, जहाँपनाह, क्या दूध में मक्खन नहीं है ? बादशाह ने कहा इसमें तो है ही तब लड़का बोल उठा–पर नजर नहीं आ रहा है।

इस बार बालक ने साहसपूर्वक कहा, जहाँपनाह आपके प्रथम प्रश्न का उत्तर इसमें हो गया। आप पूछते है कि भगवान कहां हैं ? तो सुनिये कि भगवान आपकी आत्मा में है। दूध में मक्खन है, यह आप स्वयं फरमा रहें है, वैसे ही आपकी आत्मा में भगवान है और आप फरमाते हैं कि दूध को संस्कार करने से, जमाने से और विलोना करने

से मक्खन बाहर आ जाता है, वैसे ही इस आत्मा में संस्कार करके मंथन किया जाये तो आत्मा में परमात्मा की अनुभूति हो सकती है।

ऐसा उचित उत्तर सुनते ही बादशाह को निश्चय हो गया कि बात सच है। बालक ने ठीक ही कहा है कि जैसे दूध के कण–कण में मक्खन है, तिल में तेल है, लकड़ी में अग्नि है और फूल में सुगंध है, वैसे ही आत्मा में परमात्मा का स्वरूप समाया हुआ है।

बादशाह के समाधान की तरह ही मैं समझता हूँ कि आपका भी समाधान हुआ होगा। आपके मस्तिष्क में ऐसा प्रश्न उठा या नहीं, यह आप स्वयं जानें।

बन्धुओं ! बादशाह की एक जिज्ञासा का तो समाधान हुआ परन्तु दूसरी जिज्ञासा शेष रह गई थी। बादशाह ने कहा, लड़के ! भगवान कहाँ रहते हैं, यह तो पता लग गया परन्तु करते क्या है, इसका क्या उत्तर ? तुमने आत्मा को भगवान बतलाया परन्तु आत्मा पाप कर रही है, तो क्या भगवान पाप करता है, अनीति करता है ? क्या भगवान किसी को सता रहा है ? लोग तो एक दूसरे को सता रहें है, वे लड़ रहे हैं, क्या ये कर्म भी भगवान करता है।

बालक ने नम्रता से निवेदन किया, जहाँपनाह आप अपनी पोशाक और शृंगार सजाते हुए किसका अवलम्बन लेते है ? हमारी पोशाक ठीक है या नहीं, हमारी आकृति साफ है या नहीं, इसकी साक्षी आप किससे करते हैं ? बादशाह ने प्रत्युत्तर में कहा, दर्पण से। दर्पण को सामने रखकर हम अपनी आकृति देख लेते हैं। बालक ने फिर पूछा जहाँपनाह ! दर्पण आपके लिये क्या करता है। बादशाह ने कहा, अरे दर्पण क्या करेगा, दर्पण में देखकर हम स्वयं कर लेते है।

बालक ने कहा, जहाँपनाह ! आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर भी हो गया दर्पण स्वच्छ है, वह एक स्थान पर रखा है और कुछ भी नहीं कर रहा है। आप अपनी आकृति उसमें देख कर अपने को सुन्दर बनाने का प्रयास करते हैं। किन्तु वह दर्पण कुछ नहीं करता है, सब कुछ हम ही करते है। आप भगवान को दर्पण के समान स्वच्छ मान लें। प्रभु तो दर्पण की तरह तटस्थ हैं। आप परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को देखकर अपने आपकी तुलना करें। आप अपने अन्दर की कालिमा

को दूर हटायेंगे तो परमात्मा का कार्य दिखलाई पड़ेगा। परमात्मा को आदर्श रखे बिना आप कालिमा नहीं मिटा सकते हैं, आत्मा को पवित्र बनाने में समर्थ नहीं बन सकते हैं। बादशाह के प्रश्न का समाधान ठीक ढंग से हो गया।

बन्धुओं ! यह शक्ति हर एक आत्मा में है। परन्तु ऐसी शक्ति आप तभी प्रकट कर सकेंगे, जब आप सत्पुरुषार्थ पूर्वक भगवान के निर्मल स्वरूप का ध्यान करते हुए अपनी अपनी आत्मा को उन गुणों से विभूषित करने का प्रयास करेंगे। यदि आप ऐसा प्रयास करेंगे तो आपके जीवन में दुःख और दुर्भाग्य नहीं रह सकेंगे। आप भी सत् चित आनन्द घन रूप परमात्मा बन जायेंगे।

❖ ❖ ❖

स्व. श्री जवाहराचार्य जी की सहिष्णुता

स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. के जीवन की घटना का मुझे स्मरण आ रहा है। आचार्य श्री जब जलगांव में विराजमान थे, तब उनके हाथ में विषैला फोड़ा हो गया था। डॉक्टर मूलगावकर ने ऑपरेशन को अनिवार्य बताया। ऑपरेशन निश्चित हुआ। डॉक्टर ने उन्हें बेहोश करना चाहा। पूज्यश्री ने दृढ़ता से कहा, "बेहोश करने की आवश्यकता नहीं है। आप मेरी होश हवास की स्थिति में भी ऑपरेशन कर सकते हैं। डॉक्टर हैरान था। उसने पुनः आग्रह और निवेदन किया परन्तु आचार्य श्री अपनी बात पर दृढ़ रहे। उन्होंने अपना हाथ लम्बा कर दिया। ऑपरेशन किया और वे उसे इस रीति से देखते रहे मानों कोई अन्य व्यक्ति देख रहा हो। चूं तक उनके मुख से न निकली। कितनी दृढ़ता और सहिष्णुता है यह। यह तो अभी अभी कुछ वर्षों पूर्व की घटना है। आप में से कइयों को उस महान विभूति के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा।

उनके जीवन का एक और ऐसा ही प्रसंग मेरी स्मृति में उभर रहा है। बीकानेर में आचार्य श्री के अदीठ फोड़ा हो गया था। वे स्वयं

उठ नहीं पाते थे। संत सहारा देकर उठाते थे। एक बार संत उन्हें उठा रहे थे कि असावधानी से अंगुली फोड़े पर लग गई और खून निकल आया। संत घबरा गये। उस समय आचार्य श्री ने कहा, "कोई बात नहीं क्यों घबरा रहे हो। जान–बूझ कर तुमने ऐसा नहीं किया है। तुम्हारी कोई गलती नहीं है। सब ठीक हो जाएगा। जरा भी ध्यान नहीं रखते। अविवेक से काम करते हो। ऐसा तनिक भी उपालंभ उन्होंने नहीं दिया। उन महापुरुष की ऐसा अद्‌भुत सहिष्णुता थी आज तो जरा–सा कांटा चुभ जाता है तो हाय–तोबा करते हैं। स्वर्गीय आचार्य श्री के चरित्र से भी दृढ़ता और सहिष्णुता की सीख लेनी चाहिए।

❖ ❖ ❖

स्वामी रामतीर्थ का एक प्रसंग

स्वामी रामतीर्थ जब अमेरिका गये थे, तब वहां के लोग उनके जीवन को देखकर आश्चर्य करते थे। वे अपने लिए उत्तम पुरुष का प्रयोग नहीं करते थे। उनसे पूछा जाता कि "आपको भूख लगी है तो उनका उत्तर होता–राम को भूख लगी है। आपको भूख लगती है यह नहीं, यह पूछे जाने पर वे कहते–"राम को भूख लगती है।" लोग उनसे पूछते कि "राम का तात्पर्य क्या है, वे कहते, "इस शरीर का नाम राम है। शरीर को भूख लगती है, मेरी आत्मा को नहीं लगती। मैं अपने शरीर से परे हूँ। शरीर का दृष्टा होकर इसकी देख–रेख करता हूँ। इस प्रकार स्वामी रामतीर्थ शरीर और आत्मा के भेद को व्यवहार में उतार कर बताते थे।

❖ ❖ ❖

आचरण ही सम्यक पठन है

महाभारत में कौरव और पाण्डवों का एक प्रसंग वर्णित है। वे विद्याध्ययन कर रहे थे। गुरुजी ने सभी विद्यार्थियों को याद करने लिये एक पाठ दिया–"क्षमां कुरु"। साथ ही यह भी कहा कि इस पाठ को जो जल्दी याद करके लायेगा उसे आगे का पाठ दिया जायेगा। दुर्योधन आदि छात्र बड़े प्रसन्न हुए कि अहो ! इसमें क्या है। अभी सुना देते हैं। दो ही तो शब्द याद करने हैं। वे सब जल्दी–जल्दी पाठ सुनाने के लिये आतुर हो रहे थे। और उन्होंने एक के बाद एक "क्षमां कुरु" बोल कर गुरुदेव को पाठ सुना भी दिया।

धर्मराज युधिष्ठर चुपचाप बैठे हुए थे। वे "क्षमां कुरु" पाठ सुनाने की आतुरता प्रकट नहीं कर रहे थे। अध्यापक ने पूछा, "धर्मराज क्या बात है। पाठ याद हुआ ?"

युधिष्ठिर ने कहा, "गुरुदेव, अभी याद नहीं हुआ।"

शिक्षक ने थोड़ी देर बाद पुनः पूछा, "युधिष्ठिर, पाठ याद हुआ।" अभी याद नहीं हुआ, गुरुदेव।"

गुरुजी ने कहा, "तुम बड़े राजकुमार हो। तुम्हारी बुद्धि कितनी मंद है कि छोटे–छोटे दो शब्द भी अब तक याद न कर पाये। "धर्मराज ने विनय से कहा, "गुरुदेव ! याद करने का प्रयास कर रहा हूँ।" थोड़ा समय और बीत गया। गुरुजी ने कहा, "युधिष्ठिर ! अब तो पाठ सुनाओ।"

"गुरुदेव ! थोड़ा याद हुआ है।"

यह सुनकर गुरुजी को क्रोध आ गया और उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर के गाल पर चांटा लगा दिया। गाल लाल हो गया। धर्मराज मुस्कराने लगे।

गुरुजी को अचरज हुआ। वे बोले, "तू कैसा अजीब छात्र है ! चांटा खाकर भी हंसता है, बड़ा ढीठ है।"

गुरुदेव ! "पाठ याद कर रहा हूँ।"

फिर वही बात ! दुबारा गुरुजी ने चांटा कस दिया। क्या अब भी याद नहीं हुआ। "याद हो रहा है, गुरुदेव !"

अध्यापक हैरान हो गये। उन्होंने पूछा–"कहाँ याद कर रहा है।"

"गुरुदेव ! परीक्षा दे रहा हूँ। आपने कहा था "क्षमां कुरुं" अर्थात क्षमा करो। क्षमा कब की जाती है। अनुकूल स्थितियों में क्षमा करने का प्रसंग नहीं आता। जब प्रतिकूल परिस्थितियां सामने आती हैं, तब क्षमा की कसौटी होती है।"

जब आपने तमाचा लगाया तब क्षमा का पाठ थोड़ा याद हुआ। ''क्षमा करो'' शब्द रट लेना कोई अर्थ नहीं रखता। क्षमा को जब जीवन में उतारा जाय तो मैं समझता हूँ कि क्षमा का पाठ याद हुआ। मैं बड़ा राजकुमार हूँ। मैं आपको कह सकता था कि आप कौन होते हैं मुझे चांटा लगाने वाले लेकिन इस स्थिति में मैंने क्षमा को जीवन में उतारने का प्रयत्न किया। चांटा लगने पर भी मुझे क्रोध नहीं आया। मैं क्षमा की कसौटी में उत्तीर्ण रहा। अब मैं कह सकता हूँ ''क्षमां कुरू'' यह पाठ मुझे याद हो गया।''

यह सुनकर गुरुजी दंग रह गये। उन्हें अपने प्रति क्षोभ हुआ और उन्होंने युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए कहा कि सचमुच पाठ को आचरण में लाना ही वास्तविक पढ़ना है। तुम्हारे जैसे छात्र अति विरल हैं।

❖ ❖ ❖

द्विमुख महाराजा की विरक्ति

महाराजा जयवर्धन कम्पिलपुर में भव्य व्यवस्था के साथ राज्य कर रहे थे। उनके सात पुत्र और एक कन्या थी, कन्या का नाम मदनमंजरी था। नाम के अनुसार ही रूप पाया था। सात भाइयों के बीच एक बहिन हो तो उसके प्रति कितना आह्लाद भाव होता है। आज

की स्वार्थमयी दुनियां में भले ही ऐसा न हो परन्तु उस समय यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात मानी जाती थी। आज तो दस भाइयों के बीच एक बहिन हो, वह भी भार रूप प्रतीत होती है। यह दुःख का विषय और स्वार्थ की पराकाष्ठा है। मदनमंजरी सात भाइयों के बीच बड़े आनन्द में रह रही थी।

एक दिन महाराजा जयवर्धन राजसभा में बैठे हुए थे। उनका दूत देशाटन करके आया था। महाराज ने उसे पूछा कि अन्य देशों में तुमने क्या सुना, क्या देखा, दूत ने कहा–महाराज ! सर्वत्र आपकी प्रशंसा हो रही है।

महाराज बोले मैं अपनी तारीफ नहीं सुनना चाहता। मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुमने क्या अनोखी वस्तु देखी है।

दूत बोला "वत्स देश के राजा शतानीक ने अपने राज्य में बहुत सी चित्रशालाएं बना रखी हैं। वे बड़ी सुन्दर और रमणीय है। अपने राज्य में भी ऐसी सुन्दर चित्रशाला होनी चाहिये।

महाराज ने आदेश दिया कि ऐसी चित्रशाला का निर्माण किया जाय जो अद्‌भुत हो, जिसकी सानी की कोई दूसरी चित्रशाला न हो। अद्वितीय चित्रशाला के निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया गया। संयोगवश नींव खोदते समय एक ऐसा मुक्त निकला जो अद्वितीय और असाधारण था। उस को साफ करके जब महाराजा ने अपने हृदय पर धारण किया तो उसमें महाराजा के दो मुख प्रतिबिम्बित हुए। इस घटना को लेकर जयवर्धन महाराज का नाम द्विमुख पड़ गया। उनकी देश–विदेश में प्रशंसा होने लगी।

उज्जयिनी के सम्राट चण्डप्रद्योतन को जब इस मुक्त के विषय में मालूम हुआ तो वह उसे पाने के लिये ललचा उठा। उसने द्विमुख महाराज के पास दूत भेज कर कहलाया कि वह मुक्त आप चण्डप्रद्योतन राजा को दे दीजिये। महाराजा द्विमुख ने कहा कि "मांगने से कोई वस्तु नहीं मिला करती। उसकी कीमत चुकानी पड़ती है। यदि तुम्हारे राजा अपनी महारानी, रक्ष और हाथी मुझे दें तो मैं यह मुक्त उन्हें दे सकता हूँ।"

दूत मुंह बिगाड़ता हुआ चला गया। राजा चण्डप्रद्योतन को

उसने सारी बात कही। राजा चण्डप्रद्योतन क्रोध के मारे आग उगलने लगा। उसने बहुत बड़ी सेना लेकर द्विमुख महाराज पर आक्रमण कर दिया।

जयवर्धन राजा ने सोचा कि मुझे आक्रान्ता नहीं बनना है किन्तु आक्रमण का मुकाबला कर आक्रान्ता को हटाना है। उन्होंने अपनी सेना सजाई और चण्डप्रद्योतन को परास्त कर बंदी बना लिया।

राजा चण्डप्रद्योतन जेल में बंद था। उसके खाने–पीने की सारी सुविधाएं दी जा रही थीं परन्तु परतंत्रता का दुःख उसे पीड़ित कर रहा था। वह जेल में बैठा हुआ तिलमिला रहा था।

एक दिन राजा चण्डप्रद्योतन जहां बन्द था, उसकी ऊपरी मंजिल पर वह घूम रहा था। दृष्टि अचानक राजमहल के झरोखे में बैठी हुई राजकन्या पर पड़ी। वह देख कर मोहित हो गया। उसके मन में संकल्प विकल्प चलने लगे। हालांकि वह जेल में बंद था। तदापि वह उस राजकन्या के प्रति आसक्त बन गया। उसकी भूख मन्द पड़ गई, प्यास जाती रही, शरीर सूखने लगा, मुख कुम्लाने लगा। महाराजा जयवर्धन यदा–कदा उसे संभालने और देखने आया करते थे तो एक दिन महाराजा जेल में पहुंचे और उन्होंने चण्डप्रद्योतन की यह दुर्दशा देखी।

उन्होंने चण्डप्रद्योतन से पूछा कि राजन ! तुम्हारी यह अवस्था क्यों हो गई है ? क्या जेल में खान–पान की समुचित व्यवस्था नहीं है। कोई रोग उत्पन्न हो गया है क्या ! आपको क्या चिन्ता सता रही है।

चण्डप्रद्योतन के नेत्र शर्म से झुक गये। वह जमीन कुरदते हुए बोला–राजन ! क्या कहूँ मन की बात कहना निरर्थक है क्योंकि उसकी पूर्ति होने की संभावना नहीं है।

जयवर्दन–राजन ! मैं अनीति का प्रतिकार करने वाला हूँ। आक्रांता को हटाने में मैं वज्र सरीखा कठोर हूं परन्तु दुखियों को देख कर फूल के समान कोमल बन जाता हूँ। आप अपने मन की बात कहिये, मैं यथाशक्ति उसे पूर्ण करने का प्रयत्न करूंगा।

चण्डप्रद्योतन ने कहा, "क्या बताऊँ राजन ! कह नहीं पा रहा हूँ और कहे बिना कोई दूसरा चारा भी नहीं है। आपके राजभवन में राजकन्या को देख कर मेरा मन डांवाडोल हो गया है और इसी कारण से मेरी दुर्दशा हो गई है। महाराजा जयवर्दन सोचने लगे कि "राजा चण्डप्रद्योतन उज्जयिनी के नरेश हैं, शक्तिसम्पन्न हैं लेकिन इनकी नीति ठीक नहीं थी। भौतिक सुख साधन सामग्री की कोई कमी नहीं है। यह केवल अपने जीवन को ठीक–ठीक संभाल नहीं पाया है। यदि यह अपनी दुर्नीति का परित्याग कर दे, यदि यह अपना परिमार्जन कर ले तो राजकन्या का विवाह इनके साथ करने में कोई बाधा नहीं रहती।"

उन्होंने चण्डप्रद्योतन से कहा "राजन ! यदि आप अपनी आक्रान्ता नीति छोड़ दें, यदि आप भविष्य में किसी पर आक्रमण न करने की प्रतिज्ञा करें तो मैं राजकन्या का विवाह आपके साथ कर सकता हूँ।

चण्डप्रद्योतन ने ऐसा प्रण किया और महाराजा ने उसे जेल से मुक्त कर बड़ी उमंग के साथ मदनमंजरी का विवाह उसके साथ कर दिया। हथलेवा छुड़ाते समय उज्जयिनी का राज्य उसे लौटा दिया। उसे पुनः राज्याधिपति नरेश बना दिया।

महाराज द्विमुख ने इस विवाह के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय स्तर पर इन्द्र–महोत्सव मनाने का आयोजन किया। एक सप्ताह तक महोत्सव चलता रहा। इस अवसर पर एक इन्द्र–ध्वज बनाया गया। लकड़ियों के स्तंभों से उसे खूब सजाया गया था। अनेक राजा–महाराजाओं को आमंत्रित किया गया था। बड़े ठाट–बाट से राजकीय महोत्सव मनाया गया। महोत्सव की सानन्द समाप्ति हुई। सब अपने–अपने स्थान पर चले गये। इन्द्रध्वज की सजावट उतर चुकी थी। सजावट के काम आई लकड़ियां अब अस्त–व्यस्त इधर–उधर पड़ी हुई थी।

एक दिन महाराजा द्विमुख उधर से होकर घूमने निकले। उन्होंने वे लकड़ियां अस्तव्यस्त अवस्था में देखी। उन्होंने मंत्री से पूछा। मंत्री ने कहा–"स्वामिन ! महोत्सव के समय जो इन्द्रध्वज

बनाया गया था उसकी सजावट में इसका प्रयोग किया गया था" महाराजा को विचार आया "अहो ! ये लकड़ियां उस दिन कितनी रमणीय और सुन्दर प्रतीत हो रही थीं और आज ये कैसी अस्तव्यस्त सी लग रही हैं। अहो ! मेरे जीवन की दशा भी इसी प्रकार परिवर्तित हो सकती है। मैं अभी वस्त्राभूषण से अलंकृत होकर सुन्दर लग रहा हूँ। परन्तु कभी मेरी दशा में भी परिवर्तन आ सकता है। अतएव मुझे अभी से सावधान हो जाना चाहिये और ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि मेरा शाश्वत सौन्दर्य कायम रहे। शारीरिक सौन्दर्य परिवर्तनशील और क्षणभंगुर है। मुझे आत्मिक सौन्दर्य को प्राप्त करना है जो शाश्वत है।

ऐसा विचार कर महाराजा द्विमुख राज्य को छोड़कर विरक्त बन गये। वे आत्मसाधना के मार्ग पर चल पड़े। उन्होंने अपनी आत्मा को स्वाभाविक सद्‌गुणों से सजाया। उन्होंने शाश्वत सौन्दर्य को पा लिया। वे कर्मो के बन्धनों से मुक्त हो गये।

द्विमुख महाराज की विरक्ति हमारे सामने आदर्श के रूप में उपस्थित है। उससे हमें प्रेरणा लेनी चाहिये और अपनी आत्मा को भी शाश्वत सौन्दर्य से समलंकृत करना चाहिये।

❖ ❖ ❖

लापसी में जहर

एक बड़ा सा गांव था। उसमें एक सेठजी ने सारे गांव को जीमने का न्यौता दिया। आजकल तो पंचायती का वैसा महत्व नहीं रहा लेकिन उस समय उसका महत्व माना जाता था। अतः पंचों को बुलाकर उनकी आज्ञा मांगी गई। पंचों ने अनुमति देते हुए कहा कि शुद्ध घी की लापसी बनाना और मन में 16 सेर घी डालना। आज्ञानुसार रसोई बनाई गई और दूर–दूर मेहमानों सहित सिगरी न्यात को न्यौता दिला दिया। सब लोग जीमने जाने की तैयारी करने लगे। बाल–बच्चों को और मेहमानों को साथ लेकर जीमने जाने की लिये पूरी तैयारी हो रही है।

भाइयों ! जैसी तैयारी लापसी जीमने के लिये की जा रही है, वैसी तैयारी इस धार्मिक भवन में आध्यात्मिक जीमन जीमने के लिये की जाती है क्या ? यहां जो भोजन परोसा जाता है उसे जीमने के लिये अकेले–अकेले आते हैं या बाल–बच्चों और मेहमानों को भी साथ लाते हैं। यह भोजन भी उतना ही रूचता है क्या ? जितनी शुद्ध घी की लापसी रूचती है, ध्यान रखिये, लापसी का जीमन क्षणिक है। मैं जो भोजन परोस रहा हूँ वह स्थायी है। वह आपकी भूख को सदा के लिये शान्त करने वाला है। वह ऐसी तृप्ति करने वाला है कि फिर कभी भी भूख की वेदना ही न रहे अतएव इस आध्यात्मिक भोजन में भी उतनी ही रूचि होनी चाहिए। अस्तु।

गांव में लापसी जीमने की तैयारी चल रही है। इधर एक सेठ बीमार था। लापसी का नाम सुनकर उसके मुंह में पानी आ गया। वह भी लापसी जीमने के लिये उत्सुक बना परन्तु उसके वैद्यराज जी का इलाज चल रहा था। उसने वैद्य जी से पूछने का विचार किया कि गुड़ की लापसी खाने में कोई हर्ज तो नहीं है, संयोग से वैद्य जी उधर आ निकले। वे जरूरी काम होने से जल्दी में थे तो भी सेठ ने उन्हें रोक कर पूछ ही लिया। वैद्य जल्दी में थे। अतः "लापसी तो जहर है" कह कर वे चले गये। सेठ ने सोचा–"लापसी में जहर है, खाऊंगा तो मर जाऊंगा। परिवार वालों को क्यों कर भेजूं, "उसने परिवार वालों को कह दिया–"चुपचाप घर में बैठ जाओ, जीमने मत जाओ, लापसी में जहर है। उन्होंने कहा–"हम तो नहीं जायेंगे परन्तु बहिन बेटियां और सगे सम्बन्धी जाएंगे तो उनका क्या होगा। सेठ ने कहा–"चुपचाप उनको भी सूचना कर दो। उनको सूचना कर दी कि लापसी में जहर है, जीमने मत जाना।"

सारे गांव में सनसनी फैल गई। कोई जीमने नहीं गया। सेठ ने सोचा कि, "क्या बात हो गई है। लोग जीमने क्यों नहीं आ रहे हैं। उसने खास खास लोगों को बुलावा भेजा। फिर भी कोई नहीं आया। सेठ को बड़ा विचार हुआ कि 'मेरा अपराध क्या है, जो लोग जीमने नहीं आ रहे हैं।' उसने जाजम बिछा कर पंचों को बुलाया और उनसे पूछा कि बात क्या है, लोग जीमने क्यों नहीं आ रहे हैं ? सब एक

दूसरे का मुंह देखने लगे। उनमें से एक समझदार व्यक्ति ने कहा कि क्यों इसे तंग करते हो, जो बात हो, स्पष्ट क्यों नहीं कहते।

तब पंचों ने कहा–ज्ञात हुआ है कि बनी हुई लापसी में जहर डाला गया है।

सेठ ने कहा, "कैसा जहर ? कौन कहता है कि लापसी में जहर है। पंचों ने कहा, "हमने प्रामाणिक व्यक्तियों से सुना है।"

सेठ–यह बात आपने किससे सुनी, मैंने तो जहर डलवाया नहीं है। आप इसकी जांच कीजिये।

पंच–यदि तुमको पक्का विश्वास है कि इसमें जहर नहीं है तो पहले तुम ही जीम लो। फिर सब जीमने आ जाएंगे।

सेठ ने सोचा–मैंने तो लापसी में विष मिलाया नहीं है परन्तु यदि किसी अन्य दुष्ट ने ऐसी हरकत कर दी तो क्या मालूम, अतः वह पहले जीमने में आनाकानी करने लगा।

इससे पंचों को सन्देह हो गया कि अवश्य दाल में काला है। उन्होंने रसोइयों को पूछा कि क्या लापसी में जहर है।

वह कहने लगा, "नहीं साहब, कौन कहता है कि लापसी में जहर है।" उससे भी कहा गया कि यदि ऐसा है तो तुम पहले जीम लो। रसोइया सोचने लगा–संभव है, मैं इधर–उधर चला गया होऊं तब किसी ने जहर मिला दिया होगा तो मैं फिजूल ही मारा जाऊं। अतः उसने भी पहले जीमने से इन्कार कर दिया।

पंचों का सन्देह बढ़ता गया। सेठ का मुंह उतर गया। उसने सोचा–गजब हो गया। सारा किया–कराया गुड़ गोबर हो गया। हजारों का खर्च बेकार हुआ। आखिरकार कुछ समझदार व्यक्तियों ने पूछताछ शुरू की कि यह बात कहां से उठी है। जिससे पूछा गया, वह कहने लगा कि मुझे तो अमुक व्यक्ति ने कहा। उससे पूछा गया तो उसने दूसरे का नाम बताया दूसरे ने तीसरे का नाम बताया यों बात पहुंची उस बीमार सेठ तक।

उस सेठ को बुला कर पूछा गया कि क्या आपने कहा था कि लापसी में जहर है उसने कहा–हां, कहा था।

"तो क्या आपने जहर डालते देखा था,"

"नहीं। वैद्य जी ने कहा था कि लापसी में जहर है।"

उन्होंने सोचा कि सम्भव है जहर की पुड़िया वैद्यजी के यहां से गई है उन्हें बुला कर पूछने पर पता लग सकेगा। वैद्यजी से पूछा गया कि आपके यहां से जहर की पुड़िया गई है क्या ?

वैद्य जी ने कहा–"मेरे यहां से तो जहर की पुड़िया नहीं गई।"

तब आपने सेठजी को कैसे कहा कि लापसी में जहर है।

वैद्य जी हंसने लगे। उन्होंने कहा, सेठजी के मेरी दवाई चल रही था, उस दवाई पर गुड़ तेल, खटाई खाने की मनाई है। इसलिये जब सेठ जी ने मुझसे लापसी खाने की पूछा तो मैंने कहा कि "आपके लिये लापसी में जहर है।" लापसी में गुड़ है, इसलिये उनको खाने को मनाही की थी।

पंचों ने कहा कि वैद्य जी ! आपको विश्वास है कि लापसी में जहर नहीं है तो आप पहले जीम लीजिए। वैद्यजी ने सोचा कि मेरे यहां से विष की पुड़िया गई नहीं है और न इस प्रकार की कोई संभावना ही है। व्यर्थ की बात चल पड़ी है। इसलिए वैद्य जी ने पहले भोजन कर लिया। फिर सब लोगों ने लापसी का भोजन किया।

बन्धुओ ! ऐसी व्यर्थ की बातें नहीं करनी चाहिए। किस प्रसंग से कौनसी बात कही गई है, इसका पहले निर्णय कर लेना चाहिए। व्यर्थ की बात बना कर दूसरे के कलेजे में तीर नहीं चुभाने चाहिए। जो लोग ऐसा करते हैं उनके चिकने कर्मों का बंध होता है। सहज में उन कर्मों से छुटकारा नहीं हो सकता।

❖ ❖ ❖

फक्कड़ महात्मा

अंग्रेजों के शासन–काल की घटना है। एक आत्मिक शक्ति का प्राथमिक साधक अपने निजी कारणों को लेकर मद्रास की ओर रेल से यात्रा कर रहा था। एक अंग्रेज ऑफिसर भी उसी डिब्बे में

आकर बैठा। उसने देखा कि यह हट्टा–कट्टा हिन्दुस्तानी है। वह भयभीत और आशंकित होने लगा। उसने रेल अधिकारियों से कहा कि इस व्यक्ति को इस डिब्बे से हटा दो। अंग्रेजों का साम्राज्य था। रेल अधिकारियों ने उस महात्मा को कहा कि तुम यहां से उठ कर दूसरे डिब्बे में चले जाओ। उसने कहा, "क्यों जाऊं, "मेरे पास भी टिकिट है। मैं यहां से नहीं हटूंगा।" अधिकारियों ने बहुतेरा कहा परन्तु महात्मा भी फक्कड़ थे। वे अड़ गये। उधर वह अंग्रेज शीघ्रता कर रहा था। जल्दी उतारों इसकों। अधिकारियों ने कहा–"बाबा" उतर जाओं नहीं तो घसीट कर उतार देंगे। उसने सोचा–"अब जिद करना बेकार है, अपमानित होने से क्या लाभ है" वह उतर पड़ा। अंग्रेज ऑफिसर प्रसन्न हो गया। अधिकारियों ने गाड़ी चलाई, परन्तु यह क्या इंजिन आगे बढ़ा ही नहीं। ड्राइवर ने बहुत प्रयत्न किया परन्तु सब निष्फल हुआ। दूसरा इंजिन मंगवाया गया परन्तु वह भी कारगर सिद्ध नहीं हुआ। तीसरा इंजिन मंगवाया गया, वह भी निरर्थक हुआ। आखिर उन्होंने देखा कि बात क्या है। चर्मचक्षुओं से कुछ प्रतीत नहीं हुआ। सूक्ष्म–दर्शक यन्त्र से देखनें पर ज्ञान हुआ कि कुछ किरणें वहां सक्रिय हैं। उसका अनुसंधान किया गया कि आखिर ये किरणें कहां से आ रही हैं। अनुसंधान से पता चला कि जिस फक्कड़ महात्मा को गाड़ी से नीचे उतारा था, वह अपने सिर के पीछे हाथ रखकर बैठा हुआ था और उसकी दृष्टि इंजिन पर लगी हुई थी। उसकी दृष्टि में इतनी ताकत थी कि इंजिन की मशीनरी भी ठप्प हो गई। रेल्वे के अधिकारी आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने अंग्रेज ऑफिसर को सारी स्थिति समझाई। वह ऑफिसर नीचे उतरा। फक्कड़ महात्मा के चरणों में टोप डाल कर कहा कि "आप पधारिये और उसी डिब्बे में बैठिये।" उसने कहा, "नहीं, तुम जाओ ! हिन्दुस्तानियों के प्रति तुम ऐसा दुर्व्यवहार करते हो ! तुम बैठो उस डिब्बे में, हम बाद में आ जाएंगे।" अंग्रेज ऑफिसर ने बहुत अनुनय–विनय की तब कहीं जाकर वह फक्कड़ उसी डिब्बे में बैठा उसके बैठते ही इंजिन धड़–धड़ करता हुआ आगे बढ़ता गया।

भाइयो ! यह चमत्कार तो आध्यात्मिक शक्ति का साधारण

रूप है। इससे कई गुनी अधिक शक्ति होती है आत्मबल की।

❖ ❖ ❖

संतोषी परमसुखी

जो व्यक्ति राग–द्वेष को मंद करता हुआ नैतिकता के साथ निर्लोभ–वृति से चलता है, उसके पास भौतिक सम्पत्ति चाहे कितनी भी कम क्यों न हो, वह चैन से रह सकता है। इस प्रसंग पर एक और छोटा सा उदाहरण सुना देता हूँ। राजा भोज सादी पोशाक में जंगल में घूम रहा था, तब उसने एक मस्त लकड़हारे को कहा "तुम कौन हो ?" पर वह बिना उत्तर दिये आगे बढ़ गया। यह देख राजा भोज ने सोचा कि यह कितना निर्भीक है। पुनः राजा ने आगे बढ़कर पूछा कि तुम कौन हो ? तब उत्तर मिला कि मैं राजा भोज हूँ। राजा भोज को बड़ा आश्चर्य हुआ। भोज उसके साथ साथ चलने लगा" वह जहां बैठा, राजा भोज भी वहां बैठ गया और पूछने लगा कि क्या राजा भोज भी लकड़ी का भार ढोता है ? क्या तुम सचमुच राजा भोज हो ? तब वह कहने लगा–अरे ! राजा भोज जितना राजसी आनंद का उपभोग नहीं करता, उतना मैं करता हूँ। मुझे नित्य प्रतिदिन लकड़ी बेचने में छः टका मिलता है, जिसमें से एक टका बोरा को देता हूँ, एक टका आसामी को, एक टका मंत्री को, एक स्वयं के लिये, एक अतिथि सत्कार में तथा एक भण्डार में डालता हूँ। "राजा ने पूछा तुम्हारा बोरा कौन हैं ? तो वह बोला मेरे माता–पिता हैं। क्योंकि उन्होंने मुझे पाल–पोसकर बड़ा किया और इस योग्य बनाया। इसलिये वे अब मेरे लेनदार हैं। आसामी मेरे पुत्र–पुत्रियां हैं। क्योंकि वे मेरे से ऋण ले रहे हैं। मंत्री मेरा धर्मपत्नी हैं, क्योंकि वह मुझे नेक सलाह देती है। इसलिये मैं माता–पिता को एक टका, पुत्र–पुत्रियों के लिये एक टका, पत्नी के लिये एक टका, शेष तीन में से एक भण्डार में, एक अतिथि के लिये व एक मेरे लिये खर्च करता हूँ। मैं अपनी इस आमदनी में इतना मस्त हूँ जितनी मस्ती विशाल समृद्धि सम्पन्न राजा

भोज के भी नहीं है।

भोज सोचने लगा कि ऐसी सुन्दर व्यवस्था तो मेरे पास भी नहीं है। कठियारे की मस्ती में मूल कारण संतोष और आत्मनिर्भरता थी।

❖ ❖ ❖

सत्यनिष्ठा का परिणाम

एक समय का प्रसंग है—ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. जब प्रतापगढ़ में विराजमान थे। तब पूज्य गुरुदेव ने फरमाया कि जो मनुष्य सत्यनिष्ठा रखते हैं उनके प्रति सभी विश्वास रखते हैं। उनकी प्रतिष्ठा का प्रसंग बनता है। उन्हें कभी आर्थिक आदि संकटों का भी मुकाबला नहीं करना पड़ता। यह बात श्रवण कर एक सेठ साहब जो बड़े भव्यात्मा एवं हलुकर्मी थे। उन्होंने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा ले ली और व्यापार की स्थिति से उनके जो कपड़े की दुकान थी, वे उस दुकान में बड़ी सत्यनिष्ठा के साथ अपना व्यापार चलाने लगे। अपने ग्राहकों को कहने लगे कि इस कपड़े की कीमत एक रुपया है, और एक आना मैं मुनाफा कमा लेता हूँ। तब ग्राहक की आदत होती हैं कीमत कम कराने की तो वहां मगर गुजांइश ही नहीं रही। अतः वे अपनी बताई हुई कीमत पर ही अटल रहते। ऐसा करने से एक साल तक उनका व्यापार एकदम बन्द सा रहा, पर वे अपनी सत्यनिष्ठा से विचलित नहीं हुए। उनकी सत्यनिष्ठा का ग्राहकों पर स्वतः ही ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे ग्राहक जो दूसरी दुकानों पर उन्ही कपड़ों की बढ़ी—चढ़ी कीमत श्रवण कर विचार करने लगे कि इससे तो उस सेठ की दुकान पर कम कीमत में ये ही कपड़े मिल रहे हैं। सभी ग्राहक पुनः उनकी दुकान पर आने लगे और खरीददारी शुरू करने लगे। ग्राहक पूछने लगे कि तुम अपनी एक कीमत पर कैसे स्थिर हो, बाजार में तो बहुत भाव बढ़ गया है। तब सेठ ने कहा कि मैंने जितने रुपये में यह कपड़ा खरीदा है, तदनुसार रुपये पर एक

आना मुनाफा के हिसाब से ही बेचूंगा, अतः मेरे यहां कीमत में उतार चढ़ाव नहीं है। मैंने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा की है, उस पर दृढ़ हूँ, यह श्रवण कर सभी ग्राहक इतने प्रमुदित हुए कि सभी कपड़ा वहीं से लेने लगे। अपने सम्बन्धी दूसरे लोगों को भी कहने लगे कि अमुक सेठ साहब की दुकान प्रमाणित है तब और भी लोग वहीं पर ही पहुँचने लगे। बाजार की अन्य सभी कपड़े की दुकानों में व्यापार ठण्डा पड़ गया और उसकी दुकान पर ग्राहकों की संख्या इतनी अधिक बढ़ती गई कि उसका व्यापार बहुत सुन्दर रीति से चलने लगा। यही नहीं सभी ग्राहक लोग उसकी सत्यनिष्ठ से प्रभावित होकर उसकी भूरि—भूरि प्रशंसा करने लगे। अहो जैन धर्म के अनुगामी सेठ साहब का जीवन कितना सत्यनिष्ठ है। इस प्रकार जैन—जैनेतर सभी में उसके सौम्य सत्यनिष्ठ आचरण से जैन धर्म की बहुत अधिक प्रभावना हुई। आज बहुत से लोग पतासा शक्कर इत्यादि बांटकर प्रभावना करने की भावना रखते हैं पर विचार करिये कि उस प्रभावना का उतना मूल्य नहीं हैं जितना की यदि वे ज्ञान की प्रभावना करे, दर्शन की प्रभावना करे।

❖ ❖ ❖

मारुष-मातुष

एक साधु गाथा याद कर रहे थे जोर—जोर से। पर याद नहीं हो पा रही थी, तब आस—पास के लोग हंसते हुए निकल गये कि एक गाथा याद नहीं कर पा रहा है तो यह साधु आगे क्या करेगा। यह सुन उन्हें खेद होता, वे सोचते हैं कि अहो ! ये सब मेरी कितनी हंसी उड़ा रहे हैं। बहुत दुःख करते थे, पर जब दूसरे व्यक्ति प्रशंसा करते कि अहो ! कितने पुरुषार्थी हैं। कितनी मेहनत से याद कर रहे हैं, तो वे अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न भी हो जाते, इस तरह निन्दा से नाराज और प्रशंसा से प्रसन्न होना, उनकी प्रवृत्ति बन गई।

एक बार वे गुरुदेव के पास पहुँचे और कहा कि मैं इतनी

मेहनत करता हूँ, फिर भी मुझे याद नहीं होता। लोग मेरा उपहास करते हैं। गुरुदेव ने कहा कि तुमने पूर्व भव में किसी को अन्तराय दी होगी, ज्ञान के साधनों को तिरस्कार किया होगा, ज्ञानी की आशातना की होगी ज्ञान उपार्जन करते समय किसी को सहायता नहीं दी होगी, जिनसे ज्ञान प्राप्त किया, उनका अपमान किया होगा, नाम का गोपन किया होगा, इसी कारण तुम्हें ज्ञान याद करने में इतनी कठिनाई हो रही है। गुरुदेव की बात सुनकर वह कहने लगा, अब वर्तमान में क्या करूँ ? तो गुरुदेव ने कहा प्रतिज्ञा करो। किसी के भी ज्ञान करने में अन्तराय नहीं दोगे और ज्ञानी के प्रति द्वेषभाव नहीं रखोगे, साथ ही प्रतिज्ञा करो कोई निन्दा करेगा तो दुःखी नहीं बनोगे, कोई प्रशंसा करेगा तो खुश नहीं होवोगे। गुरुदेव ने कहा "मारुषमातुष" इस समभाव का तुम आचरण अपना लो और पुरुषार्थ का अपना लो। गुरुदेव के अमृतमय उपदेश को उसने दृढ़ता के साथ धारण किया और उसी के अनुसार व्यवहार करने लगा, मा तुष, मा रुष तो याद नहीं रहा, पर इतना याद रहा कि मा तुष। लेकिन इसके अर्थ को उन्होंने जीवन में अच्छी तरह उतार लिया। लोग उनके अशुद्ध उच्चारण से हँसते भी तो भी वे "समो निंदा पसंसासु" के सिद्धान्त को जीवन में रमा लेने से सब समभाव से सह लेते। चमत्कार हुआ महाप्रभु के एक वाक्य को जीवन में उतार लेने मात्र से। उन साधु को केवलज्ञान, केवलदर्शन हो गया। उनके ज्ञानावरक घनघाती कर्म नष्ट हो गये। एक गाथा तो याद नहीं हो पाई, पर वे उसकी साधना से पूरे विश्व दृष्टा बन गये।

❖ ❖ ❖

सरलता कैसी हो

एक महात्मा, सन्ध्या के समय प्रतिक्रमण करने के बाद आकाश की प्रतिलेखना करके स्वाध्याय करने के लिये बैठे, पर वे स्वाध्याय करते हुए इतने आत्मविभोर बन गये कि शब्द उच्चारण रूप

स्वाध्याय का काल परिपूर्ण हो गया, उसका ध्यान ही नहीं रहा। अतः अकाल में भी स्वाध्याय करते रहे। उस समय एक सम्यकदृष्टि देव जो आकाश मार्ग से जा रहा था। उसका उपयोग उस तरफ लगा और विचार किया कि यह साधु प्रशस्त भावों से स्वाध्याय तो कर रहे हैं, पर अस्वाध्याय काल आ गया है, इनका इन्हें ध्यान नहीं है कहीं मिथ्यादृष्टि देव इन पर प्रकुपित होकर कष्ट दे इससे पूर्व इन्हें संकेत कर देना चाहिये। यह सोचकर वह देव उन्हें परिबोध देने हेतु अहीर का रूप बनाकर दही बेचने की दृष्टि से जोर–जोर से उस साधक के उपाश्रय के नीचे गुजरते हुए आवाज लगाने लगा कि दही लो दही इत्यादि। ये शब्द श्रवणकर वे साधक बीच में स्वाध्याय रोक कर उस अहीर को कहने लगे अरे अभी तो सभी लोग सोऐ हुए हैं, तुम्हारा दही कौन खरीदेगा ? इतने जोर जोर से क्यों बोल रहे हो, क्या यह कोई अभी दही बेचने का समय है तब देव ने प्रत्युत्तर में कहा कि महाराज ! यह ठीक है कि अभी दही बेचने का समय तो नहीं है पर मैं आपको पूछता हूँ कि क्या अभी स्वाध्याय करने का समय है ? यह बात सुनते ही वह साधु एकदम चौंका और समय का ख्याल किया। तब उसे पता चला कि "अहो मैं अस्वाध्याय काल में भी स्वाध्याय कर रहा हूँ। मैंने कितनी बड़ी गलती कर दी। बड़ी सरलता पूर्वक वे साधक अपनी गलती को स्वीकार करते हैं और उस देव का बड़े नम्र शब्दों से आभार मानते हैं।

बन्धुओं ! जो सरल होता है और सरलता पूर्वक अपनी गलती स्वीकार कर लेता है, वही अपनी आध्यात्मिक स्थिति को सुरक्षित रख सकता है। शास्त्र में उल्लेख आया है कि एक चक्रवर्ती महाराज छः खण्ड का राज्य छोड़कर मुनि बन जाय और यदि उनसे कुछ गलती हो जाय, तब उसकी अदना दासी भी यदि उन्हें प्रतिबोध देवे तो भी उनका कर्त्तव्य होता है कि वे अहं न करके उस दासी का उपकार मानते हुए सरलता पूर्वक अपनी गल्ती को गल्ती के रूप में स्वीकार कर प्रायश्चित, आलोचना, पश्चाताप कर ले।

❖ ❖ ❖

बिना अनुभूति का अक्षरीय ज्ञान

आज व्यक्ति अक्षरीय ज्ञान प्राप्त कर बड़ी डिग्रियां तो प्राप्त कर रहा है, पर स्व के ज्ञान के अभाव में कितनी हास्यास्पद स्थिति जीवन में बन जाती है, इसे आप कथानक के माध्यम से समझें।

प्राचीन काल में काशी के विश्वविद्यालय में बहुत से विद्यार्थी पढ़ते थे। एक गांव का विद्यार्थी भी वहीं पढ़ने आया, वह वहां का सारा अध्ययन बड़ी लगन पूर्वक करके उत्तीर्ण हो गया। तत्पश्चात उसने अपने माता–पिता को समाचार प्रेषित किये कि मेरा विद्याध्ययन पूर्ण हो गया है, मैं आ रहा हूँ, मुझे लेने के लिये आप जल्दी ही आना।" सारे गांव वालों को यह सूचना मिली कि अमुक का लड़का विद्वान बन पंडित की पदवी पा कर काशी से आ रहा है तो सभी गांव वाले उत्सुकता पूर्वक उसके स्वागत की तैयारी करने लगे। इधर वे पंडितजी अपने गांव के बाहर पहुंच कर, गांव वाले लोग, जो स्वागत करने के लिये आने वाले हैं, उनकी प्रतीक्षा करने हेतु एक वृक्ष की छाया में बैठ गये। तभी चार बहिनें जो पनघट पर पानी भरने को आई, वे परस्पर बातें करने लगीं उन्हीं पंडितजी के विषय में जो काशी से पढ़कर आये हैं और वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं। अनुभवी बहनें परस्पर कहने लगी कि ये पंडित जी काशी से पढ़कर भले ही आये हैं पर लगता है कि सिर्फ इन्होंने अक्षरीय ज्ञान प्राप्त किया है। कहावत के अनुसार इन्होंने पढ़ा है, पर गुना नहीं है।

अपनी इस अनुभूति को साक्षात्कार करने हेतु वे बहिने उनके पास पहुंची और इधर–उधर की बातें करती हुई बोली पंडित जी ! आप तो पढ़ लिख कर आ गये, पर क्या कहूं ? पंडित जी ने पूछा क्यों क्या बात हुई ? कहो कहो जल्दी कहो। तब वे बहिने कहने लगी–पंडित साहब क्या कहूं। कहने की हिम्मत नहीं हो रही है। पंडित जी बोले अरे बहिनों आप संकोच क्यों कर रही हैं जो कुछ भी हो साफ–साफ

कह दो। मैं जानने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूँ। तब वे बहिनें बोली–पंडित साहब आप तो काशी पढ़ने के लिये गये थे, पर पीछे से आपकी पंडितानीजी–आपकी पंडितानीजी। पुनः कहती कहती रूक गई तो पंडितजी झुंझलाते हुए कहने लगे अरे तुम चुप क्यों हो गई, कहो ना पंडितानीजी को क्या हुआ ? पंडितजी आपकी पंडितानीजी अर्थात् आपकी धर्मपत्नी विधवा हो गई। ज्योंही यह बात पंडित जी ने सुनी तो वे बड़े दुखी दिल होकर फूट फूट कर रोने लगे, उनको रोते देख उन बहिनों को बड़ी हंसी आने लगी, पर बड़ी मुश्किल से हंसी को रोक कर पंडित जी को ढाढस बंधाने लगी कहने लगी कि पंडित सा। अब रोने से क्या होने वाला है, जो होना था सो हो गया। आप चुप रहिये और चलिये घर की तरफ। पर पंडित जी के अश्रुओं को निर्झर बन्द नहीं हुआ और इधर परिवार वाले तथा गांव के सभी लोग उनका स्वागत करने के लिये वहां आ पहुंचे थे। वे बहिनें जिन्होंने बड़ी मुश्किल से हंसी रोक रखी थी, उस भीड़ का लाभ उठाते हुए वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गई। परिवार वाले और गांव वाले सभी सदस्यों ने उन पंडित साहब को इस प्रकार जोर–जोर से रोते देखकर अनुमान लगा लिया कि शायद किसी "गमी" के समाचार उन्हें मिले हैं, इसलिये ये इस तरह रो रहे हैं, वे सभी लोग भी रीति रिवाज के अनुसार पंडित साहब के रोने में साथ देने लगे और सभी रोते घर पहुँचे घर पहुँचने के बाद भी बहुत देर तक रोने का कार्यक्रम चलता रहा। आखिर रोते–राते पंडित साहब जब कुछ चुप हुए तो सभी ने पूछा कि क्या हुआ पंडित साहब। किनकी मृत्यु के समाचार मिले हैं आपको ? तब पंडित साहब ने आश्चर्यपूर्वक कहा कि "किसकी मृत्यु ? अरे ! आप गांव में रहते हो फिर भी आपको पता नहीं ? बेचारी मेरी पंडितानीजी विधवा हो गई।" यह सुनकर सभी लोग एक साथ खिलखिलाकर हंस पड़े और उनकी विधवा बहिन जो भैया का स्वागत करने के लिये आई हुई थी, कहने लगी कि वाह भाई वाह ! आपने भई खूब अपनी हंसी करवाई। अरे ! आपके रहते हुए मेरी भाभी विधवा कैसे हो सकती है। तभी पंडित जी जो काशी से पढ़ लिखकर विद्वान बनकर आये थे, तर्क देते हुए कहने लगे ओहो ! तुम भी कैसी बात

करती हो ? मेरे रहते हुए तुम्हारी भाभी विधवा नहीं हो सकती है तो मैं पूछता हूँ कि मेरे रहने हुए तुम कैसे विधवा हो गई ? यह सुनकर सभी लोग पुनः खिलखिलाकर हंस पड़े। बहिन भी अपनी हंसी को रोक न सकी, कहा कि भाई ! मेरे पतिदेव मर गये हैं इसलिये मैं विधवा हो गई पर मेरी भाभी के पतिदेव तो आप हैं अतः आपके रहते हुए मेरी भाभी विधवा नहीं हो सकती है। अब समझा, ऐसी बात है क्या ! ओह मैं कितना उल्लू बन गया। उन बहिनों ने भी मेरी अच्छी हंसी करवाई। पूछा गया किन बहनों ने ? तब पंडितजी ने उनका परिचय दिया तब घर के सदस्य इस बात का रहस्य पूछने उनके पास गये तब उन्होंने बताया कि हमने जब यह देखा कि पंडितजी जहां बैठे थे वहां कीड़ी नगरा था। जब पंडित जी को बैठने के स्थान का भी विवेक नहीं है तो हमने अनुमान लगाया कि ये काशी से पढ़कर भले ही आये हैं पर इनमें विवेक–ज्ञान का अभाव है, इसीलिये हमारे अनुमान का प्रत्यक्षीकरण हमने किया और हमारा अनुमान शत प्रतिशत ठीक निकला।

बन्धुओ ! इस कथानक से यह सबक ग्रहण करना है कि ज्ञान सीखे अवश्य, पर विवेक का जागरण जीवन में अवश्य हो, केवल तोता रटन ज्ञान से जीवन का सद्विकास नहीं हो सकता है। आज स्वाध्याय करने के प्रसंग से प्रायः मनुष्य मात्र मूल को रट लेते हैं, पर उसका अर्थ क्या है ? उनका रहस्य क्या है ? यह नहीं जानते हैं, ज्ञान के आचार क्या हैं ? इनका भी उन्हें ज्ञान नहीं रहता है। यही कारण है कि स्वाध्याय जिसका महान फल आत्मशुद्धि है, वह प्राप्त होने के बजाय कभी कभी उल्टा प्रसंग भी उपस्थित हो जाता है।

❖ ❖ ❖

राजा का सेवक के प्रति कर्तव्य

प्राचीन काल में एक राजा था। उसके अनेक सेवक थे। एक दिन जब राजा अपने शयनागार में सो रहा था, तब उसके एक सेवक

ने आकर राजा की अगुंली में से उसकी एक बहुमूल्य अगूंठी निकाल ली। वस्तुतः सेवक जब अगूंठी निकाल रहा था, तब राजा की नींद खुल गई। लेकिन वह चुपचाप आँखें बन्द कर पड़ा रहा मानो गहरी नींद में सो रहा हो। सेवक अगूंठी निकाल कर, लेकर चला गया, राजा ने उसे कुछ नहीं कहा। अब राजा मन की मन विचार करने लगा कि आखिर उसके सेवक को ऐसा कार्य क्यों करना पड़ा। क्या वह किसी विशेष कष्ट में है ? अवश्य ऐसा ही होगा, मैंने उसके घर की तरफ कभी ध्यान नहीं दिया। इसलिये उसे आज चोरी करनी पड़ी। यह सोच कर राजा ने गुप्तचरों द्वारा पता लगवाया तो उसे मालूम हुआ कि उसकी पत्नी गर्भवती है तथा जापे का आवश्यक सामान उस बेचारे गरीब सेवक के पास नहीं है। यह ज्ञान करके राजा को मन ही मन बड़ा दुःख हुआ।

कुछ समय बाद वह सेवक राजा की अगूंठी वापिस लाया और सोते समय राजा के हाथ में वापस पहिना दी। इस बार राजा ने कहा कि वह क्या कर रहा है ? तब सेवक ने सच सच उत्तर दिया "दीनानाथ मैं चोरी नहीं कर रहा हूँ। एक दिन आपकी अगुंली में से निकाल कर यह ले गया था, आज इसे वापिस पहना रहा हूँ। वास्तविकता यह है कि कुछ समय के लिये इसे गिरवी रखकर मैंने अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर ली अब मैं इसे लौटा रहा हूँ। उस समय मैंने आपको मालूम नहीं होने दिया। यदि आपको मालूम हो जाता तो मेरी बड़ी दुर्दशा होती, मैं बरबाद हो जाता।"

यह सुनकर राजा मुस्कराया और बोला–"भाई ! मुझे उसी दिन पता लग गया था। किन्तु इस कार्य के लिये दोषी तू नहीं है मैं ही हूँ। तू मेरे लिये सर्वस्व अर्पण करके चल रहा है और मैंने कभी तेरे घर की स्थिति की ओर ध्यान ही नहीं दिया, तो यह तो मेरी ही भूल है, तू चिन्ता न कर।"

उपर्युक्त दृष्टान्त से हमें अपने जीवन की तुलना करनी चाहिये और देखना चाहिये कि वे लोग कैसे थे और हम कैसे हैं।

❖ ❖ ❖

स्वार्थ

उड़ीसा में घटित एक घटना याद आ रही है। चुनाव का समय था। सरपंच के चुनाव की बात थी। दो उम्मीदवार थे। एक गरीब आदमी का वोट लेने के लिये एक उम्मीदवार ने उसे बीस रुपये दिये। उसने वोट देना स्वीकार कर लिया। अब दूसरा उम्मीदवार भी पहुँचा और संयोग से उसको अधिक रुपये दिये। गरीब आदमी ने उस दूसरे उम्मीदवार को ही वोट दे दिया और वह चुन लिया गया अब जब पहिले उम्मीदवार को मालूम हुआ कि उस व्यक्ति ने उसे वोट नहीं दिया है तो उसे क्रोध आया और बदला लेने का विचार करने लगा। उसने बीस रुपये का चक्रवर्ती ब्याज लगाकर उस बेचारे गरीब आदमी पर सौ रुपये का दावा कर दिया। कुड़की लेकर वह उसके घर गया और सारा सामान कुर्क करा लिया। यहां तक की उसकी गर्भवर्ती स्त्री के खाने के लिये दो मुट्ठी धान भी उसने नहीं छोड़ा। गरीब आदमी का रोना और गिड़गिड़ाना सब व्यर्थ हो गया।

बेचारा गरीब बड़ा दुखी हुआ सोचने लगा कि ऐसे जीने से तो मर जाना ही बेहतर है। किन्तु मरने से पहले उस दुष्ट से बदला लेना चाहिये। ऐसा सोचकर एक लठ्ठ लेकर वह उस स्थान पर पहँचा जहाँ पर वह अपने दोस्तों के साथ बैठकर गुलछर्रे उड़ा रहा था और अपनी बहादुरी की डींगे हांक रहा था। गरीब आदमी ने आव देखा न ताव, कसकर एक डन्डा सेठ की खोपड़ी पर जमा दिया। इतने में उसके साथियों ने डण्डा पकड़ लिया और डन्डा लेकर उस गरीब की खूब पिटाई की। इतनी कि वह वहीं पर ढेर हो गया। उसकी सहायता करने वाला था भी कौन ? अब मुकदमा चला और सेठ के बीस हजार रुपये खर्च हो गये।

स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य घोर से घोर निर्दयता का व्यवहार कर बैठता है। ❖ ❖ ❖

तुलसीदासजी

महात्मा तुलसीदास जी के प्रारंभिक जीवन की घटना को आप सुनेंगे तो आपको पता लगेगा कि वे किस प्रकार से पाँच इन्द्रियों के विषय में लिप्त थे। जैसे कि अन्य साधारण व्यक्ति संसार के सम्बंध को जोड़ कर चलते हैं और तरुणाई में मोह के नशे में रहते हैं, वैसे ही थे तुलसीदास जी। कोई विरले ही पुरुष ऐसे होंगे कि जो इस मोह के नशे से ऊपर उठ कर इस मदिरा पर अपनी आत्मा का अकुंश लगा पाएँ।

कथा की दृष्टि से महात्मा तुलसीदासजी का विषय भी ऐसे ही प्राणियों जैसा था। तरुणाई में उनका विवाह हो गया। फिर विवाह के प्रसंग से वे इतने दिवाने बने कि एक दिन उनकी अंतरात्मा वासना से व्याकुल हो गई। वे सोचने लगे कि मेरी धर्मपत्नी तो पीहर में है और मैं यहां हूँ। कैसे, क्या किया जाय ? उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था।

आकाश में घनघोर बादल छाये हुये थे। भयंकर अंधेरी रात थी। सांय–सांय करती चारों ओर से हवा चल रही थी। बड़ा भयावना दृश्य था। कोई भी व्यक्ति बाहर नहीं निकल सकता था, परन्तु तरुण तुलसीदासजी के मस्तिष्क में काम की आंधी ने इस प्रकार जोर जमाया कि वे घर से चल पड़े उनके सामने केवल एक ही लक्ष्य था कि किसी प्रकार से मैं धर्मपत्नी के पास पहुँच जाऊँ।

वे विकट मार्ग को पार करके अपने ससुराल पहुँचे। गाँव में सभी प्राणी रात्रि की सुनसान अवस्था में निद्रा लीन थे। सब घरों के दरवाजे बंद थे। इस स्थिति में वे अपनी ससुराल के नजदीक पहुँचे। वहां का दरवाजा भी बंद था। आधी रात के समय आवाज लगा कर दरवाजा खुलवाना उचित नहीं था। वे कुछ देर इधर उधर देखते रहे।

अचानक उनकी दृष्टि बिजली की चमक में दीवार पर पड़ी

उन्होंने देखा कि वहाँ एक रस्सी लटक रही है अतः उसको पकड़ कर ऊपर चढ़ा जा सकता है। उन्होंने वह रस्सी पकड़ी। परन्तु वह रस्सी नहीं थी, सर्प था तथापित वे उसके सहारे ऊपर चढ़ गए। उनको यह भी ध्यान नहीं रहा कि यह जहरीला जंतु है और काट सकता है। परन्तु उन्होंने कोई परवाह नहीं की कथा भाग में ऐसा ही वर्णन है।

पति को अचानक अपने कमरे में देखकर पत्नी आश्चर्य चकित हो गई उसने कहा, "नाथ इस भयंकर रात्रि में आप यहाँ कैसे"। उन्होंने सब बात कही तो पत्नी ने कहा यहां कौनसी रस्सी है ?

देखा गया तो ज्ञात हुआ कि वह रस्सी नहीं, एक जहरीला जंतु था। फिर पति का स्वागत करते हुए पत्नी ने कहा, "आपने मुझे अनुगृहीत किया इसके लिये मैं आप की बहुत कृतज्ञ हूँ परन्तु नाथ ! आपको इतना भी भान नहीं रहा कि यह जहरीला जंतु काट लेगा तो प्राणान्त हो जाएगा। क्या ही अच्छा होता कि आपका जैसा ध्यान मेरी तरफ है वैसा ही ध्यान प्रभु के चरणों में होता। यदि ऐसा कर पाते तो आपका बेड़ा पार हो जाता।

अस्थि चर्ममय देह मुझ, पासो ऐसी प्रीति।
वैसी जो श्री राम में, होत, कटे भव भीति।।

इस गंदी वासना के प्रति आपका जितना ध्यान है उतना ही यदि प्रभु की ओर हो तो आपको किसी प्रकार की भव बाधा नहीं रहेगी। तुलसीदासजी ने पत्नी के इतने से वाक्य सुने और उनकी आत्मा में जागृति आ गई।

उसी समय तुलसीदासजी ने कहा, "प्रिये, तुमने बहुत सुन्दर बात कही है। आज से तुम मेरी गुरु हो और मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। तुमने अच्छा बोध दिया" और वे उसी समय चल पड़े साधना के पथ पर।

जब आध्यात्मिक ज्ञान का सही भान नहीं हुआ, तब तक ही उनकी यह दशा रही। आगे चलकर वे महात्मा तुलसीदास जी के नाम से विख्यात हुए।

❖ ❖ ❖

महर्षि शुकदेव

महर्षि वेदव्यासजी के एक ही पुत्र थे–शुकदेव जी। व्यासजी शुकदेव जी को अत्यंत प्यार करते थे। एक दिन शुकदेव जी व्यास जी के आश्रम में जा पहुँचे। व्यास जी कहने लगे, "शुकदेव ! तू संसार से उदास क्यों रहता है। तू विवाह कर ले और पुत्र को जन्म देकर फिर धार्मिक भावना में लीन हो जाना मेरे दादाजी के लिये मेरे पिताजी आधारभूत हुए और मेरे पिताजी के लिये मैं हुआ। अब मेरे लिए तूं आधार रूप है अतः विवाह के बाद संसार के सुख भोगकर फिर घर से निकल जाना। यदि संतान परम्परा नहीं चली तो संसार की व्यवस्था कैसे चलेगी।

शुकदेव जी ने कहा, पिताजी ! संसार की व्यवस्था चले या न चले, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है परन्तु मुझे मनुष्य तन मिला है तो मैं इस प्रकार से गृहस्थों के चक्कर में पड़कर जीवन को खराब नहीं करना चाहता हूँ मैं तो स्थायी सुख सम्पत्ति के लिये आध्यात्मिक लक्ष्मी की उपलब्धि के लिये वन में जाऊँगा और वहाँ साधना करूँगा मैं आपके कहने के अनुसार विवाह कर संसार में रहने वाला नहीं हूँ।

शुकदेव जी इस प्रकार अपने पिताजी को उत्तर दे कर चले पड़े। वे वन में चले तो रास्ते में नदी आ गई। उसमें कई स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। राजा की रानी और राजकन्याएं भी उनमें थी। तरुण शुकदेव जी उनके पास से होकर निकल पड़े बहिनों ने उनका कुछ भी ध्यान नहीं किया वे उसी तरह से नहाती रहीं।

शुकदेव जी के चले जाने के पश्चात वेदव्यास जी भी उसी मार्ग से निकले। वे उसी नदी के किनारे पहुँचे, जहाँ वे स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं जैसे ही उन्होंने व्यास जी को देखा तो वे शीघ्रता से अपने शरीर पर वस्त्रों को व्यवस्थित करके एक तरफ बढ़ गई।

यह देख कर व्यासजी के मन में आश्चर्य पैदा हुआ कि जब

मेरा तरुण पुत्र इधर से निकला तो इन्होंने कोई ख्याल नहीं किया और मैं एक वृद्ध आ रहा हूँ तो इन्होंने अपने तन ढांक लिए।

व्यासजी की पुत्र संबंधी चिन्ता कुछ कम पड़ी और इस रहस्य को जानना चाहा। पूछने पर इन महिलाओं ने कहा, "हम आपको जानती हैं। आप पंडित हैं। वेद पारंगत है और वृद्ध हैं परन्तु आपके जीवन में और आपके पुत्र के जीवन में बड़ा अंतर है। आपके तरुण पुत्र शुकदेव जी इधर से निकले तो हमको कोई विचार नहीं हुआ। शुकदेव जी तरुणाई में पहुँच गये हैं, परन्तु कोई विकार भावना नहीं है। आप अब विद्वान है, वृद्ध हैं परन्तु आपने संसार देखा है। इसलिए हम सावधान हो गई।

❖ ❖ ❖

सामायिक का मूल्य

मगध सम्राट श्रेणिक प्रभु के चरणों में पहुँचा। उसको ज्ञान हुआ कि पुणिया श्रावक की एक सामायिक खरीद ली जावे तो उस का नरक का बंधन समाप्त हो सकता है।

इतनी बात सुनकर श्रेणिक पुणिया श्रावक के घर पहुँचा और अपने आने का कारण बताते हुए कहा कि मैं आपसे एक सामायिक खरीदना चाहता हूँ। इस पर पुणिया श्रावक ने सरलता से कहा कि एक सामायिक देने से अगर आपका नरक बंधन समाप्त होता है तो मैं देने को तैयार हूँ लेकिन सामायिक का मूल्य क्या है यह मैं नहीं जानता।

मगध सम्राट, प्रभु महावीर के चरणों में फिर से पहुँचा और उसने निवेदन किया,–भगवन ! पूणिया श्रावक एक सामायिक देने को तैयार है और मैं खरीदने को तैयार हूँ। कीमत आप बतला दीजिये।

प्रभु ने कहा, "राजन ! तुम्हारे पास कितनी सम्पत्ति है। उत्तर मिला भगवन ! मेरी सम्पत्ति आपसे क्या छिपी हुई है। आपसे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। यदि मेरे मुँह से ही कहलवाना चाहते हैं तो मैं

प्रकट कर देता हूँ कि मेरे भंडार में इतना धन है कि मैं अपनी बहुमूल्य राशि और स्वर्ण आदि को बाहर निकाल कर मैदान में एकत्रित करूँ तो बावन डूंगरियाँ लग जाये। इतना धन है मेरे पास फरमाइये कितनी कीमत इस सामायिक की चुकाऊँ।

इस पर भगवान ने प्रकट किया कि इतनी धनराशि तो सामायिक की दलाली में ही पर्याप्त नहीं है।

इससे आप एक सामायिक का क्या चिंतन कर सकते हैं, आध्यात्मिक साधना, अड़तालीस मिनट की साधना, यदि विधि के साथ पुणिया श्रावक की तरह से बन जाती है तो आपके मन में गुणों का आस्वादन आए बिना नहीं रहेगा। फिर तो स्वर्ण रत्नों की बावन डुंगरियां ही क्या, सारे संसार का वैभव भी आपको तुच्छ लगने लगेगा।

विधि के अनुसार आध्यात्मिक साधना करने की तैयारी करके आप अड़तालिस मिनट के लिए भी साधना में लगेंगे तो हो सकता है कि शुरू–शुरू में आपको कठिनाई मालूम हो, परन्तु जैसे मनोयोग पूर्वक प्रारम्भ में पहली कक्षा में बैठने वाला विद्यार्थी समय पाकर उच्च योग्यता प्राप्त कर लेता है, वैसे ही आप भी आध्यात्मिक योग्यता के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

❖ ❖ ❖

समय बीते, फिर क्या पछताना

एक साधक अपनी साधना करने की दृष्टि से सोचने लगा कि मुझे पूर्ण विश्राम का स्थान, साधुत्व ग्रहण करना है। परन्तु पहिले मैं साधुत्व को परिपक्क बनाने के लिये कुछ साध लूँ। अतः वह जंगल में गया और साधना करने लगा।

संयोगवश उसको जंगल में पारस का एक टुकड़ा मिल गया। उसको ज्ञात था कि इस टुकड़े को यदि लोहे के साथ सम्बधित कर दिया जाए तो लोहा भी सोना बन सकता है। परन्तु उसने सोचा

कि अब मुझे उससे करना क्या है। मैं तो अभी साधना के क्षेत्र की तैयारी कर रहा हूँ। यदि मैं काफी लोहे को सोना बना कर अपने पीछे छोड़ गया तो भी उससे कुछ बनने वाला नहीं है। फिर भी उसने पारस को उठा लिया।

अब वह अपने मन का परीक्षण करने की दृष्टि से फक्कड़ होकर चल रहा था। अतः सादी अवस्था में उसने एक नगर में प्रवेश किया। वह अपने मन में संकल्प कर रहा था कि मेरी सादगी और साधना की स्थिति कई स्वयं अनुभव करे और मुझे भोजन के लिये स्वयं कहे तो भोजन ग्रहण करना है, अन्यथा नहीं। अभी तो मैं गृहस्थ ही हूँ, पूर्ण मैं साधु नहीं बना हूँ। अतः मैं स्वतंत्र हूँ। मैं घर में माँगने की स्थिति में नहीं हूँ।

वह शहर में गया और सर्वत्र घूम कर निकल आया, परन्तु किसी की दृष्टि उस सीधी सादी पोशाक वाले पर नहीं पड़ी।

जब वह लौट रहा था तो सहसा एक द्वार उसके सामने आया वहाँ एक भडभूंजा भूंगड़े बेच रहा था। वह अपना कार्य करते–करते उस परदेशी को देखता है। बाहरी वैभव उसके पास नहीं था परन्तु उसकी दृष्टि में अनूठी शक्ति थी। वह उस व्यक्ति को पहिचान गया। उसकी आकृति से उसके अन्दर का अनुमान लग गया। वह सोचने लगा कि यह उन्नत भावना की ओर जानेवाला कोई न कोई पवित्र साधक मालूम होता है। उसकी आकृति बड़ी भव्य है। इसकी दृष्टि में चंचलता नहीं है। यह साधना की दृष्टि से जीवन में ऊँची कामना लेकर चल रहा है। क्या ही अच्छा हो कि इस व्यक्ति का मैं यथायोग्य सत्कार करूं।

भड़भूंजा अपने छोटे से धंधे को छोड़कर राजमार्ग पर खड़े हुए उस उपस्थिक साधक को प्रणाम करता है और कहता है–महाराज जी, मेरी कुटिया को पावन कीजिए। मैं आपके चरणों में कुछ अर्पित करना चाहता हूँ।

भड़भूंजे की विनम्र वृति को देखकर वह साधक सोचने लगा। "यह मेरे स्वयं के जीवन को देखकर प्रभावित हुआ है। मेरा इससे कोई परिचय नहीं है। यह भोजन के लिये कहता है तो मुझे स्वीकार

कर लेना चाहिये।"

साधक उसके घर पहुँच गया। उस गरीब के पास दुकान में जो कुछ भी था, भीलनी के बैरों की तरह उसने लाकर साधक का सत्कार किया। साधक ने प्रेम और स्नेह के साथ उसके सत्कार को स्वीकार कर लिया।

साधक सोच रहा है कि मुझे साधुव्रत की पूर्ण अवस्था पाने के पहिले अठ्ठारह वर्षों तक कुछ झाड़ियों और गुफाओं में रहना हैं, जहां में अधिक से अधिक मन को वश में कर सकूं और आत्मा की शांति अनुभव कर सकूं। मैं जंगल में जा रहा हूँ। तो यह पारस का टुकड़ा मेरे क्या काम आएगा। यदि उसे लेकर मैं गया भी तो रात दिन इसकी तरफ मेरा ध्यान जाएगा और मैं अपनी साधना पूरी नहीं कर पाऊँगा। यह भड़भूंजा गरीब है और इसने निःस्वार्थ भाव से मेरा सत्कार किया है। यह पारस इसी को सौंप दिया जाय तो यह सुखी हो जाएगा। फिर अठ्ठारह वर्षों के बाद जब मैं वापस आऊँगा तब इसको लेकर कुछ लोहे का सोना बनाकर और उसे ऐसे ही गरीब लोगों में बांट दूँगा। इस विचार से वह उस भूंगड़े बेचने वाले को बोला, "भाई, यह लो मेरे पास और तो कुछ नहीं है। बस, यह छोटा सा पत्थर का टुकड़ा है। यदि लोहे के साथ इसका संयोग किया जाय तो लोहा भी स्वर्ण बन जाएगा। अठ्ठारह वर्षों तक तुम जितना चाहो उतना सोना बना लेना और फिर मुझे वापस दे देना।"

इस प्रकार पारस को सदुपयोग में लगाने के लिये उसने उस भड़भूंजे को दे दिया। वह गरीब आदमी भी खुश हो गया। उसने पारस का टुकड़ा लेकर साधक को विदा किया।

भड़भूंजे ने सोचा अब क्या है अब तो मैं दुनियाँ भर के लोहे का सोना बना सकता हूँ। उसने पारस को सुरक्षित स्थान पर रख दिया और फिर बाजार में जा पहुँचा। वहाँ लोहे बेचने वाले की दुकान पर जाकर उसने लोहे का भाव पूछा। पुराने जमाने की बात है। लोहा बेचने वाले ने कहा, "भाई, पन्द्रह रुपये का भाव है।" उसने सोचा कि अभी कुछ दिन बाद जब लोहा सस्ता होगा तब खरीद लूंगा। अभी ऊंचे भाव का लोहा क्यों खरीदूँ, वह घर चला आया और अपना कार्य

करते हुए खुशियाँ मनाता रहा कि वह जब चाहे लोहे को सोना बना लेगा।

कई महीने बीतने पर एक दिन फिर वह बाजार गया और लोहे का भाव पूछा तो मालूम हुआ कि तेरह रुपए का भाव था। उसने सोचा कि अभी भाव अधिक है। पहिले पन्द्रह था और अब तेरह हो गया है। भाव और उत्तर जाएगा तब लोहा खरीद लूंगा।

कुछ वर्षों बाद फिर वह बाजार पहुँचा तो लोहे का भाव आठ रुपए था। उसे यह भी अधिक प्रतीत हुआ। ऐसा करते–करते 6 रुपए तक का भाव देख लिया। फिर भी उसने सोचा की अभी नहीं, जब दो तीन रुपए का भाव हो जाएगा तब सोना बनाएंगे।

ऐसा करते–करते इरादे ही इरादे में अठ्ठारह वर्ष पूरे हो गए और वह एक तोला भी सोना नहीं बना पाया। समय पर अचानक वही साधक आ गया। उसने कहा, ला भाई, पारस का वह टुकड़ा। भड़भूंजा ईमानदार था। उसने कहा, "मैं तो कुछ भी नहीं कर सका।" साधक ने कहा "तुम कुछ भी नहीं कर सके तो मैं क्या करूँ अरे इतने वर्षों तक यह तुम्हारे पास पड़ा रहा, फिर भी तुम इसका कोई फायदा नहीं उठा सके।"

यह तो एक रुपक है। उस भड़भूंजे की गरीबी मिटाने के लिये साधक ने उसे पारस का टुकड़ा दिया था, परन्तु उसने प्रमाद आलस्य और लोभ के वशीभूत होकर चक्कर ही चक्कर में सारा समय खो दिया। और सोना नहीं बना सका। अब कितना ही प्रयत्न करे तो भी वह टुकड़ा उसे मिलने वाला नहीं है।

ऐसे ही आज यह मनुष्य तन पारस के टुकड़े से भी अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें आत्मा को सोना बनाने का प्रसंग है। सामायिक, पौषध, व्रत नियम आदि असाधारण करके विश्राम स्थान पर पहुँचने की आवश्यकता है। परन्तु मेरे भाई बालक अवस्था में सोचते है कि अभी क्या है। अभी तो खाने पीने की अवस्था है, खेलने कूदने की अवस्था है। जवानी आएगी तब देखेंगे और जब जवानी आ गई तब संत कहते हैं भाई अब तो विश्राम स्थान पर पहुँचोगे ? इस पर वे कहते हैं महाराज ! अभी तो जवानी है। खाने पीने और मौज शौक

के दिन है। अभी तो शरीर में ताकत है। हाँ जब वृद्धावस्था आएगी, तब वहां पहुँचेंगे।

ऐसा करते–करते जब वृद्धावस्था आ पहुँचती है और संत कहते है कि अब तो कुछ करो। वे कहते हैं। "महाराज अभी तो बाल–बच्चों की शादी करनी है। धर्म और आत्मा तथा परमात्मा की बातें तो बाद में करेंगे। साठ वर्ष के हो जाते हैं। और संत कहते है कि अब तो कुछ करो। तब वे कहते है, "महाराज कुछ तो करेंगे। परन्तु क्या करें, समय ही नहीं मिलता। बच्चे काम करते हैं परन्तु वे दुकान में कुछ बिगाड़ न कर डाले, तो इसी चिन्ता से वहां का काम भी देखना पड़ता है। मन उधर ही लगा रहता है।"

जब ऐसी स्थिति हो तो क्या कहा जाए। क्या वे मनुष्य तन रूपी पारस का मूल्यांकन कर रहे हैं ? ऐसे व्यक्तियों के लिये अपने जीवन की कीमत नहीं है। प्रभु के चरणों में पहुँचकर इन्हें विश्राम करना चाहिये परन्तु ये तो और अधिक थकान महसूस करके संसार में परिभ्रमण करने की ही सोच रहे है।

आप स्वयं बुद्धिमान है। जिनके जीवन में इस प्रकार की समझ आ गई है कि यह जीवन पारस के समान मिला है तो उन्हें चाहिये कि वे इसे भगवान के रास्ते पर पहुँचा देवें।

❖ ❖ ❖

अहमदाबाद के प्रसिद्ध सेठ

अहमदाबाद के प्रसिद्ध सेठ जो लोकाशाह ऐतिहासिक पृष्ठों में प्रख्यात है, एक जौहरी के पुत्र थे। उनकी जीवन गाथा भी अजीब ढंग की थी। उनके पिताजी ने कुछ बहुमूल्य हीरे खरीदे, उन्होंने सोचा कि ये बहुत कीमती है, अतः जितनी सम्पत्ति थी, वह सब उन हीरों को खरीदने में लगा दी गई।

उनके परिवार में जौहरीजी स्वयं उनकी धर्मपत्नी और एक पुत्र ये तीन ही प्राणी थे। कालान्तर में उनको यह ज्ञात हुआ कि मैं

ठगा गया हूँ। यह तो नकली माल है। काँच के टुकड़े हैं। मेरी दृष्टि चूक गई और मैंने सारी सम्पति इसमें लगा दी।

इसी चिंता ने उनके जीवन को झंकझोर दिया। अन्ततोगत्वा वे मरणासन्न स्थिति में पहुँच गये। मरने से पहिले उन्होंने अपने परिवार से कहा कि मैंने बहुमूल्य नगीने खरीद रखे हैं। जब कभी आवश्यकता हो तो मेरे मित्र अमुक जौहरी के माध्यम से इनका विक्रय करवा कर अपने जीवन की स्थिति को ठीक रखना। उन्होंने सोचा कि मैं तो ठगा गया, परन्तु पत्नी के सामने कहने से उसका दिल बैठ जाएगा और यदि पुत्र से कहूँगा तो उसकी क्या दशा होगी। अतः उन्होंने यह बात मन में रखी और वे काल कर गए।

उनका पुत्र अभी विद्याभ्यास कर रहा था। आर्थिक स्थिति कमजोर हो चुकी थी। खाने–पीने के साधन कम होने लगे। तब माता ने एक नगीना देते हुए पुत्र से कहा, "अमुक जौहरी जी तेरे पिता के मित्र है, उनके पास इस नगीने को रख कर कुछ रुपए ले आ, जिससे कि अपना काम चल सके।

बालक नगीना लेकर जौहरीजी के यहां गया और बोला की माता ने कहा है कि आप इस नगीने को अपने पास रख कर कुछ रुपये दे दीजिए। जौहरीजी नगीने को देखते ही पहिचान गए कि यह खरा नहीं है।

परन्तु इस वक्त यह बच्चा लाया है। अतः इसे ऐसा कहूँगा कि यह खरा नहीं है तो इसकी माता विश्वास नहीं करेगी और सोचेगी कि अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये ऐसी बात कही है। अतः उन्होंने यही कहा कि तुम इसको तिजोरी में ही रखो। जब प्रसंग आएगा तभी बेचेंगे। परन्तु कल से तुम यहाँ दुकान पर बैठो और जवाहारात का धंधा सीखकर अपनी आजीविका चलाओ। बालक ने वैसा ही किया। जौहरी का बच्चा जौहरी ही निकला और उसने जवाहारात के धंधे में जल्दी ही प्रवीणता प्राप्त कर ली।

उस समय राजाओं का जमाना था। राजा लोग बहुमूल्य हीरे मोती खरीदा करते थे। एक बार महाराजा ने बाहरी व्यापारियों से माल खरीदने की दृष्टि से अपने नगर के जौहरियों को एकत्रित

किया। बाहर के व्यापारियों के पास कुछ मोती थे। वे खरे हैं या खोटे इस बात की परीक्षा करने के लिये एक कमेटी बनाई गई तो जौहरी का यह लड़का भी वहां पहुँचा। सब जौहरियों ने मोती की परखकर कर के कहा कि मोती की कीमत सवा–लाख रुपयों की है।

यह लड़का भी वहां गंभीर आकृति में बैठा हुआ था। महाराजा की दृष्टि उस पर गई तो उन्होंने पूछा कि यह कौन है। उन्हें बतलाया गया कि यह भी जौहरी है। महाराजा ने इससे पूछा कि तू क्यों नहीं बोल रहा है, उसने निवेदन किया, मेरे बुजुर्ग बोल चुके हैं तो मैं क्या बोलूँ। इस पर उससे कहा गया कि तुम को भी बोलने का हक है, तुम भी कुछ कहो। इस पर उसने कहा "महाराज ! क्षमा, करें। इन मोतियों में से दो मोती तो खरे हैं और सवा सवा लाख की कीमत के हैं परन्तु तीसरा मोती तो सवा कोड़ी का भी नहीं है।"

यह सुनकर सबको आश्चर्य हुआ और वे उसकी ओर देखने लग गये। बेचने वाली व्यापारी भी मलिन भावना से कुछ सोचने लगे, चिंतन करने लगे।

उस वक्त महाराजा ने सोचा कि यह लड़का जो कुछ कह रहा है, उसमें तथ्य होना चाहिये। इसकी बुद्धि में कुछ पैनापन है। पूछा गया कि मोतियों की परीक्षा कैसी की तो इसने उत्तर दिया, "महाराज ! मैंने अपनी दृष्टि से परख की हैं। इस मोती को बिंधवाया जाय। यदि यह फूट जाए तो समझ लीजिये की यह खोटा है।

परीक्षा करवाई गई तो वैसा ही हुआ यह देखकर सब जौहरी आश्चर्य करने लगे कि हमने काफी गहरी दृष्टि से देखा था परन्तु इस लड़के की पैनी दृष्टि जितना काम करती है उतनी हमारी नहीं। वे जौहरी थे उनके मन में इस लड़के की प्रवीणता देख कर ईर्ष्या नहीं हुई। वे समता के साथ सोचने लगे कि यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हमारे बीच में छोटी उम्र का एक ऐसा बालक भी निकला, जो हम सब जौहरियों की लाज बचा सका। उन्होंने इस स्थिति को मान अपमान का विषय न बना कर समता के साथ चिंतन किया। फलस्वरूप उस बालक को सब जौहरियों का सिरमौर बना दिया गया।

उस बालक के पिता के मित्र ने जब यह देखा कि वह

जवाहरात की परीक्षा में पूर्ण हो चुका है तो एक दिन दुकान पर ग्राहक आने पर उसने बालक से कहा "अब तुम अपने पिता के खरीदे हुये नगीने बेच दो।"

बालक घर पर गया और अपनी माता से बोला–वे नगीने लाओ। माता ने नगीने निकाल कर दिये तो इसने देखते ही कहा कि ये तो काँच के टुकड़े हैं। माँ ने कहा "अरे तुम्हारे पिताजी कहते थे कि ये खरे हैं।" लड़के ने उत्तर दिया, "पिताजी कहते थे वे भी ठीक हैं और मैं कहता हूँ वह भी ठीक है।"

माता ने उस पर विश्वास किया। जौहरी जी को मालूम हुआ कि परीक्षण ठीक है।

❖ ❖ ❖

सेठ वचन परमाणू

किसी समय एक भयंकर डाकू पकड़ा जा कर फांसी के तख्ते पर पहुँच गया। उस वक्त उसकी मृत्यु की तैयारी थी। परन्तु उसे जोर की प्यास लगी। वह अज्ञानी था। वह अपने कुकृत्य का फल भोग रहा था। उस अवस्था में भी उसे परमात्मा और आत्मा का ध्यान नहीं था। उसका दिल तो पानी में लगा हुआ था। वह यह भी नहीं सोच पा रहा था कि पानी पी लूँगा तो भी इस जीवन को टिका नहीं सकूँगा। उसकी अपेक्षा तो मैं परमात्मा के शुद्ध स्वरूप का ध्यान करूँ, चितंन करूँ। इसका भी उसको ख्याल नहीं था वह दर्शकों के सामने इशारा कर रहा था कि कोई नजदीक आकर उसे पानी पिलाने की कोशिश करे। दर्शक दूर से सब कुछ देख रहे थे। वे खड़े–खड़े सोच रहे थे कि उसके नजदीक जाकर यदि कुछ भी खाना–पीना पेश करेंगे तो सरकार हमको भी अपराधी मानेगी। फिर कहीं हमको भी सजा न भोगनी पड़े। अतः उससे दूर रहना ही श्रयेस्कर है।

उस समय प्रभु की आज्ञा का मर्म समझने वाला भक्त जिनदास सोचने लगा कि इस डाकू की आत्मा इस पल छटपटा रही है। इसने

इतना भयंकर जुल्म किया कि छोटी अवस्था में ही इसको फांसी के तख्ते पर जाना पड़ रहा है। संभव है इसके अगले जीवन का आयुष्य नहीं बंधा हो और इस वक्त आयुष्य बंधन का अवसर हो। यदि मेरे निमित से इसकी जिदंगी सुधर जाय तो यह हितकर होगा।

भक्त जिनदास, निडर होकर मृत्यु के मुँह पड़े हुए उस व्यक्ति के समीप पहुँचा और बोला "भाई क्या कहते हो" उससे बोला नहीं जा रहा था। उसने इशारा किया कि पानी। जिनदास ने कहा, "मैं तुम्हें अभी पानी पिलाता हूँ।"

जिसके मन, मस्तिष्क और तन में प्रभु की आज्ञा का श्रेष्ठ रूप प्रविष्ट हो, वह कष्ट पीड़ित आत्मा को देख कर स्वयं दुखित हो जाता है। इसीलिए ऐसी सम्यक दृष्टि आत्मा का लक्ष्ण बतलाया है–सम सवेंग, निर्वेद अनुकम्पा और आस्था। अनुकम्पा करना आत्मिक लक्ष्य के बिना नहीं बन सकता। इस अनुकम्पा से वह उसको बचा सकेगा या नहीं, यह प्रश्न अलग है। वह बचे या नहीं। परन्तु स्वयं की आत्मा को प्रभु की आज्ञा में रखने का सुन्दर मौका मिल रहा है। ऐसे समय में ही परीक्षण होता है।

भक्त जिन दास उस प्यासे डाकू की तिलमिलाहट को देखकर मधुर स्वर में कहने लगा, "भाई घबरा मत। मैं तुझको पानी पिलाता हूँ तूने देर से ईशारा किया। पानी लाने में मुझको विलम्ब हो सकता है। परन्तु तू अपने विचारों में कालुष्य ला रहा है, यह तेरे जीवन के लिये घातक है। अतः मैं पानी लेकर आऊँ तब तक तेरे विचारों में शुभ भावनाओं का संचार रहना चाहिये।"

जब उसे मधुर स्वर में सम्बोधन किया गया तो उस भयंकर पापी की भावना भी उस भक्त की प्रति श्रद्धावनत हो गई। वह मृत्यु के मुँह में जाते हुये भी सोचने लगा कि यह अत्यंत दयालु पुरुष मुझ जैसे पापी से घृणा न करके मुझ को शांति देने का प्रयत्न कर रहा है। वस्तुतः यह ज्ञानी है। इसके एक–एक वचन पर मुझ को विश्वास रखना चाहिए।

इस दृढ़ श्रद्धा के साथ वह डाकू मन की मन सोचने लगा कि मैं क्या शुभ भावना लाऊँ। मैं क्या सोंचू उस भक्त ने कहा कि मैं आऊँ

तब तक परमात्मा का नाम ले। मैं तुझे परमात्मा का नाम बतला रहा हूँ। जो व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है, गुण निष्पन्न नाम है, "नमो अरिहंताणं"। जिन्होंने आंतरिक शत्रु काम क्रोधादिक नष्टकर दिये और चरम सीमा के भगवान बने, उस परा आत्मन को तेरा नमस्कार हो, उसी में तेरा ध्यान हो। सेठ ने इसी आदि पद की स्थिति से चार पद और बतलाये और कहा कि मैं आऊँ तब तक इनका रटन जारी रहे। इस बात का पूरा ध्यान रखना।

भक्त जिनदास पानी लेने को गया। उधर मृत्यु के मुँह में जाने वाले डाकू की इतनी प्रबल भावना बन गई कि सेठ जिनदास ने जो कुछ कहा, वह सही है। परन्तु वह "नमो अरिहंताण" आदि तो भूल गया और इस प्रकार रटने लगा।

आणु ताणु के नहीं जाणू। सेठ वचन परमाणू।।

"मैं कुछ नहीं जानता हूँ परन्तु सेठ का वचन मेरे लिये प्रमाण है।" इस प्रकार विश्वास रख कर वह भयंकर डाकू अंतिम समय में पवित्र भावना से सद्गति का आयुष्य बांधता है।

❖ ❖ ❖

गीता का रहस्य

एक बार गांधीजी साबरमती आश्रम का निर्माण करा रहे थे। तो गुजरात के एक बड़े विद्वान उनके पास आए और कहने लगे, "महात्मन ! मैं आपके पास रह कर गीता का गूढ़ रहस्य समझना चाहता हूँ"। महात्माजी ने उनकी बात सुन ली और उन्होंने रावजी भाई को बुलाया। वे आश्रम की जिम्मेदारी लेकर चल रहे थे। रावजी भाई आए तो महात्मा जी ने कहा "ये गुजरात के प्रख्यात व्यक्ति हैं और अपने पास कोई काम हो तो इन्हें उस पर लगा दें।"

रावजी भाई के पास आश्रम निर्माण का सारा काम था। उन्होंने उनसे कहा कि आप गांधीजी के पास रहना चाहते हैं। तो इंटे उठाकर रखते जाइये वे कुछ बोल नहीं सके। दो चार रोज तो उन्होंने

ईंटें उठाई, फिर तंग आ गए और रावजी भाई से कहने लगे–"मेरी तो आपने दुर्दशा कर दी। मैं तो गीता का गूढ़ रहस्य समझने के लिये आया था और आपने मजदूर का काम मेरे सुपुर्द कर दिया मेरा काम यह नहीं है। यह तो मजदूरों का काम है।"

यह बात जब गांधीजी के पास गई तो उन्होंने कहा कि यही तो गीता का गूढ़ रहस्य है। आप केवल गादी तकिये के सहारे बैठकर गीता का गूढ़ रहस्य समझना चाहते हैं तो क्या वो समझ में आ सकता है। आप अपने कर्तव्य को समझें और जिस क्षेत्र में चल रहे हैं, उसकी जिम्मेदारी लें तो वह गूढ़ रहस्य समझ में आ सकता है।

❖❖❖

समीक्षण दृष्टि का ज्वलन्त आदर्श

महान आचार्य क्रियोद्धारक श्री हुक्मीचन्द जी म.सा. के जीवन की घटना का प्रसंग है। जब वे विचरण करते हुए रामपुरा गांव में पधारे थे, तब वहां पहले से ही पूरे गांव में हैजे का प्रकोप व्याप्त था किन्तु महान साधक के पदार्पण से वह प्रकोप धीरे–धीरे शांत होता हुआ पूर्ण शांत हो गया। सभी लोग ऐसे महासाधक के सान्निध्य में आकर जीवन में धर्म का अभिनव आलोक भरने लगे। इसी श्रृंखला में गांव की एक बहिन, जिसका नाम था राजीबाई, वह महासाधक के विशुद्ध संयम से अत्यधिक प्रभावित हो गई, परिणाम स्वरूप गृहस्थ जीवन को छोड़कर संयम पर्याय में आने लिए तत्पर हो गई। पारिवारिक मोह कुछ इसी प्रकार का होता है कि प्रशस्त कार्य में कहीं न कहीं बाधक बन जाता है, यही हुआ बहिन राजीबाई के साथ परिवार के लोगों को जब ज्ञात हुआ कि राजीबाई दीक्षा लेने के लिए तत्पर हो रही हे, तो वे अड़ गए। यहां तक अड़े की बहिन का व्याख्यान में जाना, गुरुदेव के दर्शन करना आदि सब रोक दिया गया। यहीं नहीं, उनके मन में भय व्याप्त हो गया था कहीं यह चली न जाय, उसे घर पर लोहे की सांकलों से बांधा गया। देखिये ! मोह

का परिणाम। बोले लोग समझ नहीं पाते कि यह बहिन जिस मार्ग पर जा रही है, वह प्रश्स्त है। इसकी आत्मा को शाश्वत शांति प्राप्त कराने वाला है तथा हमारे कुछ को भी उज्ज्वल करने वाला है। आज के समाज की भी कुछ ऐसी ही स्थिति बनी हुई है। कोई दीक्षा लेने के लिए तैयार होगा तो उसको अन्तराय देने वाले बहुत मिल जायेंगे, सहायक बहुत कम मिलेंगे।

बहिन राजी बाई की भी स्थिति कुछ ऐसी बन गई थी, लेकिन एक रोज ऐसा प्रसंग बना कि महासाधक हुक्मीचन्द जी म.सा. उसी घर बेले के पारणें के रोज भिक्षाचर्या के लिए पधारे। यथाविधि भिक्षा लेने के अनन्तर जब आप श्री द्वार की ओर मुड़ने लगे तो सहज में ही आप श्री की दृष्टि उस बहिन की बांधी गई लोहे की सांकलों पर पड़ी। देखिए ! निर्मल दृष्टि का अनूठा प्रभाव। सांकलें कच्चे सूत की भांति तड़ातड़ टूट कर गिर गई। बहिन बन्धन मुक्त हो गई।

यह एक घटित प्रसंग पढ़ने को मिला है। महापुरुषों के जीवन से ऐसी एक नहीं अनेक घटनाएँ घटित हो जाती हैं। उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि जिसके जीवन में समीक्षण साधना होती है। जो विश्व के समस्त प्राणियों को त्राण देने वाला होता है, उनके प्रति आत्मीयता का व्यवहार रखने वाला होता है। उसका स्वतः ही ऐसा प्रभाव पड़ जाता है। आज भी उन्हीं महासाधक महायोगी के प्रबल तप संयम के प्रभाव से वह क्रान्तिकारी परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है।

❖ ❖ ❖

सुपारी का पेड़

बम्बई में जब दो भाईयों का बंटवारा हुआ तब अन्य सब वस्तुओं का तो बंटवारा कर लिया गया किन्तु एक सुपारी का पेड़ शेष रहा तो उसके लिये विवाद चला। एक भाई कहने लगा कि यह मेरी

सीमा में है, अतः मैं लूंगा, इसके लिये इतनी कीमत मैं दे सकता हूँ दूसरा भी इसी बात पर अड़ गया कि इस वृक्ष को तो मैं लूंगा, इसकी कितनी ही कीमत हो मैं देने के लिये तैयार हूँ।

दोनों सगे भाई। एक मामूली–सा सुपारी का पेड़। किसी के पास धन की, जमीन की कोई कमी नहीं। कमी यदि थी, तो वहीं भ्रातृ प्रेम की। वे यदि चाहते तो अपनी अपनी जमीन से एक के स्थान पर अनेक सुपारी के पेड़ लगवा सकते थे। किन्तु इतनी समझ कहां ? इतनी सहिष्णुता किसके पास ? इतना धीरज किसे ? भाई के लिये तनिक भी प्रेम किसके हृदय में ? यह तो बम्बई नगरी है, कोई द्वारिका नगरी तो है नहीं। और ये जो भाई हैं सो कलियुग के भाई हैं, कोई श्री कृष्ण महाराज और उनके भाई तो हैं नहीं।

अस्तु, दोनों भाई अपनी अपनी जिद पर अड़े हैं–चाहे कितनी भी कीमत देनी पड़े, चाहे कुछ भी हो जाय, सुपारी का पेड़ तो मैं ही लूंगा।

समझौते की कोई सूरत नहीं थी। समझौता नहीं हुआ। परिणामतः मामला कोर्ट चला गया। बम्बई में वकीलों की भला क्या कमी ? एक से एक बढ़कर एक वकील दोनों भाइयों की तरफ से कर लिये गये बन्धुओं ! वकीलों को ओर क्या चाहिए मुहावरे की भाषा में कहूं तो कह सकते हैं कि अन्धा क्या मांगे ? दो आंखें। सो वकीलों को तो मुकदमा लड़ने वाले चाहिये। उनका तो यह व्यवसाय ही है। कहिये, वकीलों को पैदा कौन करते। स्वयं तो वे झगड़ा कराने जाते नहीं। भाई लोग ही पैदा करते हैं। वे जब लड़ते हैं तब वकीलों को बीच में आना पड़ता है। एक वकील कहता है कि तुम्हारा पक्ष मजबूत है। लड़े जाओ, तुम जीतोगे। और दूसरा कहता है कि भाई तुम्हारा पक्ष अविजेय है, लड़े जाओ, जीत, तुम्हारी ही होगी।

एक और मुहावरा इस स्थान पर सहज ही याद आता है चढ़जा बेटा, सूली पर, भली करेंगे राम। तो यह वकील लोग तो यही चाहेंगे भला सोने की चिड़िया को कौन अपने जाल में नहीं पकड़ना चाहेगा अथवा सोने का अंडा देने वाली मुर्गी को कौन नहीं पकड़ता।

तो दोनों पक्ष के वकीलों ने दोनों भाइयों को खूब लड़ाया और

उनसे खूब धन खींचा आप जानते हैं कि एक बार जब आदमी मुकदमें में फंस जाता है तो फिर वह पीछे हटना चाहे भी तो हट नहीं पाता। इसमें उसे अपनी हेठी मालूम पड़ती है। अपनी बात रखने के लिये या अपनी झूठी जिद और झूठी शान रखने के लिये वह अपना सब कुछ लुटाने के लिये तैयार रहता है।

इस प्रकार उन दोनों भाइयों के रुपये पानी की तरह बह गये। तब कहीं जाकर न्यायाधीश के सामने मुकदमा आया वे दोनों वकील तगड़े थे। न्यायाधीश यह बात जानते थे वे ऊंची भावना रखने वाले थे। उन्होंने जान लिया कि ये वकील दोनों भाइयों को लड़ाकर अपना घर भर रहे हैं। अतः उच्च भावना रखने के कारण उन्होंने शीघ्र ही फैसला दे दिया।

फैसला हुआ–सुपारी का वृक्ष ही सारे झगड़े की जड़ है, उसे कटवा दिया जाय और दोनों भाइयों में आधा–आधा बांट दिया जाय।

न्यायाधीश के आदेश का पालन होना ही था। वृक्ष कटवा दिया गया। जड़मूल से वह वृक्ष नष्ट हो गया।

बन्धुओं ! आप सोचिये कि इस झगड़े से किसका, क्या हित हुआ। यदि वह वृक्ष किसी एक भाई के पास रह जाता और उसे थोड़ी बहुत आमदनी अधिक हो जाती तो क्या अन्तर पड़ता या वह वृक्ष दूसरे भाई के हिस्से में चला जाता तो पहिले भाई को क्या हानि हो जाती ? कुछ भी अन्तर किसी भाई को पड़ने वाला नहीं था। किन्तु व्यर्थ की जिद के कारण दोनों भाइयों के लाखों रुपये बरबाद हुए और हाथ किसी के कुछ न लगा, उल्टा एक सुन्दर और हरा भरा वृक्ष अपनी मूक जिन्दगी से चला गया।

यह दयनीय दशा इस कलियुग के भाइयों की है। ये लोग लड़ते झगड़ते हैं और पता नहीं कैसे–कैसे अकरणीय पाप कर्म करते है। उन्हें सोचना चाहिये कि यह कैसा खेल खेल रहे हैं।

❖ ❖ ❖

ठगाई

एक महिला कालेज से शिक्षित होकर निकली। वहां उसने नृत्य करना सीख लिया था। बाहर आकर अब उसे नृत्य करने और जीवन का आनन्द लेने की कामना जागी। ऐसा करने के लिये उसे पैसे की आवश्यकता थी। तो पैसा कमाना, ईमानदारी का पैसा कमाना तो कोई आसान काम है नहीं ? उसके लिये दिन–रात, सुबह–शाम ऐडी–चोटी का पसीना बहाना पड़ता था। किन्तु उस महिला को, जो कि आज कल की शिक्षा पद्धति से शिक्षित हो कर आई थी, न मेहनत करनी थी और न ईमानदारी की कोई चिन्ता थी। उसे तो केवल पैसा चाहिये था।

अतः उसने अपने नृत्य–कला के सहारे सिनेमा आदि में जाकर पैसा कमाने की आधुनिक विद्या सीख ली। यह नई विद्या सीख कर उसने स्वयं को बड़े ठाट–बाठ से सजाया, सुन्दर वस्त्र पहने और अप–टू–डेट मेमसाहब बन कर एक अस्पताल में पहुँची।

अस्पताल में वह डॉक्टर से मिलना चाहती थी। मरीजों की भीड़ थी। चपरासी ने कहा–मेमसाहब लाईन में अपने नम्बर से आईये तब मेम साहब ने अपने पर्स में एक पांच रुपये का नोट निकाला और चपरासी की मुट्ठी में थमा दिया। बस नई विद्या ने काम दिखाया चपरासी ने उसे तुरन्त अन्दर भेज दिया।

अब देवी जी डाक्टर के पास पहुँची। डाक्टर ने उनकी शान बान और सजावट देख कर सोचा कि किसी बड़े घर की महिला है। तो अन्य सब मरीजों को हटाकर वे उसकी सेवा में हाजिर हो गये और पूछा कहिये श्रीमति जी ! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।

देवी जी ने कहा–डाक्टर साहब ! मैं बहुत आवश्यक कार्य से आपके पास आई हूँ। मेरे पति का इलाज कराना है। आपकी बड़ी प्रशंसा सुन कर आप के पास आई हूँ। अब आपका ही सहारा है।

कुछ तो अपनी प्रशंसा सुन कर और कुछ देवीजी के रूप–यौवन तथा ठाट–बाट से प्रभावित होकर बड़े डाक्टर साहब एक दम विचलित हो गये और बोले–कहिये मुझे क्या करना है ? आपके पति का क्या हो गया है।

देवी जी ने चुप चाप 50/– रुपये का नोट डाक्टर साहब के हाथ में दे दिये, जिन्हें डाक्टर ने उसी प्रकार चुप–चाप अपनी जेब के हवाले कर लिया और बोली–मेरे पतिदेव को एक मर्ज है कि उन्हें समय–समय पर पागलपन सवार हो जाता है और वे मुझे से कहते हैं कि लाओ रुपये, लाओ रुपये। अब डाक्टर साहब आप बताइये कि मैं कहाँ से लाऊं इतने रुपये ? मैं बड़ी दुखी हो रही हूँ। कृपया मेरे पतिदेव का इलाज आप कर दीजिये। ये 50 रुपये जो मैंने आपको दिये इन्हें तो आप भूल जाईये। आपकी फीस मैं इलाज के बाद पूरी दे दूंगी। आप चिन्ता न करें, किन्तु मेरे पति का इलाज आप अवश्य कर दीजिये।

डाक्टर साहब मान गये। देवी ने कहा–डाक्टर साहब जब मैं अपने पति देव को यहां लेकर आऊं तब मुझे कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। और आप एक बात का और भी ध्यान रखें कि मेरे पति देव को पागलपन सवार होता रहता है। वे तो आपके पास भी आकर रट लगायेंगे कि लाओ रुपये लाओ। तो आप इनका इलाज करके, उन्हें देख कर, उन्हें 50/– रुपये दे दीजियेगा ताकि उनका रोग अधिक न बढ़े।

ऐसा कह कर देवी जी ने 50/– रुपये डाक्टर साहब को और दे दिये। डाक्टर ने कहा–सब ठीक है मैं समझ गया। आप कोई चिन्ता मत करना। मैं आपके पति का इलाज कर दूंगा। ऐसा कह कर उन्होंने अपने चपरासी को कहा कि ये अपने पति को लायेंगी उनके साथ कोई रोक–टोक मत करना।

इतनी व्यवस्था करके वह महिला सीधी अपने घर गई और एक बढ़िया सा तांगा किराया का लेकर बाजार में उस स्थान पर गई जहां पर बड़े–बड़े जौहरियों की दुकानें थी। हाथ में शानदार पर्स लटकाये सजी–धजी, देवी जी एक बड़े जौहरी की दुकान पर गई।

दुकान के मालिक ने समझा किसी बड़े रईस घराने की कोई महिला जवाहरात खरीदने आई है। तो उसने बड़े तपाक से उसका स्वागत किया और अनेक प्रकार के मूल्यवान आभूषण उसे दिखाने लगा। देवी जी ने उनमें से बहुत अच्छे–अच्छे अपनी पसन्द के आभूषण लिए। वे कुछ पचास हजार रुपये के हुवे। देवी जी ने जौहरी से कहा ये आभूषण मैं खरीद रही हूँ। आप अपने मुनीम जी को मेरे साथ भेज दीजिये। मेरे पति अस्पताल में बड़े डाक्टर है। वहां चल कर मुनीम जी रुपये ले लेंगे।

जौहरी ने मुनीम जी को आदेश दिया और मुनीम उस महिला के साथ आभूषण लेकर चल पड़े। महिला ने आभूषण बेग में रख लिये। वे लोग सीधे अस्पताल पहुँचे। वहाँ पर पहुँचकर देवी जी सीधी उस डाक्टर के पास पहुँची। और बोली–डाक्टर साहब ! मैं अपने पति को ले आई हूँ। कृपया उनकी जांच कर लीजिये। डाक्टर ने पूछा वे कहाँ है महिला ने कहा वे बाहर खड़े है।

डाक्टर ने चपरासी को भेज कर मुनीमजी को भीतर बुलाया। महिला भीतर चली गई। मुनीम बेचारे ने सोचा कि देवी जी ने अपने डाक्टर पति से मुझे रुपये देने के लिये कह दिया होगा। वे भीतर गए।

अब तमाशा आरम्भ हुआ। मुनीम के आते ही डाक्टर साहब ने अपने औजार संभाले। एक यन्त्र वे मुनीमजी के मस्तिष्क पर फिट करने लगे। मुनीम बेचारा घबराया। और बोला–अरे डाक्टर साहब ये क्या करते हैं लाओ रुपये जल्दी से, मैं खोटी हो रहा हूँ।

डाक्टर ने सोचा कि इसे पागलपन का दौरा चढ़ गया। तो वह जल्दी–जल्दी उसकी जांच करने का प्रयत्न करने लगे। उधर मुनीमजी बेचारा चिल्लाने लगा। लाओ रुपये, लाओ रुपये। बड़ी भगदड़ हुई। डाक्टर मुनीम जी का निरीक्षण करना चाहता था और मुनीमजी बोले मुझे पचास हजार रुपये जल्दी दे दीजिये, जल्दी से और यह बकवास बन्द कीजिये। यह सुन कर डाक्टर उसे पचास रुपये देने लगा तो मुनीम जी ने कहा पचास रुपयों से क्या होगा ? आपकी पत्नी ने पचास हजार रुपये के आभूषण मेरी दुकान से खरीदे

हैं भरोसा न हो तो पूछ लीजिये उनसे।

यह सब बात सुन कर डाक्टर का माथा ठनका। उसने पूछा–क्या बात है जो आपको तो पागलपन का दौरा आता है। आपकी पत्नी ऐसा ही कह रही थी। मुनीमजी ने कहा कि कौनसी पत्नी ? अजी महाराज, मैं तो भला दुकान का मुनीम हूँ। आपकी पत्नी ने अभी पचास हजार रुपये के जेवर खरीदे हैं। मुझे रुपये दीजिये तब डाक्टर ने कहा कौनसी पत्नी ? कैसे रुपये ? कैसे रुपये ? वह औरत तो कहती थी कि आप उसके पति है और आपको पागलपन का दौरा आता है।

कैसा पागलपन ? अरे डाक्टर साहब ! मालूम पड़ता है कि हम दोनों को पागल बनाकर औरत चकमा दे गई। दौड़ो–दौड़ो उसे पकड़ो पुलिस में रिपोर्ट करो। अरे हम लूट गए रे–। सत्य ही वह जौहरी लूट गया था, डाक्टर बेवकूफ बन चुका था और चिड़िया उड़ गई थी। तो बन्धुओं ! आप देखिये कि इन विषयों को ग्रहण करने वाली आधुनिक शिक्षा को प्राप्त करने वाली बहिनें भी चरित्र पतन के किस गर्त में पड़ जाती हैं।

❖ ❖ ❖

इंगित समझे

एक सेठ की लड़की बड़ी हो गयी तो सेठ ने सेवकों को कहा कि तुम लोग जाओ और मेरी लड़की के अनुरूप कोई 20 वर्ष का अच्छा सा लड़का खोजकर उसके साथ सगाई पक्की कर दो। सेवकों ने वर खोजने के लिये प्रस्थान कर दिया। उनके मन में उत्साह था, उमंग थी कि सेठजी के मन मुताबिक कार्य करेंगे तो खूब सारा इनाम मिलेगा। वे गांव गांव में घूमे, पर लड़की के अनुरूप बीस साल का कोई लड़का नहीं मिला। वे चिन्ता में पड़ गए एवं विचार करने लगे कि अब क्या किया जाय ? तभी उनके मन में विचार आया कि क्यों न 10–10 वर्ष के दो लड़कों के साथ इसकी सगाई पक्की कर दी

जाय। उन्होंने ऐसा ही किया और उसी उमंग और उत्साह के साथ आकर सेठजी को बधाई दी कि 20 वर्ष का लड़का तो हमें कहीं नहीं मिला। अतः 10–10 वर्ष के दो लड़कों के साथ आपकी लड़की की सगाई पक्की कर दी। पर अब उन्हें क्या इनाम मिलेगा ? जो सेवक, सेठ के इंगितानुसार कार्य नहीं करता वह इनाम का भागीदार नहीं हो सकता।

❖ ❖ ❖

अनुभूति हीन ज्ञान

एक पाठशाला थी उसमें दो शिष्य सहपाठी थे। एक दिन दो गुरुओं ने अपने अलग–अलग शिष्यों को सूचना दी कि वह दही रखा है, हम स्नानादि से निवृत होकर आते है। तब तक तुम इस दही का ध्यान रखना। यह बात उन्होंने संस्कृत में अपने शिष्यों से कही कि "काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम"–जिसका अर्थ हुआ कि कौवों से दही की रक्षा करना। इतना कहकर गुरु चले गये। सुनने वाले दोनों शिष्य थे।

अब दोनों शिष्यों में से एक शिष्य ने सोचा कि गुरुजी ने कहा है कि कौवों से दही की रक्षा करना। सो यह बात मन में गांठ की तरह बांध कर वह आकाश की ओर ताक लगा कर बैठ गया कि कोई कौवा वहां आकर दही को न खा जाय। उधर एक बिल्ली उस दही की ओर ताक लगाये बैठी थी और वह आई और आकर दही को खाने लगी। शिष्य ने देखा और सोचा कि गुरुजी ने दही की रक्षा कौवों से करने के लिये कहा था, बिल्ली से नहीं। अतः उसने बिल्ली को नहीं भगाया और बिल्ली दही चट कर गई।

किन्तु दूसरे शिष्य के पास जब बिल्ली पहुँची तो उसने उसे भी भगा दिया और दही की रक्षा की।

अब जब अध्यापक लौटे तो एक ने अपने शिष्य से पूछा–दही की रक्षा की ? शिष्य ने उत्तर दिया हाँ गुरुजी रक्षा कर ली। अध्यापक ने पूछा–कौवे आए ? तो शिष्य ने बताया कि कौवे तो नहीं आए,

बिल्ली आई थी, उससे दही की रक्षा कर ली।

किन्तु जब दूसरे अध्यापक ने दूसरे शिष्य से वही बात पूछी तो उसने कहा–मैंने दही की रक्षा कौवों से तो कर ली, आपकी ऐसी ही आज्ञा थी। किन्तु बिल्ली दही को खा गई। मैंने उसे नहीं रोका क्यों कि आपने कहा था काकेभ्यो दधि रक्षयताम। अध्यापक ने अपने शिष्य की बुद्धि पर अपना सिर पीट लिया।

❖ ❖ ❖

परोपदेशी पांडित्य

एक विद्वान महाशय उपदेश देने की दृष्टि से बड़े कुशल थे। प्रत्येक विषय का प्रतिपादन वे इस कुशलता से करते थे कि सुनने वाले मंत्रमुग्ध बन जाते। एक दिन एक बहुत बड़ी सभा जुड़ी थी। उस सभा में उन्होंने बैंगन के दुर्गुणों का एकसा प्रतिपादन किया कि सुनते ही लोगों को बैंगन के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। अनेक लोगों ने तो प्रण कर लिया कि चाहे प्राण चले जायें किन्तु ऐसे दुगुर्णी बैंगन को अब कभी नहीं खायेंगे। ऐसा घृणित पदार्थ तो उनके लिए पाप हो गया।

किन्तु वे विद्वान महाशय केवल "परोपदेशे पांडित्यं" वाली उक्ति ही चरितार्थ कर रहे थे एवं वह प्रतिपादन केवल श्रोताओं तक ही सीमित था। स्वयं वे महाशय बैंगन को खूब पसन्द करते थे और प्रतिदिन बैंगन का साग खाते थे। हुआ यह कि उस सभा में उनकी पुत्री भी उपस्थित थी उसने वह वैराग्य पूर्ण उपदेश सुन कर सोचा कि पिताजी तो प्रतिदिन बैंगन का साग खाया करते थे किन्तु शायद आज उन्हें कोई दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया। अतः उन्होंने बैंगन की निन्दा की है तो अब तो पिताजी कभी भी बैंगन नहीं खायेंगे।

भोली–भाली बालिका पंडित जी के मन के भीतर की बात क्या जाने ? उसने सोचा कि माताजी तो घर पर आज भी पिताजी के लिये बैंगन का साग बनायेगी और पिताजी ऐसी घृणित वस्तु को देख

कर बहुत दुखी होंगे। अतः व्याख्यान समाप्त होते ही वह भागी–भागी अपने घर पर गई और माता जी से बोली कि माँ–माँ कहीं तुमने आज भी बैंगन का साग तो नहीं बनाया है। यदि बनाया है तो उसे कहीं पर छिपा दो और पिताजी के लिये और कोई दूसरी सब्जी झटसे बना दो। माँ ने पूछा क्यों बेटी आज ऐसी क्या बात हो गई। तब बालिका ने सारी घटना अपनी माता को बतलाई और कहा कि पिताजी के उपदेश को सुन कर बहुत से लोगों ने बैंगन का त्याग कर दिया है।

माताजी को विश्वास हो गया। उसने बैंगन के साग को छिपा दिया और दूसरी सब्जी बना दी। पंडितजी महाशय जब घर पर आये तब भोजन के समय उनकी थाली में दूसरी सब्जी थी। देख कर उन्होंने यह कहा, अरे भागवान आज यह क्या घास जैसी सब्जी मेरे लिये परोस दी है क्या आज तुमने बैंगन नहीं बनाये। माता ने अपनी पुत्री द्वारा कही गई सारी बात उसको बताई तब वे बोले क्यों बेटी। तूने बैंगन की सब्जी बनाने के लिए क्यों इंकार किया ? तब बालिका ने जैसी बात थी वैसी ही बतला दी और कहा, पिताजी आज आपने इतना सुन्दर उपदेश दिया कि बैंगन को इतना खराब बताया कि बहुत से लोगों ने बैंगन का त्याग ही कर दिया। तब मैंने सोचा कि भला पिताजी ऐसी घृणित वस्तु को क्यों ग्रहण करेंगे। अतः मैंने माताजी को बैंगन की सब्जी बनाने से मना कर दिया। यह सुन कर पंडित महाश्य ने कहा–छोकरी तू कुछ नहीं जानती। अरे उपदेश देने का बैंगन कुछ और होता है, और खाने का बैंगन कुछ और होता है।

❖ ❖ ❖

खानदान का प्रभाव

एक सेठ अपने लड़के का विवाह किसी जाति कुलवान घराने की लड़की से करना चाहता था। किन्तु सेठानी जरा पैसों की लोभी थी। वह कहा करती थी कि अमुक सेठ की लड़की बड़ी रूपवान है और उनके पास पैसा भी बहुत है। पैसा भी बहुत आयेगा। सेठानी की

यह बात सुन कर सेठ ने कहा कि तेरी तो मति भ्रष्ट हो गई। तू तो बस पैसों को देखती है। अरे पैसे से पहले जाति और कुल को भी देखना चाहिये। सेठ की बात को सुन कर सेठानी ने कहा कि आप कैसी बात करते हो। अरे पैसों से तो सब काम चलता है। जाति–वाति में क्या रखा है ? सेठ नहीं माना और कहने लगा कि यह विचार ठीक नहीं है। सेठानी ने कहा कि उस लड़की में क्या दूषण है।

सेठ बताने लगा–देखो, उसके कुल में तो कोई दूषण नहीं है। किन्तु जाति में दूषण है। सेठानी द्वारा यह दूषण पूछे जाने पर सेठ ने बताया कि उस लड़की की नानी की नानी ने चूहा मारा था यह सुनकर सेठानी ने कहा आप भी विचित्र हैं। भला आप कहां से कहां पर पहुँच गये। उसकी नानी की नानी ने चूहा मारा तो उससे क्या हो गया। तब सेठ ने कहा कि तुम मानो या न मानो किन्तु उसके संस्कार आये बिना नहीं रहते। ये संस्कार पीढ़ी–दर पीढ़ी तक बल्कि जन्म–जन्मान्तर तक चलते हैं।

किन्तु सेठानी भी जिद्दी थी और पैसे के लालच को सरलता से नहीं छोड़ सकती थी। भाईयों आप लोगों को भी अनुभव होगा कि स्त्रियों का हठ बड़ा प्रबल होता है। आपके घर की कम्पनी सरकार जब कोई अल्टीमेटम दे देती है तो फिर आप वैसा ही नाचने लगते हैं। सो हुआ यह कि सेठ की इच्छा के विरुद्व उसके लड़के का विवाह उसी लड़की से कर दिया गया। जिसके लिये सेठानी ने जिद पकड़ रखी थी।

यह कन्या यद्यपि अपने आप में अच्छी गुणवान और सम्पन्न थी, परन्तु उसके जातीय संस्कार अच्छे नहीं थे। उसमें हिसंक वृति के संस्कार थे। एक बार ऐसा प्रसंग हुआ कि बाहरी सम्बन्धियों का निमन्त्रण मिलने पर सेठ को परिवार सहित बाहर जाना था। अब वह सोचने लगा कि घर को सूना छोड़ कर बाहर जाना ठीक नहीं है। पीछे से जाने क्या हो, वह इसी चिन्ता में था कि उसकी यह चिन्ता को देख कर नववधू ने कहा कि आप लोग सम्बन्धियों के यहां जाइये मैं यहां पर ठहर जाऊँगी। आप लोग घर की चिन्ता न करें।

इस प्रकार बहू ने घर की जिम्मेदारी ले ली। बाकी के सब लोग घर से बाहर चले गये। पीछे से क्या हुआ कि सेठ के कोई दूसरे

सम्बन्धी उधर आ निकले। उस समय यातायात के साधन इतने सुगम और तीव्र तो थे नहीं कि जब चाहे तभी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाए। उस समय तो पैदल या बैलगाड़ी से ही यात्रा करनी पड़ती थी। तो उस आगन्तुक सम्बन्धी ने विचार किया कि इतनी दूर आया ही हूँ तो अपने सम्बन्धी सेठ से मिलता चलूं। यह विचार करके वह सेठ से मिलने उसके घर पर गया। घर पर अकेली बहू थी। उसने बताया कि सब लोग बाहर गये हुए हैं। तो आगन्तुक ने कहा कि ठीक है मैं मिलने आ गया था। तुम सेठ जी से, जब वे आवें तो ऐसी सूचना दे देना कि सब कुशल मंगल है। मैं सहज ही इधर से जाते हुए मिलने आ गया था।

इतना कह कर वह जाने लगा। लेकिन बहू ने देखा कि आगन्तुक सम्बन्धी आभूषणों से लदा हुआ है और आभूषण बड़े सुन्दर और मूल्यवान हैं तो उसके मन में आभूषणों का लोभ जागा। अतः उसने कहा–और लोग नहीं है तो क्या हुआ, मैं तो यहीं हूँ। आप हमारे सम्बन्धी हैं मैं आपको भोजन किये बिना नहीं जाने दूंगी। अब थोड़ा ठहर कर भोजन करके ही जाइये।

इसमें कोई आपत्ति की बात नहीं है। अस्तु वह आगन्तुक सम्बन्धी भोजन के लिये ठहर गया। बहू ने बढ़िया भोजन बनाया। किन्तु मन में विकार समा चुका था। अतः उसने मिष्ठान में विष मिला दिया। बेचारे परदेसी को इन सब बातों का क्या पता ? उसने भर पेट भोजन कर लिया।

अब भोजन के बाद तुरन्त ही उसकी तबियत बिगड़ने लगी क्योंकि विष ने तुरन्त अपना प्रभाव दिखाया। बहू ने कहा–आप थके हुए हैं थोड़ा आराम कर लीजिये। और कोई बात नहीं है। सो वह बेचारा बिस्तर पर लेट गया और वह ऐसा लेटा की फिर कभी नहीं उठ सका। उसकी इहलीला विष के कारण समाप्त हो गई।

बहू ने चुपचाप उसके सारे आभूषण उतार लिये और उन्हें छिपा लिये। उसके बाद उसने आंगन में एक गड्ढा खोद कर शव को एक पिटारी में बन्द करके उसमें गाढ़ दिया और ऊपर से मिट्टी वापस बराबर कर दी।

थोड़े समय बाद सेठ भी घर लौट आया और सब काम यथावत चलने लगा।

किन्तु वह आगन्तुक और अब दिवंगत सम्बन्धी जब घर नहीं पहुंचा तो उसके परिवार वालों को चिन्ता हुई और उसकी खोजबीन करने लगे खोजते–खोजते वे सेठ के गांव में पहुँचे और वहां लोगों से इस विषय में पूछ–ताछ की। लोगों ने बताया कि वहा यहाँ आया तो अवश्य था किन्तु यहां से जाते हुए उन्हें किसी ने नहीं देखा।

तब सेठ के यहां पूछ–ताछ हुई। सेठ ने अपनी बहू से पूछा कि बहू क्या अपने घर कोई आया था ? बहू ने साफ झूठ बोल दिया कि यहां पर तो कोई भी नहीं आया। सो कुछ भी पता नहीं।

लेकिन भाईयो ! पाप कभी छिपता नहीं। पुलिस ने खोज की। सेठ के घर के भीतर से कुछ दुर्गन्ध भी आ रही थी। उसके आधार पर पुलिस ने उस लाश का पता भी लगा लिया। आभूषण भी उसने सेठ के घर से बरामद कर लिये। और बहू के कारनामों की सारी कलाई खुल गई।

जब बहू को जेल में ले जाया जा रहा था तब सेठ ने सेठानी से कहा देखा तूने ? पहले ही कहा था कि यह कन्या अच्छे संस्कारों वाली नहीं है। इसकी नानी ने चूहा मारा था। वह हिंसक संस्कार इसमें भी आया कि नहीं ? व्यर्थ ही लड़के का जीवन बर्बाद कर लिया और मेरे घर की प्रतिष्ठा पर सदा–सदा के लिये एक अमिट कलंक लगवा दिया।

बन्धुओ ! मैं आपसे कह रहा था कि ये हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और अपिरग्रह के संस्कार लालच के संस्कार मातृपक्ष या पितृपक्ष में हों तो यह जातीय संस्कार अच्छे नहीं होते। उनका प्रभाव कन्या या पुत्र में आये बिना नहीं रहता। अतः जाति एवं कुल सम्पन्नता नहीं होनी चाहिये।

❖ ❖ ❖

मनोविज्ञान का प्रभाव

एक मिनिस्टर साहब बीमार हो गए। इलाज के लिये वे अपने दोस्त डाक्टर के पास पहुँचे। उस समय वह डाक्टर अपने एक मित्र सेठ का इलाज कर रहा था। सेठ को टी.बी. की बीमारी थी। अन्य डाक्टरों ने सेठ की हालत की जांच–पड़ताल करके उसे निराशाजनक उत्तर दे दिया था। साफ बता दिया कि भाई, आपको तीसरे दर्जे की टी.बी. हो गई है। अब यह रोग हमारे लिए असाध्य हो गया है। अतः आप अपनी आत्मा को शुद्ध करने का प्रयत्न कीजिए और नए जन्म की तैयारी में लग जाइये।

सेठ के दोस्त ने जब सारी स्थिति देखी और सुनी तब सेठ को कहा कि मैं दूसरे तरीके से उपचार करता हूँ और वह तल्लीनता के साथ सेठ की स्थिति का निरीक्षण–परीक्षण करने लगा।

जब मिनिस्टर उनके पास पहुँचा तो उसने उनका भी परीक्षण कर लिया और कहा कि मैंने तुम्हारा परीक्षण कर लिया है। तुम अपने कार्यालय में जाओ मैं निदान और औषधि वहीं भिजवा दूंगा। मिनिस्टर चला गया।

इसी प्रकार डाक्टर ने सेठ का भी पूर्ण परीक्षण किया और उससे भी कहा कि वह घर जाये, निदान और औषधि घर पर भेज दी जायेगी।

दोनों के चले जाने पर डाक्टर ने दोनों निदान के अनुसार नुक्से लिखे। सेठ के लिये लिखा कि दोस्त ! मुझे खेद है कि तुम्हें तीसरे दर्जे की टी.बी. है। इसका इलाज अब नहीं हो सकता। अन्य डाक्टरों का निदान और इलाज सही है। अतः आप इस भौतिक पिण्ड तक ही स्वयं को सीमित न रखें। अपने आध्यात्मिक जीवन पर अब दृष्टि डालिये और अन्तिम समय के जीवन की उज्ज्वलता को प्राप्त करने की कोशिश करें। अपने मिनिस्टर मित्र के लिये उस डाक्टर ने

लिखा कि दोस्त ! आपको बीमारी नहीं है। मामूली सी सर्दी–खांसी है। इसके लिये कोई औषधि की आवश्यकता नहीं। आप सोंठ और गुड़ का प्रयोग कीजिये।

दोनों पर्चे उसने तैयार कर लिए। उसी समय किसी एमरजेन्सी केस में डाक्टर को किसी मरीज को देखने के लिये बुलावा आ गया। उसने शीघ्रता से वहां जाने की तैयारी की और अपने कम्पाउडर को हिदायत कर दी कि वह दोनों पर्चियां सेठ और मिनिस्टर को दे आवे।

वह कम्पाउण्डर दोनों पर्चे ले गया। किन्तु भूल से उसे सेठ वाली पर्ची मिनिस्टर को और मिनिस्टर वाली पर्ची सेठ को दे दी।

मिनिस्टर ने घर आकर डाक्टर की पर्ची देखी और उसे पढ़कर उसके हाथ–पांव फूल गये, होश उड गये। तीसरी स्टेज की टी.बी. की बात पढ़कर वह तुरन्त बेहाल होकर बिस्तर पर पड़ गया। उसने सोचा कि डाक्टर मेरा मित्र है, योग्य है। वह झूठ नहीं लिख सकता। अतः अब तो बच ही नहीं सकता।

इस प्रकार मनौवैज्ञानिक रूप से बीमार होकर उसने खाट पकड़ ली उसके दिल की धड़कन बढ़ गई और दस्त आदि भी लगने लग गये। उनकी यह हालत देखकर घर वाले घबराये। उन्होंने फौरन ही डाक्टर को बुलावा भेजा। डाक्टर ने आकर पूछा कि भाई, ऐसी क्या मुसीबत आ गई ? क्या बात हो गई ? तो मिनिस्टर ने सारी बात बताते हुए कहा कि मैं तो चला। आप यदि कुछ देर और करके आते तो मेरा तो हार्टफेल हो जाता।

यह सारी स्थिति देखकर डाक्टर को हंसी आ गई। उसने कहा अरे मित्रवर, भूल हो गई। कम्पाउन्डर ने गड़बड़ कर दी। तुम्हें तो कुछ नहीं हुआ है। मामूली सी सर्दी–जुकाम है। तुम्हारे लिये तो मैंने सौंठ और गुड़ का प्रयोग करने के लिये लिखा था। यह पर्ची तो सेठ के बारे में थी। तुम चिन्ता न करो।

वास्तविक बात जानकर मिनिस्टर के जी में जी आया। उसके दिल की धड़कन भी ठीक हो गई। और दस्त आदि भी ठीक हो गये।

अब डाक्टर ने सोचा कि इसका यह हाल हुआ तो, सेठ का

क्या हाल है। यह भी चल कर देखना चाहिये। अतः वह सेठ के घर पर पहुँचा।

सेठ के यहां दूसरा ही दृश्य था। वैसे तो बेचारा सेठ कभी खाट से उठता नहीं था और दिन भर कराहता रहता था। किन्तु इस समय वह उठ कर धूप में कुर्सी पर आराम से बैठा हुआ था और बड़ी प्रसन्नता से घर के लोगों से बातचीत कर रहा था देखो जी कोई भी इन डाक्टरों के चक्कर में मत आना। ये सब लुटेरे हैं। मेरा मित्र डाक्टर यदि आज नहीं होता तो ये सब डाक्टर मिल कर मेरे प्राण ले लेते। उन्होंने मेरे शरीर को दवाइयां देकर जर्जरित कर दिया। अरे मुझे तो कुछ बीमारी नहीं है। जरा सा सर्दी–जुखाम है।

इस प्रकार वह सेठ बड़े आनन्द से अपने परिवार वालों से बातचीत कर रहा था। जब डाक्टर आया तो वह उसके चरणों में गिर गया और बोला मित्र तुमने मुझे बचा लिया। तुम धन्य हो और तुम मेरे सच्चे मित्र हो। मुझे तो कोई भी बीमारी नहीं है। सर्दी जुखाम है। अब मैं सौंठ और गुड़ का प्रयोग करूंगा। तथा शीघ्र ही पूर्ण स्वस्थ हो जाऊंगा।

डाक्टर ने सारी स्थिति देखी और सोचा कि इसके विश्वास को ठेस नहीं लगानी चाहिये। अतः उसने कहा–हाँ मित्र तुम्हें कोई बीमारी नहीं है। चिन्ता मत करो, प्रसन्न रहो।

परिणाम यह हुआ कि कुछ ही दिनों में सेठ पूर्ण स्वस्थ्य होकर अपने काम–काज में लग गया।

बन्धुओ ! आत्मविश्वास बहुत बड़ी वस्तु है मन की दृढ़ता सफलता का आधार है। वह सेठ टी.बी. जैसी बीमारी से भी अपनी आत्मशक्ति के कारण बच गया। अतः आप इस पर विचार कीजिये और जीवन में कभी निराश मत होइये। अपने आत्मविश्वास को कभी मत खोइये। झूठे विश्वास को अपने हृदय में प्रवेश मत होने दीजिये और अपनी आत्मश्रद्धा को बनाए रखिये।

❖ ❖ ❖

बच्चों के संस्कार सही हों

भोपाल की एक घटना है वहीं के निवासी निहालचन्दजी का पुत्र भीमसिंह वकालत में पढ़ रहा था। माता–पिता ने उसे आरम्भ से ही ऐसे संस्कार देकर पाला था। कि वह मांस मदिरा, अण्डे आदि से घृणा करता था। उसमें उत्तम और हितकारी संस्कार बचपन से ही डाल दिये गये थे।

एक बार उसके साथियों ने कोई पार्टी की। सब लोग अपने अपने घर से अपने–अपने टिप्पन लेकर पहुँचे। जब टिप्पन खोले गये तो उनमें से बहुत से साथी अण्डे भी लाये थे। यह देख कर भीमसिंह को बड़ा दुःख हुआ और उसने अपने साथियों से कहा कि मैं तुम लोगों के साथ बैठ कर भोजन नहीं करूंगा। मांस–मदिरा, अण्डे खाना पाप है और शरीर के लिये भी हितकारी नहीं है। मुझे इन वस्तुओं से बड़ी घृणा है।

किन्तु उसके साथ ही जिद करने लगे और कहने लगे कि अरे अण्डे में तो कोई जीव होता ही नहीं। इसे खाने में क्या हानि है। तुम्हें हमारे साथ बैठ कर आज अण्डे खाने ही पड़ेंगे।

भीमसिंह नहीं माना, तो साथी जबरदस्ती करने लगे। यह जबरदस्ती देख कर उसने आवाज लगाई और उसकी आवाज को सुन कर उसके शिक्षक वहां पर आ गये। उन्होंने पूछा कि यह सब क्या बात है तो उन्हें सारी स्थिति बतलाई गई। सुनकर शिक्षक कहने लगे कि अरे भीमसिंह ! इसमें तो कोई हर्ज नहीं है। अण्डे तो निर्जीव है एवं शाकाहारी है। तुम इसे खा सकते हो।

बन्धुओ ! जिस देश में शिक्षक भी इस मार्ग पर चल पड़े, उस देश का कल्याण किस प्रकार संभव है। ऐसे लोगों के मस्तिष्क में से अब तक पाश्चात्य संस्कार नहीं निकले है और गुलामी की जंजीर–मानसिक गुलामी की श्रृंखला अब तक उनके गले में पड़ी है

और यह दशा अत्यन्त सोचनीय है। ऐसे विचार रखने वाले लोगों के संसर्ग से भी दूर रहना चाहिये। भीमसिंह ने भी यही किया और दीवार फांद कर वहां से भाग गया।

संरक्षकों का पुनीत कर्तव्य बन जाता है कि वे अपने बालकों के संस्कारों के प्रति पूर्ण सावधानी बरते और उन्हें ऐसे लोगों की संगति से बचाए जो कि अपने जीवन को स्वयं भी नहीं समझते और अपने साथ ही दूसरों के जीवन के साथ भी खिलवाड़ करने के लिये तैयार रहते है। एक पिता का सम्बन्ध अपने पुत्र के साथ केवल शरीर का ही नहीं होता धर्म का सम्बन्ध भी होता है। उस सम्बन्ध को पूर्ण सजग रह कर निभाना चाहिये।

❖ ❖ ❖

पंचम काल का भविष्य-दर्शन हस्तिपाल राजा के स्वप्न

भगवान महावीर का अन्तिम चातुर्मास पावापुरी में हस्तिपाल राजा की शाला में था, जहां इन्ही दिनों में आत्मा को जागृत बनाने वाले पवित्र उपदेशों का क्रम चल रहा था। उस चरम चातुर्मास के कारण गण्यमान श्रावक–श्राविकाएं तथा राजा–महाराजा प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन हेतु आ रहे थे। संत और सतीवृन्द भी उपस्थित हुए, क्योंकि यह ज्ञात हो गया था कि प्रभु की चरम स्थिति समीप है और आत्म कल्याण का अन्तिम संदेश उनके चरणों में बैठकर ग्रहण कर लेना चाहिए।

इसी दिन हस्तिपाल महाराज, जिनका ग्रन्थों में दूसरा नाम पुण्यपाल भी बताया जाता है, आत्मशुद्धि के कार्य में निमग्र थे। अन्तःकरण की निर्मल अवस्था में उन्होंने आठ स्वप्न देखे और उन्होंने उन स्वप्नों को भगवान के समक्ष प्रकट किया। महावीर ने उन स्वप्नों के आधार पर पंचम काल के भविष्य का कथन किया, जिसका

उल्लेख ग्रंथों (मूल शास्त्रों में नहीं) में आता है। यह भविष्य कथन महावीर के निर्वाण के बाद से सम्बन्धित होता है। आज के दिन से सम्बन्धित होने के कारण इन स्वप्नों व उनके अर्थ पर यहां विचार कर रहे हैं।

जिसकी आंतरिक शुद्धि होती है और हृदय पवित्र होता है, उसकी सरलता के साथ धर्म की प्रतिष्ठा तो होती ही है, किन्तु उसके मानस में भविष्य का विचित्र ढंग से चित्रण भी हो जाया करता है। हस्तिपाल 'राजा का' ऐसा सम्बन्ध जुड़ा कि उनका उल्लेख अपने यहाँ परम्परा से होता आ रहा है।

आठ स्वप्न हस्तिपाल महाराज ने देखे और उनको देखकर वे भ्रान्त हुए। उनका चिन्तन भविष्य की ओर बढ़ा। तब वे प्रभु के चरणों में पहुँचे और निवेदन करने लगे–भगवन प्रातः की बेला में मुझे ये आठ स्वप्न विचित्र ढंग से कैसे दिखाई दिये हैं ? स्वप्नों का प्रसंग मेरे जीवन में बहुत कम बना रहता है, फिर ऐसे स्वप्न क्यों आये ? यह वास्तविक भी है कि जिसके मन में उज्ज्वलता स्थिरता तथा लक्ष्य के प्रति निष्ठा हो, उसे प्रायः स्वप्न नहीं आया करते हैं। स्वप्न चंचल चित्त वाले को ही ज्यादा दिखाई देते हैं। फिर पवित्र आत्मा का रूपक उससे भिन्न होता है। हस्तिपाल महाराज का भी हृदय पवित्र था और ये स्वप्र उन्हें सहसा आये, अतः उन्होंने उनके सम्बन्ध में भगवान से निवेदन कियाः–

हस्तिपाल के आठ स्वप्न

एक एक स्वप्न के सम्बन्ध में महाराजा हस्तिपाल भगवान से निवेदन करने लगे–

"भगवन पहले स्वप्न में मैंने एक हाथी को देखा, जो बहुत ही सुन्दर और श्रेष्ठ था, किन्तु मैंने उसे गहरे कीचड़ में धंसा हुआ देखा इस स्वप्न का अर्थ मैं नहीं समझा।"

"भगवन दूसरे स्वप्न में मैंने एक पुष्ट शरीर वाले बन्दर को देखा अपने स्वभाव के अनुसार यह बन्दर उद्यान को नष्ट कर रहा था। इधर से उधर दौड़ता हुआ और फल फूलों को रौंदता हुआ

शाखाओं को तोड़ कर रमणीय उद्यान को अरमणीय बना रहा था।"

"भगवन, तीसरा स्वप्न एक क्षीर के वृक्ष का था जिसके चारों ओर जहरीले जन्तु व्याप्त थे। इन जन्तुओं की वजह से अन्य कोई प्राणी उस वृक्ष का लाभ नहीं उठा पा रहे थे।"

"भगवन, चौथे स्वप्न में मैंने एक कोए को देखा जो विचित्र ढंग से चुग रहा था। वह अच्छे–अच्छे पदार्थों को छोड़कर अशुचि भरे पदार्थों पर झपट कर पहले दौड़ता था।"

"भगवन पांचवा स्वप्न एक विकराल सिंह का था, जिसकी भीषण गर्जना को सुनकर सारे वन के जीव–जन्तु स्तब्ध रह जाते थे। किन्तु ऐसे पराक्रमी सिंह की दशा बड़ी विचित्र थी। उसके शरीर में कीड़े पड़े हुए हैं। जो कुलबुला रहे हैं और उन कीड़ों की वजह से वह सिंह भी व्याकुल सा दिखाई देता था।"

"भगवन, छठे स्वप्न में मैंने एक कमल देखा। उस कमल का विचित्र हाल था कि वह सरोवर के बजाय अकूड़ी (गन्दगी डालने की जगह) पर लगा हुआ था। ऐसी जगह कमल लगता नहीं, फिर यह कैसा स्वप्न था।"

"भगवन सातवें स्वप्न में मैंने कुछ किसानों को बीज बोते हुए देखा। आश्चर्य की बात यह थी कि वे बीज वहीं बो रहे थे, जहां ऊसर जमीन थी जहां अकुंर भी नहीं निकल सके, वहां बीज बोये जा रहे थे। दूसरी तरफ उपजाई भूमि पर ऐसे बीज बोये जा रहे थे, जिसमें उगने की योग्यता ही नहीं थी, कारण उनकी नोकें टूटी हुई थी।"

"भगवन, आठवां स्वप्न एक कुंभ–कलश का था। कुंभ–कलश तो मांगलिक व मनोरथ पूर्ण करने वाला समझा जाता है किन्तु यह कुंभ–कलश विचित्र ढंग से एक कोने में पड़ा हुआ था।"

"भगवन ये आठ स्वप्न मैंने देखे और मेरी निन्द्रा भंग हो गई। मैं आश्चर्य में पड़ गया और सोचने लगा कि ये विचित्र दशाओं में आये हुए स्वप्न किस प्रकार के भविष्य का संकेत दे रहे हैं ? मैं इनके अर्थ को समझ नहीं पाया हूँ, अतः इन्हें मैंने आपके समक्ष रखा है। आप कृपा करके इनके भविष्य दर्शन पर प्रकाश डालिये और समझाइये कि

ऐसे स्वप्नों का भविष्य में क्या फल आने वाला है, क्योंकि आप सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी हैं। आपके इस भविष्य दर्शन से कई भव्य आत्माओं को उद्‌बोधन मिलेगा।

महावीर द्वारा स्वप्नों के फल का कथन–कीचड़ में धंसा हाथी

तब महावीर प्रभु ने हस्तिपाल के स्वप्नों का फल बताते हुए संकेत दियाः–राजा ! तुमने कीचड़ में फंसा हुआ जो हाथी स्वप्न में देखा है, उसका अर्थ यह है कि आने वाले पंचम काल में हाथी के समान कई प्राणी सांसारिक वैभव से युक्त, धार्मिक व निष्ठावान भी होंगे किन्तु क्षणिक सुख में इस तरह मदमस्त हो जायेंगे कि आध्यात्मिक मार्ग को छोड़कर विषय कषाय के कीचड़ में फंसते रहेंगे। पांचों इन्द्रियों के भोग में वे अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर देंगे। कदाचित कोई सत्संग के प्रसंग से संसार के विषय कषाय रूपी कीचड़ से बाहर निकल कर दीक्षित भी बनेंगे तो कई बाद में भी कुसंगति के कारण आन्तरिक रूप से महाव्रतों को तोड़ देंगे और फिर भी बाहर से साधु कहलाते रहेंगे। इस तरह उत्तम कुल के प्राणी सभी कुसंगति के कारण संयमी जीवन की दशा को विकारपूर्ण बना देंगे। हाथी उत्तमता का प्रतीक होता है किन्तु उसके कीचड़ में फंसे होने का अर्थ है कि उत्तम कुल के प्राणी अधिकांशतः अपने सुचरित्र से पतित बनेंगे अतः पंचम काल में जीवन की विचार एवं आचार–गत पवित्रता को बनाये रखने के लिये सदा कठिन प्रयास किये जाते रहने चाहिये।

उच्छृंखल कपि

पंकग्रस्त करि याने कीचड़ में फंसे हाथी के स्वप्न का अर्थ बताकर उच्छृंखल कपि के दूसरे स्वप्न का अर्थ महावीर प्रभु ने इस प्रकार बताया कि इस पंचमकाल में कई विचित्र दृश्य दिखाई देंगे। इसमें मेरे गच्छ का नाम लेकर मेरे शासन की छाया में रहते हुए भी अनेक व्यक्ति बाहर की दृष्टि से संयम को अंगीकार करेंगे और उसके बाद गच्छ के नायक या स्वामी बन जायेंगे, किन्तु वे नायक या स्वामी स्वप्न के इस बन्दर की तरह बनेंगे।

जैसे उच्छृंखल कपि हरे भरे रमणीय उद्यान में तोड़ फोड़ व

उखाड़–पछाड़ करके उसकी सारी शोभा को नष्ट कर देता है, वैसे ही ये नायक गच्छनायक या स्वामी भीतर ही भीतर संघ की शोभा को विकृत बनाते रहेंगे। ये नायक अधिकतर चंचल वृति वाले होंगे और चंचलता के साथ अनेक प्रकार के रूपान्तरों को धारण करेंगे। तब सामान्य रूप से वृत पालन में शिथिलता आयेगी। यह वातावरण इस रूप में घातक बनेगा कि जो सावधान रह कर व्रत पालन करने के यत्न करेंगे, उन्हें भी उनके व्रतों से नीचे गिराने की कुचेष्टाएं की जायेगी। जनमानस में ऐसी विकृत विचार धारा बिठाई जायेगी कि निश्छल धर्मधारियों को धर्म से दूर समझा जाने लगेगा। यह स्वप्न जीवन के आन्तरिक विचार एवं व्यवहार के खोखलेपन को बताने वाला है ऐसा जीवन पंचम काल में दिखाई देगा। मेरे शासन में लोग धर्म समृद्धि में तत्पर बनेंगे, किन्तु दीक्षा में पीछे रहेंगे। पद पाने की कामना प्रबल होगी और कोई विरले ही होंगे जो पद से दूर रहकर अपना सच्चा आत्म–कल्याण करना चाहेंगे। जैसे शहरी लोग ग्रामवासियों की सभ्यता को देखकर हंसते हैं, वैसे ही ज्ञानीजन ऐसे आडम्बरी धर्मनायकों को देखकर हंसेंगे। इसके अनुसार प्रदर्शन से दूर रह कर धर्म को हृदयंगम करें तथा व्रतों का हार्दिकता से पालन करे।

क्षीर वृक्ष के जहरीले जन्तु

राजन ! क्षीर वृक्ष के समान पंचम काल में ऐसे दानी और वीर श्रावक भी होंगे, जो मेरे शासन में निष्ठा रखने वाले तथा आध्यात्मिकता के साथ अपने जीवन की पवित्रता के साथ चलने वाले होंगे। किन्तु कुछ श्रावक ऐसे लिंगधारी याने कि अपना गलत वर्चस्व रखने वाले भी होंगे जो इधर–उधर की बातें बनाकर साधुओं को अपने सही मार्ग से भ्रमित करेंगे तथा उन्हें अन्य साधुओं के साथ नहीं बैठने देंगे। वे जहरीले जन्तुओं की भांति होगे, और अपनी स्वार्थ पूर्ति में लगे रहेंगे। इस प्रकार के जन्तु साधुवेश को लेकर चलेंगे। तब भी अपनी दुर्भावनाओं को लेकर संसार में परिभ्रमण करेंगे। ऐसे लिंगधारी श्रावक, सुश्रावकों को भी अपने रास्ते से फिसलाने की चेष्टाएं करेंगे। ऐसे लिंगधारी श्रावक, सुश्रावकों को भी अपने रास्ते से फिसलाने की

चेष्टाएं करेंगे। ऐसे जहरीले जन्तुओं के समान श्रावक पंच महाव्रत धारण करके साधु भी बन जायेंगे, फिर भी वह उन महावतों को दिखाई मात्र रखकर पार्श्व कहलायेंगे। ये उन मुनियों को जो सिंह के समान पुरुषार्थ करने वाले होंगे नाना प्रकार से तंग करेंगे तथा उनकी अपकीर्ति करेंगे। जहां–जहां वे मुनि विहार करेंगे, ये पार्श्व उनके लिये वहां वहां शूल का काम करेंगे और कहेंगे कि ये आधुनिक युग से पिछड़े हुए हैं। और चालू जमाने को न समझ कर अपने आपको बदलते नहीं हैं। उन्हें वे परेशान करते रहेंगे और कई प्रकार के उपद्रव करेंगे। इस प्रकार यथार्थ और ढोंग के बीच में बराबर संघर्ष में चलते रहेंगे।

काक पक्षी और उसका अशुचि भक्षण

चौथा स्वप्न जो काक पक्षी का देखा, उसका फल इस प्रकार हैः–

कौआ अच्छा भोजन सामने रहते हुए भी अशुचि भक्षण की ओर चला गया–इसका अर्थ यह है कि इस पंचमकाल में मुनि स्वच्छंद अधिक होंगे। कमल के समान मुनि अच्छे सरोवर को प्राप्त करेंगे, किन्तु अच्छे गच्छ में अच्छे सन्तों के पास दीक्षित होकर भी वे भ्रष्ट स्वभावी बन कर अपनी क्षीण बुद्धि से स्वच्छता ग्रहण कर लेंगे। अपने व अच्छे गच्छ को छोड़कर वे वंचक मुनियों के साथ लग जायेंगे। इस तरह कई स्वच्छंद सम्प्रदाय बन जायेंगे तथा उन सम्प्रदायों में रहकर वे अच्छे मुनियों को भी अपनी ओर यह कर आकर्षित करेंगे कि वहां तो नियमों का कठोरता से पालन कराया जाता है किन्तु हमारे यहां नियमों का सुविधा से तथा प्रदर्शन मात्र के लिये पालन कराया जायेगा। उन्हें वे उस मुनि जीवन को भी आनन्द–भोग का साधन बतायेंगे। ऐसे कह कर भद्र स्वभाव मुनियों को वे मृग–तृष्णा का लोभ देकर अपनी ओर खींचेगे।

यह कौए का रुपक इन भ्रष्ट स्वाभावी मुनियों का है, जो मुनिधर्म रूपी श्रेष्ट भोजन को छोड़ कर संसार की विषय भोग रूपी अशुचि पर लिपटते रहेंगे और अन्य अच्छे मुनियों को भी पथ विचलित करते रहेंगे। पांचों इन्द्रियों के शौच सम्बन्धी लालसा में वे अपने साधु

जीवन को बर्बाद करते रहेंगे।

सिंह की गर्जना और कृमि पीड़ा

राजन पांचवे स्वप्न का अर्थ इस प्रकार हैः–

यह जिनधर्म वीरों का, सिंहों का धर्म है। इस धर्म की तात्विक दृष्टि, सिद्धान्तों के जगत में अलौकिक मानी गई है। स्याद्वाद रूपी गर्जना से मनघड़न्त सिद्धान्तों के हरिण झाड़ियों में घुस कर अपने को छिपा लेंगे स्वप्न में गर्जना करता हुआ सिंह देखा है, लेकिन उसके शरीर में कीड़ा लगा हुआ भी देखा है–इसका अर्थ है कि भरत क्षेत्र में जैन धर्म सिंह के समान रहेगा। परन्तु उसमें इन कीड़ों की तरह कुछ व्यक्ति होंगे जो नाम से तो अपने आप को जैन कहेंगे, लेकिन असल में वे धर्म को भीतर से खोखला बनाने की चेष्टाएं करते रहेंगे।

ये बातें चाहे परम्परा के रूप में कही जाती रही हो, किन्तु आज साकार रूप लेती हुई दिखाई दे रही है। आज देखते हैं कि सारा रुपक बड़े ही विचित्र रूप में सामने आ रहा है। जिनधर्म की आज जैसी महिमा होनी चाहिये और उसका जैसा एक्यपूर्ण गौरव होना चाहिये, वह आज नहीं है। स्थिति ऐसी है कि संवत्सरी का पर्व मनाने के लिये भी सारे जैनों में एकमत नहीं बन पा रहा है। बातें बहुतेरी होती हैं, किन्तु मूल काम कम होता है। कहते हैं कि संगठन का जमाना है। संगठन के लिये इन्कार कौन करता है ? किन्तु संगठन की एक स्वस्थ आधार शिला होनी चाहिये और उसका भी एक क्रमिक रूप होना चाहिये वह रूप इस तरह की पहले सार्वजनिक पर्वों के आयोजन में एकरूपता लाई जाय। इसमें मूल व्रतों का प्रश्न भी है। संगठन आवश्यक है किन्तु उसके साथ साधु जीवन की मर्यादा के निर्वाह का भी प्रश्न है। इसलिये महावीर द्वारा प्रतिपादित साधु जीवन की सुरक्षा भी संगठन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। साधु–जीवन की मर्यादाएं आत्मविकास के लिये है और आज इस तथ्य की ओर समुचित रीति से लोगों का ध्यान नहीं जा रहा है। यही कारण है कि इन स्वप्नों का ध्यान जब आज के युग में लिया जाता है तो महावीर भगवान द्वारा पंचम काल का भविष्य दर्शन यथावत रूप में दृष्टिगोचर होता है।

गन्दगी पर उगा हुआ कमल

राजन ! यह छठा स्वप्न जो इस रूप में दिखाई दिया है सरोवर के बजाय गन्दगी पर कमल उगा हुआ है, जिसका अर्थ है कि धर्म का कमल सामान्यतया उत्तम कुल में खिलता है, किन्तु इस पंचम काल में धर्म के सच्चे आराधक रूप से धार्मिक वृत्तियों का ह्यस होगा और नीच जाति के कहलाने वाले व्यक्तियों में धर्म के कमल खिलेंगे।

पंचम काल में पिछड़ी जातियों के लोगों में से कई धर्म पर आरुढ़ होकर अपनी आत्मा का उत्थान करेंगे तथा अधिकांशतः उत्तमकुल के लोग धर्म के धरातल से भ्रष्ट होकर अपने आचरण की गिरावट में कहीं से कहीं पहुँच जायेंगे। जाति की दृष्टि से वे भले ही ऊंचे कहलावें, किन्तु कर्म से वे वास्तव में शूद्रों एवं अशुचि मय लोगों में पहुँच जायेंगे। इस आधार पर यह ख्याल रखे कि देश–समाज के अन्दर उत्तम कुल में जन्में और बड़े कहलाने वाले लोगों में धर्म की निष्ठा कितनी है चरित्र–बल कैसा है और जीवन में पवित्रता का व्यवहार कहां तक है ? दूसरी ओर यह भी ध्यान में रखें कि पिछड़े कहलाने वाले लोग कितनी तेजी से ऊपर उठने का यत्न कर रहे हैं और किस प्रकार अपने विचार एवं व्यवहार को शुद्धता की ओर ले जा रहे हैं ? इसकी तुलना में प्रभु के वचनों की सत्यता सोलहों आना प्रकट हो रही है।

आप बड़े–बड़े नगरों में देखें की बड़ी–बड़ी शिक्षा संस्थाओं में पढ़ने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्गों की कई जातियों के छात्रों का जीवन पतन और विकार किस काली दिशा में बढ़ा जा रहा है ? सुनने में आता है कि उत्तम कुलों के कई बालक मासांहार तथा मद्यपान तक में प्रवृत्त हो जाते हैं। इन्हें देखकर यह प्रश्न सामने आ जाता है कि आज धर्म का कमल सरोवर में खिल रहा है यह उखरडे पर कमल विकसित हो रहा है ? इसका उत्तर प्रत्यक्ष है। मैं सुनता हूँ और सुन–सुनकर हैरान रह जाता हूँ कि ऊंचे घरों में जन्में उच्च कहलाने वाले लुकछिपकर ब्रांडी की बोतलें गटकाते हैं और चुपचाप किसी पोटली में दबा कर खरीदते हैं। ऐसा रुपक उत्तम कुल का बन रहा है। धर्म कर्म से वे दूर जा रहे हैं। नवकार मन्त्र तक याद नहीं

है। दूसरी तरफ बलाई जैसी पिछड़ी जाति के लोग मालव प्रदेश में दारु, मांस एवं कुसंगति का परित्याग करके "धर्मपाल" के रूप में दीक्षित होने का सत्प्रयास कर रहे हैं। वे हृदय से अनुभव कर रहे हैं कि मानवता से ओत–प्रोत यह धर्म उनके जीवन–विकास के लिये अनुकूल है।

मैं हिण्डौन से करोली जा रहा था तो मार्ग में एक गांव में ठहरने का प्रसंग आया। वहां ग्राम पंचायत के मकान के पास पहुँचा। वहां एक भाई बैठा था। मैंने उससे पूछा–भाई, यह पंचायत का भवन मालूम होता है। उसने कहा हां, महाराज, यह पंचायत भवन ही है। तब मैंने उससे वहां ठहरने की आज्ञा चाही तो उसने साफ इन्कार कर दिया। कारण पूछने पर उसने बताया कि वह हरिजन है, इसलिये उसके पास कैसे ठहरना हो सकेगा ? जब मैंने इसमें कोई आपत्ति नहीं बताई तो उसकी जिज्ञासु वृति जागृत हुई और उसने जैन धर्म की अछूतों के प्रति दृष्टि के बारे में बातें पूछी। मैंने कहा कि जैन धर्म के सिद्धान्त प्राणी मात्र के लिये हैं, वहां किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं है। उसने आश्चर्य से पूछा–क्या आप एक हरिजन को पैर छूने देंगे ? मैंने कहा–हरिजन होने के कारण हमारी तरफ से कोई रुकावट नहीं है। फिर तो उसने गांव के सारे हरिजनों को एकत्रित करके उपदेश सुनने का आग्रह किया। जब मैंने उनको नवकार मंत्र की व्याख्या समझाई और आत्मा से परमात्मा बनने की बात कही तो वे अत्यन्त ही प्रभावित हुए और कहने लगे कि ऐसे उदार सिद्धान्तों वाला धर्म हमें ग्राह्य है।

उसमें से एक हरिजन ने बताया कि दारु, मांस आदि का त्याग कर देने से उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी है। और वैद्यक करके आर्थोपार्जन कर रहा है उसने मुझे आस–पास के हरिजनों के 700 गांवों में साथ चलने को कहा कि हजारों हरिजन तुरन्त इस मानवीय धर्म को अपनाने के लिये तत्पर बन जायेंगे। उन्होंने एक शर्त जरूर रखी कि जब वे अपने जीवन को पवित्र बनाने की ओर आगे बढ़ेंगे, तब उस समाज वाले लोग उनके साथ समानता का व्यवहार करें। इसमें विवाह शादी की बात नहीं हैं, किन्तु प्रेममय व्यवहार की अपेक्षा है।

यह संवत 2006 की बात है। तब मैंने उनसे कहा कि मैं छोटा साधु हूँ। आपकी भावना को मैं अपने आचार्य श्री तक पहुँचा दूंगा। कहने को यह बात मैंने उनसे कह दी लेकिन मैं विचार करने लगा कि क्या आज जैन नाम घराने वाले लोग इन हरिजनों के साथ बैठने की मानवीय उदारता दिखा सकेंगे ? उनकी जरा सी भी घृणा क्या इनके उत्साह को टूक–टूक नहीं कर देगी। उस समय मैं हरिजनों के लिये कुछ नहीं कर पाया किन्तु जब आचार्य देव ने उत्तरदायित्व मेरे पर डाला और मैं मालवा प्रान्त में गया, तब बलाई जाति की विकारग्रस्तता को देख कर उन्हें मैंने धर्ममार्ग की ओर मोड़ा। आज आप देखें कि कितनी अधिक संख्या में इस जाति के वृद्धों, युवकों और बच्चों ने धर्म के पवित्र–संस्कारों को पकड़ कर अपने जीवन को क्रान्तिकारी रूप से परिवर्तित कर दिया है। गृहस्थ लोग अपनी स्थिति से उनके इन संस्कारों को पुष्ट करने के लिये तैयार हैं। यह इस पंचम काल का रुपक है। अब देखिये कि उखरड़े पर कमल उगने की भगवान की वाणी किस प्रकार पूर्णरूप से सत्य सिद्ध हो रही है।

बीज बोने की विचित्र प्रवृति

राजन ! पंचम काल में यह स्वप्न सत्य निकलेगा कि अधिकांश लोग ऊसर भूमि में बीज डालेंगे और उपजाऊ भूमि में बीज डालने वाले बहुत कम दिखाई देंगे। आप चिन्तन करेंगे तो आपके मस्तिष्क में यह बात आयेगी कि ऊसर भूमि कैसी होती है ? आज के मनुष्य के पास शक्ति है।, तन की, मन की, वचन की, धन की, सत्ता की, वैभव की और यदि इन शक्तियों का लोक कल्याण की दृष्टि से सदुपयोग किया जाय तो जीवन का कैसा सर्वांग विकास किया जा सकता है ? किन्तु अधिकांशतः ऐसे शक्ति सम्पन्न लोग अपनी इन शक्तियों का उपयोग कहाँ कर रहे हैं ? आज आप देखें सामाजिक कुरीतियों में कितने घरों का अपव्यय किया जाता है और किस प्रकार बाहरी आडम्बर एवं प्रदर्शन के लिये हजारों रुपये बर्बाद कर दिये जाते हैं ? एक ओर सैकड़ों विद्यार्थी धनाभाव में समुचित शिक्षा नहीं ले पाते–धार्मिक शिक्षा तक उन्हें नहीं मिलती, लेकिन दूसरी ओर इस

सारी स्थिति की उपेक्षा करके धनिक लोग विवाह शादियों में बिजली की रोशनी पर हजारों रुपया खर्च कर देते हैं। यह सब ऊसर भूमि में बीज डालना ही तो है।

लोग अपनी शक्तियों का अपव्यय करते हैं, दुरुपयोग करते हैं और इस प्रकार ऊसर भूमि में बीज डालते हैं जिससे पुण्य का एक अंकुर भी नहीं फूटता, आत्मा की निर्जरा नहीं होती। हकीकत में आज जहां उपजाऊ भूमि है, जहां बीज डालने वाले बिरले ही होते हैं। प्रतिभा–सम्पन्न एवं मेधावी छात्रों की छात्रवृति या ऐसे ही शुभ कार्यों में धन खर्च करने की बात हो तो कठिनाई से ही कोई आगे आता है और इन मदों में उदारता पूर्वक दान देता है। यह धर्म शिक्षा कर्तव्य का पौधा कुम्हला रहा है, किन्तु इस ओर लोगों का ध्यान कम है।

कोने में पड़ा उपेक्षित कुंभ कलश

राजन ! आठवे स्वप्न में कोने में पड़े उपेक्षित कुंभ कलश से यह अर्थ लिया जाना चाहिये कि सद्‌गुणों मुझ पंचमहाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति आदि व्रतों का हृदय से पालन करने वाले महात्मा सार्वजनिक जीवन में उपेक्षित से समझे जायेंगे। कुभ–कलश मंगल एवं कल्याण का प्रतीक होता है यथा सच्चे ज्ञानी एवं चरित्रशील सन्तों की उपमा कुंभ–कलश से दी जाती है। परन्तु इस पंचल काल का ऐसा दृश्य होगा कि कुंभ–कलश कोने में पड़े रहेंगे। वे भी संसार की इस कुटिल वृति की उपेक्षा करेंगे और अपने निर्मल संयम के साथ अकेले रहना चाहेगें। तब दूसरे तत्व उनके पल्ले अपकीर्ति डालना चाहेंगे कि वे सबके साथ मिल कर नहीं चलते हैं और अकेले रहना चाहते हैं। इस तरह दूसरे लोग उनके सद्‌गुणों को किस कदर मलिन बनाना चाहेंगे। ये लोग उनके प्रति तरह–तरह की आपत्तियां प्रस्तुत करेंगे और उनको तिरस्कृत करेंगे। जनता को भी वे बरगलायेंगे कि ऐसे अकेले चलने वाले साधुओं के पास क्यों जाया जाता है ? तुम 20 वीं शताब्दी में आगे बढ़ना चाहते हो या 15 वीं शताब्दी में पीछे की ओर जाना चाहते हो–ऐसी बातें सामान्यजन से कही जाती है। ये बातें शुद्ध क्रियाशील संतों के प्रति तिरस्कार भाव से कही जाती है। दूसरी ओर वे सन्त, जो आज की हवा में घुलमिल कर चल रहे है, अपने

चरित्र पालन पर शायद उतने सतर्क नहीं है और वे सस्ता यश लूटने की कई बातें इस रूप में रखते हैं। जिनका प्रतिपादन भगवान महावीर ने नहीं किया। जो संसार में दंभी और धूर्त होगा, वह सम्मान पा लेगा। ऐसे दृश्य पंचम काल में बनने वाले हैं।

भगवान महावीर के मुख से आठों स्वप्नों का ऐसा भविष्य दर्शन सुनकर हस्तिपाल महाराज आश्चर्य–चकित रह गये। पंचमकाल में ऐसे उथल–पुथल हो जायेगी–यह जान कर उन्हें चिन्ता होने लगी तब भगवान ने पंचम काल के एक उदाहरण का रुपक बताया कि तब कैसी दशा बनेगी।

एक नगर में एक निमित्तिया (ज्योतिषी) पहुँचा। उसने राजा को भविष्य बताया कि अब जो छः माह तक वर्षा होगी, उस पानी में मादकता रहेगी तथा जो भी उस पानी को पीयेगा, वह पागल बन जायेगा। तब उसने अपनी गणित का हिसाब समझाया और सुझाव दिया कि अगर उस पागलपन से बचना है तो आने वाली वर्षा से पहले के पानी को सुरक्षित रूप से संग्रहीत कर लेना चाहिये। तब राजा ने जितना संभव हो सका, पुराना पानी संचित करा लिया।

नगरवासियों को नये पानी से सावधानी भी दिला दी गई। कुछ नागरिकों ने इस ओर ध्यान दिया तो कुछ ने इसका मखौल उड़ाया। वैसे अधिकांश नागरिकों ने लापरवाही बरती। आखिर पानी बरसा और अधिक लोगों ने उसका उपयोग किया तो वे पागल होकर हो–हल्ला करने लगे। तब उन्होंने कहना शुरू किया कि जो उनके साथ हो–हल्ला नहीं करे, वे सब पागल है। जो उनके साथ नहीं मिलता, उसका वे तिरस्कार करते। फिर वे झुण्ड बना कर राजा के पास गये। राजा और दीवान चुप बैठे थे और उन्हें नियमितता की बात सही दिख रही थी। फिर भी वे बोले नहीं क्योंकि पागलों का बहुमत था। राजा और दीवान जब हो–हल्ले में उनके साथ नहीं हुए तो उन्होंने दोनों का पागल घोषित कर दिया और चिल्लाने लगे कि इनको सिंहासन से उतारो। खतरा समझ कर दोनों भी उनके साथ हो–हल्ले में शरीक हो गये। जब फिर नई वर्षा हुई, नया पानी आया तब सबके मस्तिष्क की दशा सुधरी। यह पंचम काल का रुपक है,

जहां मादकता वाले पानी का असर चल रहा है।

फिर भी इस समय में निराशा का कोई कारण नहीं है। नई वर्षा और नये पानी की तरह इस पंचम काल में नये विचारों का प्रवाह भी रहेगा और उसमें संसार की समता के दर्शन होंगे। समतामय स्थिति में संसार का नया विकास उभरेगा।

इस प्रकार रूप–चतुर्दशी के दिन मैंने परम्परा से कही जाने वाली बात बताई है कि निर्वाण के समय प्रभु महावीर ने जो–जो उपदेश दिये उन पर सभी गंभीर चिन्तन करें और चरित्र के पालन का अभ्यास बढ़ावें तो आत्म विकास का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। साधु जीवन कहां टिकेगा ? श्रावक की क्या स्थिति बनेगी–इन सभी के प्रति आप अपने जीवन में सुन्दर भावना रखें और उसके संदर्भ में प्राचीन एवं नवीन वस्तु–विषय का विचार करें। सर्वथा नवीनता में न बहें। यह सोचें कि पुराना पानी क्या है नया पानी क्या है ? और सर्वज्ञों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त कैसे हैं ? उद्देश्य इस आत्मा को परमात्मा के तुल्य निर्मल बनाने का है और इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर सिद्धान्तों और साधनों को अपनाने की वृति होनी चाहिये। यदि ऐसा ध्यान बराबर रहे तो पंचमकाल मैं भी आभा का हित साधन किया जा सकता है।

❖ ❖ ❖

एक मुहूर्त

एक पटेल पूर्व जन्म की पुण्यवानी लेकर आया था। जिसके आधार पर खूब आगे बढ़ गया था। अतः गर्व में आकर विचार करने लगा कि अहो ! मेरे भाई कितने पीछे रह गए हैं, पर मैं कितना वैभव सम्पन्न हूँ। अतः अब मुझे सत्संग से क्या लाभ ? पर उसकी पटेलन सभी कार्यों को छोड़कर सत्संग में पहले जाती। वहां से ज्ञान प्राप्त करके सोचती कि वह जो अपार वैभव, धन सम्पत्ति आदि मुझे मिली है। वह सब पूर्व जन्म में कृत शुभ कर्मों का ही फल है। अतः पूर्व

पुण्यवानी के साथ वर्तमान की शक्ति को, पुण्यवानी को भी बढ़ानी चाहिये। अतः वह अपने पति से कहती है कि सारा समय आप इन कार्यों में न बितायें सत्संग में भी चलें। धन और इन्द्रियों में इतने आसक्त न बनो। क्योंकि यह सब वैभव तो पूर्व कृत पुण्यवानी का परिणाम है। अतः इस पर अभिमान कैसा ? यह पुण्यवानी भी अमर नहीं है। जब पुण्यवानी का अंत आयेगा तो पुण्य भी पाप में परिवर्तित हो जायेगा। अतः आप गहराई से विचार करें एवं कुछ समय सत्संग में बिताएं पर वह पटेल सुनी अनसुनी कर देता। धर्म का नाम भी उसे पसन्द नहीं था। इस तरह करते–करते एक समय ऐसा आया कि पुण्यवानी खत्म होते ही सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी। एक समय की रोटी भी नसीब नहीं हुयी। सोचा अब क्या किया जाय। पटेलन ने कहा जाओ नौकरी करो। सुनकर वह बोला कि क्या में इतना बड़ा पटेल होकर नौकरी करूँ ? पर मरता क्या नहीं करता। उसे जाना पड़ा। जहां वह जा रहा था, वहीं एक सेठ की हवेली थी, जिसका रुपया पटेल के पास बाकी था। उसने देखा तो आवाज दी और कहा कि मेरा रुपया कब चुकाओगे तो उसने कहा कि अभी मेरे पास फूटी कोड़ी भी नहीं है तो आपका रुपया किस तरह लौटाऊंगा। जब मुझे सम्पत्ति प्राप्ति होगी तब मैं आपको बिना कहे ही आपका सारा धन ब्याज सहित लौटा दूंगा। पर उस सेठ ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया और कहा कि मैं क्या तुम्हारी स्थिति नहीं जानता हूँ कि तुम लाखों की सम्पति के मालिक हो, अतः लाओ। मेरा रुपया मुझे वापस लौटा दो। क्योंकि उसने सोचा कि इसकी नीयत खराब हो गई है, यह धन का गबन करना चाहता है। अतः सेठ ने उस पर पहरा लगवा दिया। जेल में बन्द करते हैं तो कम से कम रोटी तो खाने को दे देते हैं, पर वहां पटेल तीन दिन तक भूखा प्यासा बैठा रहा, पर किसी ने उसकी खोज खबर नहीं ली। तीन दिन बाद जब सेठ बाहर आया और उसने पटेल को बैठा देखा तो पूछा तू यूं ही बैठा है क्या ?

रुपया लाया है ? तब उसने कहा नहीं। तो सेठ ने कहा कि जाओ रुपया लेकर आओ। पटेल उठा। तीन दिन का भूखा–प्यासा था, चक्कर आने लगे किसी तरह उठकर घर आया और अपनी पत्नी

से कहने लगा कि मैं तीन दिन से भूखा प्यासा हूँ। अब मुझ से कोई काम नहीं होता। तुम अपने धान के कोठे को झाड़ बुहार कर साफ करो। पाव भर धान तो निकल ही जायेगा। उसे पीस कर रोटी बना लो एवं उस आटे की राबड़ी बनाकर उसमें पॉयजन मिला दो, उसे खा पीकर हम सो जायें, ताकि समस्त दुखों से छुटकारा मिल जायेगा। पटेलन ने उससे सारी बात पूछी और विचार करने लगी कि हमारे अशुभ कर्मों का उदय है। अतः आर्त रौद्र ध्यान की स्थिति में पड़कर कर्म बन्धं को न बढ़ाते हुए समभाव रखना है। तब पटेलन ने उसको समझाया कि पूर्व कृत पापों के उदय से तो यह दशा प्राप्त हुई है। फिर इस आत्मघात करने से कितने क्या कर्मों का बन्ध होगा। क्या आपने सेठ को अपनी वर्तमान स्थिति से अवगत नहीं कराया तो पटेल ने कहा नहीं। तब पटेलन ने उसे कहा कि आप पुनः सेठ के पास जाओ और बिना किसी संकोच के अपनी वर्तमान की सारी हकीकत सुना दो। वह सेठ इतना निर्दयी नहीं है, दयालु है, उससे कहना कि पहले का कर्जा तो है ही, आप मुझे सवा मन अनाज और दे देवें। यदि मेरी स्थिति पुनः चमक उठी तो मैं ब्याज सहित सारा धन और सवा मन अनाज चुका दूंगा और यदि नहीं चुका सका तो आप यही सोच लेना कि जहां इतना धन डूबा वहां सवा मन अनाज और सही। इससे आपके व्यापार में अथवा धनराशि में कुछ भी फर्क नजर नहीं आयेगा। पत्नी की बात सुनकर वह गया। सेठ दयालु थे। उसकी आकृति देखकर उन्हें विचार आया। पूछा कि रुपये लेकर आये हो ? उसने कहा नहीं, तो पूछा तुम्हारा चेहरा उदास क्यों है ? क्या हुआ ? तब उसने अपनी सारी हकीकत सुनाई। सेठ साहब ने सुनकर उसके कन्धे पर हाथ रखा और कहा चिन्ता की कोई बात नहीं, तुम मेरे भाई हो, इस तरह उसे अन्दर ले गये और सब कुछ विस्तार से पूछा–उसने कहा कि मैं आपकी हवेली पर आया। तीन दिन तक भूखा–प्यासा बैठा रहा, फिर निराश होकर घर लौटा एवं जहर पीकर मरने की सोचने लगा। पर मेरी पत्नी ने समझा बुझाकर सवा मन अनाज लाने के लिये पुनः आपके पास भेजा है, अतः आप इच्छा पूर्ण कीजिये। जब सेठ को यह ज्ञात हुआ कि उसने तीन दिन

से भोजन नहीं किया है तो पहरेदार को बुलाकर उसे डांटते हुए कहा कि यह क्या किया तुमने ? इसे भोजन भी नहीं करवाया ? जाओ इसे बढ़िया भोजन खिलाकर इसकी क्षुधा शान्त करो। पर पटेल ने कहा कि नहीं, मैं अकेला भोजन नहीं करूंगा ? हमारे घर में यह रीति है कि जो भी मिलता है उसे हम सभी पारिवारिकजन आपस में मिल करके बांटकर खाते हैं। कोई भी व्यक्ति अकेले नहीं खाता। मेरी पत्नी भी तीन दिन की भूखी है, मैं खाऊंगा तो उसके साथ ही और मरुंगा तो उसके साथ ही। उनकी ऐसी भावना देखकर सेठ बड़ा खुश हुआ और बोला कि तुम दो मन अनाज ले जाओ। सेठ की बात सुनकर उसके मन में ताकत आ गयी। यह है मन की प्रतिक्रिया। दान की बड़ी सारी पोटली लेकर घर की ओर चला पटेलन ने दूर से आते देखा तो सामने गयी और कहा इतना अनाज ? वास्तव में वह सेठ बड़ा दयालु है। इसने हम पर कितनी बड़ी अनुकम्पा की है, विपत्ति के इस भयानक समय में इसने हमारी कितनी बड़ी रक्षा की है। ऐसे समय में अन्य लोग तो हंसी उड़ाते हैं, उपेक्षा करते हैं, पर इनकी महानता देखों कि इन्होंने हमको गले लगाया है। ऐसी अवस्था में जो हमारे प्राण बचाने के लिये अनाज दे उसका उपकार हमें जीवन भर नहीं भूलना चाहिये। पटेल भी विचार में पड़ गया। उसने रात भर जगकर विचार किया मैं इस सेठ का कर्जा लेकर नहीं मरुंगा, चाहे जैसे भी हो मुझे यह कर्जा उतारना है। सोचा मेहनत मजदूरी से कर्जा उतार नहीं पाऊंगा। इसके लिये तो चोरी ही करनी पड़ेगी। ऐसा सोचकर चोरी करने की भावना से वह आधी रात को घर से निकला रास्ते में उसे चोर मिले। पूछा कौन ? तो कहा चोर ? उसने कहा तुम कौन हो ? कहा चोर ? चोर–चोर मौसेरे भाई। सभी मिल गये। 29 के तीस हो गये। बड़ी हवेली में चोरी करेंगे जो पहले घुसेगा उसे दुगुना हिस्सा मिलेगा। उसने सोचा मैं चोर नहीं चोर का जाया नहीं। सिर्फ कर्जा उतारने के लिये चोर बना हूँ, यदि दुगुना हिस्सा मिल जाय तो एक बार में ही सारा कर्जा चुक जायेगा। अतः उसने कहा कि मैं पहले हवेली में प्रवेश करूंगा। वे सब हवेली के पिछले भाग में पहुंचे। पहले पटेल उस हवेली के पिछवाड़े में खड्डा करके उसमें

घुसकर धीरे से हवेली के भीतर आ गया पर भीतर जाते ही देखा तो विचार करने लगा कि यह तो मेरे सेठ की हवेली है, जो कि मेरे उपकारी है इस घर का दाना पानी अभी मेरे पेट में है। अतः चाहे मेरे प्राण जाय तो जाये पर इस सेठ की सम्पत्ति नहीं जाने दूंगा। यह तो मेरे सेठ की हवेली हैं। सभी चोर हंसने लगे कि चोरी करने निकला है और कहता है कि यह मेरा सेठ है। उन्होंने कहा कि चल हटो, हमें तो चोरी करने दो। बड़े सेठ की हवेली है, आज खूब माल हाथ लगेगा। पर उस पटेल ने हल्ला कर दिया, जिससे वे 29 चोर तो भाग गये, अकेला पटेल ही पकड़ा गया। पहरेदार उसे पकड़कर ले गये। प्रातः जब उसे सेठ के सामने उपस्थित किया गया तो उसे देखते ही सेठ बोला–अरे रामा पटेल तुम यहां ? तो उसने कहा हाँ सेठ साहब, आपका कर्जा चुकाने के लिये मैंने यह मार्ग अपनाया था। सोचा था कि यह पाप करके मैं उसका सच्चे हृदय से प्रायश्चित कर लूंगा। अतः 29 चोरों के साथ में भी चोरी करने निकल पड़ा। पर जब देखा कि यह आपकी हवेली है, तो आपके उपकार के बोझ से दबे हुए मैंने चोरी करने से साफ इन्कार कर दिया और हल्ला कर दिया। जिससे वे 29 चोर तो भाग गये और मैं अकेला पकड़ा गया। यह सारी बात सुनकर सेठ विचार करने लगा कि यदि वे 29 चोर जिस स्वभाव के थे, उस स्वभाव का यह भी होता तो क्या मेरा धन सुरक्षित रहता ? इस पटेल ने सच्ची वफादारी निभायी है। अतः उस सेठ ने उसे स्वयं अपने हाथों से बन्धन मुक्त करके कर्जे से मुक्त कर दिया। यह तो एक रुपक है, आपको जो शरीर वैभवादि सम्पत्ति मिली है, वह पुण्यवानी के योग से मिली है।

"बहु पुण्य केरा पुंज थी शुभ देह मानव नो मल्यो।।"

बंधुओ ! जरा विचार कीजिये कि दिन रात के 24 घंटे हैं और 24 घंटे के कितने मुहूर्त्त 301 यदि उसमें से एक मुहूर्त्त ध्यान साधना में लगाये तो आपकी संपूर्ण सम्पत्ति की सुरक्षा हो सकती है। यह जीवन की आध्यात्मिक सम्पत्ति को बढ़ाने के लिये घड़ी भर की ध्यान साधना में अन्तर ज्योति को प्राप्त कर आगे बढ़ने का प्रसंग है। जिस प्रकार एक पटेल ने चोरी का विरोध किया तो सेठ की सारी सम्पत्ति

सुरक्षित रह गई। इसी प्रकार 29 मुहूर्त्त व्यर्थ जा रहे हैं, पर यदि एक भी मुहूर्त्त आपने सार्थक कर लिया तो वह मुहूर्त्त पटेल की तरह आत्मारूपी सम्पत्ति की रक्षा कर सकेगा। अतः विचार करें कि अधिक से अधिक समय सार्थक बनाते हुए जीवन को सही रूप से जीने की कला सीखें। यदि एक मुहूर्त्त भी समीक्षण ध्यान साधना में सही रूप में लगाया गया तो वह आपके सारे जीवन को सुख की सुरभि से सुरभित कर देगा।

❖ ❖ ❖

कवि आनन्दघन जी

एक बार का प्रसंग है कि कवि आनन्दघन जी के पास एक सन्यासी आया और बोला कि देखो महात्मन ! आप आध्यात्मिक साधना कर रहे हो पर हमारे गुरुजी ने इतनी साधना की कि जिसके प्रभाव से उन्होंने एक ऐसा रसायन प्राप्त किया है जिसकी एक बूंद से पत्थर का सोना बनाकर परोपकार में लगा सकते हो। उस सन्यासी ने कहा, मेरे गुरुजी ने इस रासायनिक तत्व की शीशी आपको देने के लिये ही मुझे भेजा है, अतः आप इस शीशी को ले लीजिये।

यह सन्यासी आनन्दघन जी को शीशी देता है तो आनन्दघनजी ने कहा यह स्वर्ण पैदा करने की रासायनिक शीशी तुम मुझे देना चाहते हो पर मुझे तो आध्यात्मिक रस की शीशी चाहिये। तुम केवल जड़ तत्वों की सिद्धि में ही लगे हुए हो चारित्र की साधना ज्ञान की साधना के साथ ही सध सकती है। तुमने अभी तक आध्यात्मिक जीवन को नहीं समझा। यह भौतिक तत्व कोई महत्वपूर्ण नहीं है यदि इसकी एक बूंद से लाखों मन सोना बन सकता है तो एक टोपे से क्या कोई आध्यात्मिक जीवन का सोना बन सकेगा ? तो वह बोला कि ऐसा तो नहीं होगा। आनन्दघन जी ने कहा कि आध्यात्मिक जीवन की साधना को न तुमने समझा है और न ही तुम्हारे गुरुजी ने ही। आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धता सच्ची साधना से ही हो

सकेगी। वह इन चन्द चांदी के टुकड़ों से नहीं हो सकती। आनन्दघन जी के इतना समझाने पर भी वह बार–बार कहने लगा और नहीं माना तो आनन्दघन जी ने उसके हाथ से शीशी ले ली। और जो रस लाखों मन सोना बनाने वाला था, उसे अपने हाथ में लेकर पत्थर पर फैंक दिया।

यह देखकर सन्यासी को बहुत क्रोध आया और वह आग बबूला हो, आनन्दघन जी से कहने लगा–आपने इस लाखों मन सोना बनाने वाले रासायनिक तत्व को मिट्टी में मिला दिया। तो आनन्दघनजी ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा कि लाखों मन सोना महत्वपूर्ण है या आध्यात्मिक जीवन की साधना अधिक महत्वपूर्ण है। वह कहने लगा कि क्या आपकी ऐसी कोई आध्यात्मिक साधना की शक्ति है कि जिससे आप भी सोना बना सको। महात्मा ने कहा कि जिसकी आध्यात्मिक साधना सच्ची है तो उस साधना की निश्चित रूप से अचिन्त्य शक्ति होती है। मैं चमत्कार दिखाना नहीं चाहता पर फिर भी कुछ नमूना तुम्हें बताता हूं बन्धुओ ! कमल की सुवास सारी दुनिया को सुरभित कर सकती है। आनन्दघन जी ने एक पत्थर की शिला पर लघु शंका कर दी जिससे सारी शिला सोने की बन गयी। आत्मिक शक्ति का चमत्कार देखकर वह नतमस्तक हो गया और उनके चरणों में गिर गया। आध्यात्मिक साधना में वास्तव में अनन्त शक्ति भरी पड़ी है पर इस साधना को छोड़कर जो यह परिग्रह सारे पापों की जड़ हैं, जो इसमें पड़ता है वह अपने जीवन को पतन की राह पर धकेल देता है। आध्यत्मिक जीवन की साधना तो इन सब ब्राह्य परिग्रहों से ऊपर उठकर ही हो सकती है। सन्यासी समझ गया और आनन्दघनजी की आध्यात्मिक साधना के प्रति नतमस्तक हो गया।

❖ ❖ ❖

चेलना का संकेत

मगध सम्राट श्रेणिक की पत्नी चेलना महारानी थी। श्रेणिक, पहले जैनमुनि पर आस्था नहीं रखते थे, जबकि महारानी चेलना

वीतराग देव के सिद्धान्तों को जानती थी और उसे उस पर अगाध विश्वास था। महारानी चेलना श्राविका व्रत में रहती हुई श्रेणिक सम्राट को धर्म समझाने का प्रयत्न करती थी। एक बार वह श्रेणिक के पास राजभवन के झरोखे बैठी थी। उस समय राजमार्ग पर बढ़ते हुए जैन मुनि को देखा सिर्फ बाहरी रूप से। श्रेणिक की दृष्टि मुनि के जीवन पर नहीं थी। श्रेणिक भावना रखते थे कि इनका प्रभाव कैसे कम हो, मैं देखूं तो सही, महारानी मुझे हमेशा कहती है। इनकी साधना कैसी उत्कृष्ट है। संयोग से एक मुनि भिक्षार्थ राजभवन के सामने आ रहे थे। दूर से महारानी चेलना ने साधु को देखा और देखते ही दूर से ही, वहीं बैठी–बैठी स्वयं हाथ से संकेत देकर तीन अँगुली ऊँची की। देखिये वह कितनी आध्यात्मिक जीवन की योग साधना को जानने वाली थी। मुनि वहां खड़े हो गये और अँगुली नीची करके दो अँगुली ऊँची कर भद्रिक भाव से चले गये। थोड़ी देर बाद दूसरे मुनि आये तो उनके सामने भी महारानी चेलना ने तीन अँगुली ऊँची की तो मुनिराज ने भी एक अँगुली नीची करके दो अँगुलियां ऊँची करके चले गये। इसी तरह तीसरे मुनि भी आये वे भी उक्त मुनियों को भांति दो अँगुली ऊँची करके आगे चले गये। संकेत करते हुए किसी ने किसी को कुछ कहा नहीं। श्रेणिक विचार करने लगे कि मेरी महारानी धर्मात्मा कहलाती है, फिर साधुओं के सामने तीन अँगुलिया ऊँची कर इशारे कैसे कर रही है। और मुनिराज क्रमशः दो अँगुली ऊँची कर एक अँगुली नीचे करके चले गये। इसका रहस्य क्या है ? मेरी ये महारानी भगवान के सिद्धान्तों की गहराई में जाने वाली है, पर इस तरह इशारा क्यों करती है ? श्रेणिक महारानी के पास आकर कहने लगे कि तुम इस तरह इशारा क्यों करती हो ? श्रेणिक महारानी के पास आकर कहने लगे कि तुम धर्म की जानकार हो पर जो अँगुली तुमने उस मुनिराज को दिखाई, उनका रहस्य क्या है ? उस रहस्य को जानने के लिये मैं उत्सुक हूँ। तुम वीतराग धर्म पर श्रद्धा रखने वाली होकर भी मुनियों को नमस्कार न करके इशारा क्यों करती हो ? महारानी चेलना ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया कि राजन ! इनका रहस्य मैं नहीं बताऊंगी, उन साधुओं से ही पूछो और उनसे ही जो

आपको उत्तर मिले, उसे स्वयं के जीवन में जमाओ और फिर मुझ से पूछो। श्रेणिक के मन में उथल–पुथल मचने लगी। वह मुनिराजों के पास गया और महात्माओं से पूछा कि महात्मन ! आपने महारानी के तीन अँगुली दिखाने पर दो अँगुली क्यों उठाई ? महात्मा के जीवन में वीतराग देव के सिद्धान्तों का रस रोम–रोम में रम रहा था। कहने लगे कि आपकी महारानी वीतराग योगों का सरस रीति से ज्ञान रखती हैं और वीतराग योग पद्धति को जीवन में स्थान रखकर उसने संकेत दिया कि तुम साधु बने हो। जो पांच महाव्रतों के प्राण रूप पांच समिति तीन गुप्ति है, तो तुम्हारे जीवन में तीन गुप्ति का अनुभव कितना हुआ ? यह बात पूछने के लिये तीन अँगुली ऊँची की और मुझे वीतराग देव द्वारा दर्शित तीन गुप्ति के विषय में पूछा। तब सम्राट ने कहा कि आपने दो अँगुली बताकर क्या संकेत किया ? मुनि ने कहा–मैंने दो अँगुली ऊपर उठाई। इसका तात्पर्य मेरी दो गुप्ति तो सध गयी पर एक नहीं सधी, इसलिये दो अँगुली ऊँची की। देखिये साधु जीवन की सरलता। साधु जीवन सरल होना चाहिये। जो श्रजु भूत होता है, उसके जीवन में ही धर्म आता है। उस साधु ने सम्राट श्रेणिक से कहा–राजन ! मन गुप्ति और वचन गुप्ति को तो मैंने रोका पर काया गुप्ति वश में नहीं रही। श्रेणिक ने कहा– काया से क्या किया ? तो महात्मा ने कहा और तो कुछ नहीं। मैं वीतराग की बतलाई हुई ध्यान साधना में बैठकर शुद्ध ज्योति को प्राप्त कर रहा था, उस समय नजदीक में आग की गर्मी मालूम हुई तो मेरा शरीर खिसक गया तो काया की गुप्ति वश में नहीं रह सकी। मैंने सोचा–आग कभी मेरे निकट आ जायेगी तो इस शरीर का क्या होगा ? मुझे काया पर मोह था इसलिये मैंने सरलता से कह दिया तो महारानी ने कहा कि तुम्हारी तीन गुप्ति सधी हो तो ही प्रवेश करना। इसी कारण मैं ने कहा रानीजी को दो अँगुली बता कर राजभवन में प्रवेश किये बिना ही लौट गया। यह सुनकर सम्राट आश्चर्य करने लगे कि इतनी सरलता से, अपनी इस गलती को महारानी के समक्ष स्वीकार ली।

सम्राट दूसरे संत के पास गये पूछने पर दूसरे मुनिराज ने कहा–काया व वचन की गुप्ति तो सधी पर मन की गुप्ति नहीं सधी।

यह सुनकर सम्राट ने पूछा क्यों ? तो मुनि कहने लगे कि एक दिन एक बहिन मुझे वंदन करने आयी तो दृष्टि के माध्यम से मेरा मन उसके पांवों पर गया और विचार आया कि ऐसे ही पावों वाली मेरी धर्म–पत्नी थी। मेरा मन उस बहिन के पांवों को देखकर विचलित हो गया। इसलिये में दो अँगुली बताकर चला गया। सम्राट श्रेणिक ने तीसरे मुनि को भी इसका कारण पूछा को मुनिराज ने उत्तर दिया–राजन मेरी मन की शक्ति मजबूत हैं और काया की भी, पर मैं वचन पर नियन्त्रण नहीं रख सका, क्योंकि ज्ञान, दर्शन और चारित्र की वृद्धि हो वही पर साधु का वचन का प्रयोग करना चाहिये, परन्तु एक दिन में गौचरी जा रहा था तो वहां एक सम्राट एक मैदान के किनारे खड़ा असमंजस में पड़ा हुवा था। उसके सामने बड़ी समस्या थी और वहीं पास में कुछ बच्चे भी हार जीत का खेल खेल रहे थे। एक पार्टी दो तीन बार हार गई, हारने वाली पार्टी उदास होकर खड़ी थी। तो उस समय मेरे मुंह से स्वाभाविक रूप से निकल पड़ा कि उदास क्यों होते हो, उत्साह के साथ काम करोगे तो सफलता मिल सकती है। यह कह कर मैं तो चला गया पर वहां जो सम्राट खड़ा था। वह थोड़े दिनों बाद मेरे पास आया और चरणों में गिरकर कहने लगा कि–आपकी कृपा से मैं विजयी हो गया हूँ। मैंने पूछा कि आप कब आये थे मेरे पास ? सब सम्राट ने मैदान में खेलते हुए बच्चों की हार–जीत देखकर मुनि द्वारा निकले हुए वचनों को दोहराते हुए कहा कि उस समय वे वचन मैंने सुने थे और उन्हीं वचनों के प्रमाणानुसार उत्साहित होकर मैं युद्ध करने गया और पूर्ण विजय पाई। मुनि ने सोचा कि मैंने इस वाणी का प्रयोग व्यर्थ में किया। मैंने तो सम्राट को कुछ नहीं कहा खेलने वाले बच्चों को कहा था, पर सम्राट द्वारा उन वचनों को पकड़ने से व्यर्थ की हिंसा का प्रसंग बना। इस तरह मेरे वचनों की स्खलना हुई। इसी कारण मैं महारानीजी को दो अँगुली बता कर चला गया। मुनिराजों द्वारा संकेतों का स्पष्टीकरण सुन कर सम्राट श्रेणिक जैन मुनियों से प्रभावित हुआ।

बन्धुओ ! आप भी मन में एक ऐसी स्फूरणा पैदा करें कि वीतराग देव के सिद्धान्तों के अनुसार जो ग्रहण करने की बातें हैं,

उन्हें ग्रहण करें और जो छोड़ने योग्य हो उन्हें छोड़ कर साधना में सफल बनें।

❖ ❖ ❖

अनर्थ का मूल : धन

एक बार उद्दालक ऋषि के पास एक शिष्य शिखिध्वज आ गया। उसने साधना पथ पर आगे बढ़ने के लिये ऋषि से निवेदन किया तो उन्होंने एक साल उसे मंत्र दीक्षा देकर सादगी, ब्रह्मचर्य आदि के साथ रहने के लिये कहा। शिखिध्वज साल भर तक वैसे ही रहा। उसके बाद दूसरी बार उन्होंने उस शिष्य को अग्नि दीक्षा देने से पहले उसकी योग्यता को देखने के लिये अपने मंत्र के माध्यम से पारस–मणि उपस्थित की और जो पास बैठे अथार्थी लोग थे, उन्हें लोहा लाने के लिये कहा। जब वे लेकर आये तो उन्होंने सारे लोहे को सोना बना डाला। यह देखकर वह जिज्ञासु शिखिध्वज सोचने लगा कि गुरु तो बहुत चमत्कारी है। इनसे और कुछ नहीं, अगर पारस मणि ही प्राप्त हो जाये तो मैं बहुत कुछ जनता का उपकार कर सकता हूँ। उसने उद्दालक ऋषि से निवेदन किया–यह मणि मुझे दे दीजिये तब गुरु ने सोचा अभी तक एक वर्ष साधना करने पर इसकी दृष्टि बाहरी तत्वों में ही उलझी है। अतः इसे आन्तरिक साधना कराने के लिये पहले इसकी योग्यता देखना आवश्यक है।

उद्दालक ऋषि उसकी परीक्षा करने के लिये उसे अपने साथ में ले कर एक गांव में पहुँचे। उस घर के भाई को कहा–हम एक रात रहना चाहते हैं। मेरे पास पारस मणि है। मैं तुम्हारा लोहा सोना बना सकता हूँ। पर एक शर्त है कि तुम अपनी जवान कन्या को एक रात के लिये हमारे पास रख दो तो हम सोना बना सकते हैं। एक बार तो वह हिचकिचाया, लेकिन फिर वह तैयार हो गया। उसने अपनी जवान कन्या उद्दालक ऋषि के पास भेज दी। उद्दालक ऋषि ने उस कन्या को कहा कि तुम्हारे पिता तो सम्पत्ति में उलझ गये पर तुम्हारे

में तो सत्व होना चाहिये। तुम यहां क्यों आई, लड़की शर्मा गई। ऋषि ने उसे शुभार्शिवाद देकर वहां से विदा कर दिया। समीपस्थ शिष्य ने देखा–अरे, पारस मणि के साथ यह जवान कन्या भी मिलने वाली थी। लेकिन ऋषि ने जब उसे रवाना कर दिया तो वह उदास हो गया। ऋषि वहां से आगे बढ़े और एक सेठ के यहाँ पहुँचे, उसने कहा कि तुम्हारे यहां एक रात रहना चाहते हैं, तुम एक घन्टे में तुम्हारे पास जितना लोहा है उसे ले आओ मैं उसका सोना बना दूंगा पर बाहर से मत लाना। सेठ ने हां तो भर दी पर नौकरों को आस–पास दौड़ा कर बाहर से नीति–अनीति से लोहा इकठ्ठा करवा लिया गुरुजी ने सेठ को समझाया कि तुमने अन्याय किया है, यह उपयुक्त नहीं है।

ऋषि वहां से आगे बढ़कर एक सम्राट के पास पहुँचे और उसे कहा मैं तुम्हारा सारा लोहा सोना बना सकता हूँ। पर उसके लिये एक बालक की बलि देनी होगी। सम्राट आनन फानन में एक बच्चे को पकड़ कर उसकी बलि देने को तैयार हो गया। तब ऋषि ने समझाया अरे तुम प्रजापालक हो, सोने के पीछे अबोध बच्चे की बलि देने के लिये तैयार हो गये। क्या यही प्रजावत्सलता है ? सम्राट वह होता है जो निर्दोष बच्चे के लिये अपना भंडार खाली कर दे और उसे बचाये। सम्राट को समझा कर ऋषि आगे बढ़ गये और एक ब्राह्मण के पास पहुँचे, उसे कहा कि तुम्हारा सारा लोहा सोना बना सकता हूँ पर तुम्हारे जितने शास्त्र हैं मेरे नाम पर करने होंगे। वह ब्राह्मण तैयार हो गया। देखिये बंधुओं ! स्वर्ण मय पात्रेण सत्यस्य पिहितं मुखम" सोने के पात्र से सत्य का मुँह ढका जा सकता है। ये समझाते हुए ऋषि अपने आश्रम में पहुँचे एवं अपने शिष्य को समझाया देखा एक पारसमणी के पीछे कितना अनर्थ हो गया। यह मणि कभी भी शाश्वत शान्ति देने वाली नहीं है। शान्ति के लिये अन्तरंग जीवन में प्रवेश करना होगा। भौतिकता से हटकर आध्यात्मिक साधना में प्रवेश करना होगा। जबकि आज तो उल्टा ही लग रहा है। शिष्य सब कुछ समझ गया और निष्कांचन त्यागी बन गया।

❖ ❖ ❖

तेले का तप

एक प्रतिष्ठित परिवार के सेठ के इकलौते पुत्र की शादी कर दी गई। संयोग से पुत्र का स्वर्गवास हो गया। घर में दो सदस्य ही रह गये–स्वसुर और बहू। सेठ ने सोचा मेरे अन्दर की शुद्धि तप के द्वारा ही हो सकती है। और तप का सेवन करूंगा तो बहू भी करेगी, ताकि इसका जीवन भी अच्छा रह सकेगा। सेठ ने आभयन्तर तप की स्थिति से पुत्रवधू से कहा कि ये बढ़िया भोजन, बढ़िया दृश्य मनोरम गायन मुझे जमता नहीं है, अतः मुझे तो अन्तरयामी की तरफ जाना है इसलिए मेरे लिए सीधा–सादा भोजन तैयार करना और तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो। बहू ने विचार किया कि ऐसा कैसा हो सकता है, उसने भी सादा भोजन, सादी वेशभूषा में रहना शुरू कर दिया। सादा जीवन जीने लगी। "इच्छानिरोध तपः" इच्छाओं का निरोध संशोधन करना भी तप है कुछ दिवस अनन्तर बहू के पीहर से आमन्त्रण आया कि तुम्हें बहुत वर्ष हो गये हैं, यहाँ आये को, भाई का विवाह तुम आ जावो माता–पिता का ममत्व बड़ा अजीब सा होता है पर उस बहू में एक विशेषता थी कि ससुर को बिना पूछे कोई कार्य नहीं करती। पत्र ले जाकर ससुर को दिया। ससुर ने देखा और सोचा कि पिता ने इसे जन्म दिया पर जीवन को सर्जना नहीं किया। कर्मों की विडम्बना विचित्र है, पुत्र चला गया। उसे वैधव्य जीवन में आना पड़ा पर इसे विवाह में जाने से कैसे रोका जावे। पांच इंद्रियों की विषम विकार की स्थिति ऐसे प्रसंगों में अधिक उपस्थित होती है, पनपती है, सेठ ने कहा तुम वहां पर जाकर क्या करोगी। उसने कहा मैं तो जाऊंगी सेठ ने छुट्टी दे दी। वह पीहर पहुँची। सीधी–सादी पोशाक को देख कर माँ कहने लगी कि अरे तेरा शरीर कितना दुर्बल हो गया। कितनी कुश हो गई, कैसा कंजूस है तेरा ससुर, जो पहनने के अच्छे वस्त्र और खाने को अच्छा भोजन भी नहीं देता। उसके सभी

सीधे–सादे वस्त्र उतरवा कर उसे अच्छे नये वस्त्र–भूषणों से सुसज्जित कर दिया। जो कुछ उसकी अन्तरयामी की ओर मुड़ने की भावना थी, उस पर पर्दा पड़ गया, 15 दिनों में तो कुछ का कुछ हो गया। जब वह ससुराल आई तो अच्छा भोजन तैयार करके सेठ के सामने रखा तो सेठ ने कहा कि मेरा जवान लड़का चला गया, उसके अभाव में मैं तो अच्छा भोजन नहीं करूंगा। तुम कर लो।

उसके पीहर रह जाने से सारी वृत्तियों में तामसिक स्थिति आ गई थी वह सोचने लगी कि मुझे तो पुनः विवाह करना है। उसने अपनी भावना ससुर के सामने रखी। देखिये सेठ बड़े मनोवैज्ञानिक थे। कहा कि मैं तो वृद्ध हो गया मेरे घर की, परिवार की, प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला कोई हो, ऐसा विचार मैं कई दिनों से कर रहा था, पर तुम्हारी तरफ से कुछ भी संकेत नहीं मिला। तुम चिन्ता मत करो, आराम से खावो पियो, मैं तुम्हारे योग्य वर तलाश करता हूँ। दूसरे दिन सेठ दिन भर साधना में लग गये। सेठ ने भोजन नहीं किया तो अहो। मेरे ससुर कितने दयालु हैं मेरे वर की खोज में खाना भी नहीं खाया। 24 घंटे तक सेठ ने भोजन नहीं किया तो उसने भी नहीं किया। तब दूसरे दिन पारणे की सामग्री तैयार की और सुसर से पारणे के लिये कहा तो सेठ ने कहा, नहीं, मैंने तो प्रण किया जब तक उसकी पूर्ति नहीं होगी। तब तक मैं भोजन नहीं करूंगा। आज मैंने एक लिस्ट उतारी है, योग्य लड़कों की, खोज करने पर पता चला कि कोई इन्द्रिय लोलुपी तो कोई चरित्रहीन है। मेरे कुल के योग्य एक भी लड़का नहीं मिला। अतः मैं भोजन नहीं करूंगा।

बेला हो गई। इधर वह भी सोचती ही कि वर मिलेगा तब ही मिलेगा मैं अभी तो इन गहनों के भार से हल्की हो जाऊं और सुन्दर वस्त्र भी उतार दूं। क्योंकि तपस्या में ये भी भार भूत लगते हैं। जब वर आयेगा। तब इन सब को पुनः धारण कर लूंगी। तीसरे दिन पारणे की तैयारी कर ससुर से कहने लगी अब तो आप पारणा करिये, तब सेठ ने कहा बेटी अभी कमी रह गयी है, आधा काम तो हो गया है, थोड़ी खोज और करनी है खोज जारी है। तुम तो पारणा कर लो। कार्य पूर्ण होने पर मैं भी कर लूंगा। तब वह सोचने लगी कि पिताजी

मेरे लिये 3 दिन से भूखे हैं तो मैं कैसे भोजन करूँ। तीसरी रात होने पर विचारों में शुद्धता आई। बुद्धि में निर्मलता आई। क्या मैं पशु तुल्य जीवन बिता रही हूँ। हाय मेरा जीवन पशु तुल्य बन गया। मेरे पति देव चले गये पर मुझे एक निष्ठ होकर रहना चाहिये। अब मुझे अपने भगवान को ही अपना पति मान कर चलना चाहिये। मैं इन विषयों में इतनी आसक्त बन गई कि मैंने अपने पिता तुल्य ससुर के सामने पुनः विवाह की बात रख दी। चौथे दिन सादा भोजन बना कर ससुर को पारणे के लिये कहती है तो ससुर कहते हैं कि अभी थोड़ा काम बाकी है उसे पूरा होने दो। तब वह कहती है कि आप जिस वर की तलाश कर रहे थे वह मुझे मिल गया। मैं पीहर में गई वहां वासना में भटक गई, मुझे इन्द्रियों का विषय देखने को नहीं मिलता तो ऐसी भावना नहीं आती, अब मुझे किसी पुरुष की आवश्यकता नहीं है। अब तो मुझे मेरी इच्छित वस्तु मिल गई है।

❖ ❖ ❖

लकड़हारा साधु बना

सुधर्मा स्वामी राजगृही नगरी में जब पधारे, तब एक लकड़हारा जो कि अतीव निर्धन स्थिति में था वह सुधर्मा स्वामी के पास आकर कहने लगा कि मुझे संसार की लालसाओं से मुक्ति का मार्ग बताओ तब सुधर्मा स्वामी ने मुक्ति का मार्ग बताया तो उस लकड़हारे ने संयम ग्रहण कर लिया। एक बार का प्रसंग है। जब महाराज श्रेणिक अभयकुमार के साथ भ्रमण हेतु बाहर निकले हुए थे। तब वही लकड़हारा मुनिवेश में उस रास्ते से निकला तो अभयकुमार उन मुनि को वंदन करने हेतु वाहन से नीचे उतरे और उन्हें विधिवत वंदन किया। अभयकुमार की यह चर्या देखकर अन्य सब कर्मचारी मन ही मन हंसने लगे कि वह लकड़हारा जिसको कि अभयकुमार वंदन कर रहा है, उसने क्या त्याग किया ? अभयकुमार, जो कि ओत्पति की बुद्धि का मालिक थे, वे अपने बुद्धि बल से उन लोगों के भावों के

पहचान कर उनका भ्रम निकालने हेतु एक योजना बनाई। नगर भर में ऐलान करवाया कि तीन करोड़ सौनया तीन शर्त पर मिल सकती है। जिसको चाहिये वह लेने के लिये राजसभा में उपस्थित हो जाय। बहुत बड़ी मात्रा में भीड़ इकठ्ठी हो गई। राजसभा प्रजाजनों से खचाखच भर गई, तब अभयकुमार ने अपनी शर्त जाहिर की :–

1. पहली शर्त है कि जो पुरुष अपने जीवन में पूर्ण ब्रह्मव्रत की आराधना करे, तीन करण तीन योग से तो उसे एक करोड़ सौनया मिलेगा।
2. दूसरी शर्त है कि जो तीन करण तीन योग से अहिंसा व्रत की अराधना करे। किसी भी सूक्ष्म, बादर, त्रस, स्थावर जीवों की हिंसा नहीं करे, उसे भी एक करोड़ सौनया मिलेगा।
3. तीसरी शर्त है कि जो अग्निकाय के आरम्भ का सम्पूर्णतया आजीवन तीन करण तीन योग से त्याग करे। उसे भी एक करोड़ सौनया मिलेगा।

इन तीनों शर्तों के साथ तीन करोड़ सौनया मिलने की घोषणा कर दी गई जिसे श्रवण करके सब आहिस्ते–आहिस्ते खिसकने लगे। तब अभयकुमार उन कर्मचारियों से कहने लगे कि देखों मैंने जब उस लकड़हारे को जो कि अब मुनि बन चुके हैं, पांच महाव्रत जिन्होंने अंगीकार कर लिया है–अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह रूप उनको वंदना की तो आप लोग हंस पड़े। आपकी यह विचारधारा थी कि यह लकड़हारा जो कल तो दीन, हीन अवस्था को प्राप्त था और आज साधु बन गया तो अभयकुमार भी इनको वंदना कर रहे हैं। चरणों का स्पर्श कर रहे हैं। आखिर इसने क्या त्याग किया है ? पर अब आप समझ चुके होंगे, उसने जो त्याग किया है, वह त्याग स्वीकार करने का सामर्थ्य क्या हर किसी में हो सकता है ?

क्योंकि मेरे बताये इन तीन व्रतों में से कोई एक व्रत को भी स्वीकारने के लिये तैयार नहीं है, जबकि प्रत्येक के पीछे एक–एक करोड़ सौनया देने को तेयार हूँ। विचार करिये वह लकड़हारा जिसने ऐसा एक व्रत नहीं अपितु पंच महाव्रत अंगीकार कर सांसारिक बन्धनों से निवृत होकर मुनि रूप का पालन कर रहा है। अतः उसका त्याग तीन करोड़ सौनयों से भी कई गुणाधिक हैं।

बन्धुओ ! त्याग प्रत्याख्यान का महत्व पहचानो। त्यागी महापुरुषों का जीवन कितना दिव्य होता है। वे मानवों के तो क्या सुरासुर के इन्द्रों के भी वंदनीय बन जाते हैं। ब्राह्य बंधनों से ही नहीं वरन आभ्यन्तर जबरदस्त कर्मों के बंधन से भी मुक्त होते जाते हैं। अमित आत्मीय वैभव को समुपलब्ध कर लेते हैं।

❖ ❖ ❖

विनय का आदर्श

प्रभु महावीर का इस क्रान्तिकारी परम्परा के 76 में पाट पर विराजमान आचार्य श्री उदयसागर जी महाराज साहब के जीवन से संबंधित घटना है। उन्हें जब यह ज्ञान हुआ कि रामपुरा में केशरीमल जी गांग नाम के श्रावक शास्त्रों के विशिष्ट ज्ञाता हैं तो वे जब रामपुरा पधारे तो सोचा कि उनसे चर्चा की जावे, ताकि यदि उनके पास और भी नया ज्ञान हो तो प्राप्त हो सके।

आचार्य प्रवर जिज्ञासु बने और उस श्रावक को अपने यहां न बुला कर स्वयं चलकर उनके घर पहुँचे। जब केशरीमलजी को ज्ञात हुआ कि आचार्य प्रवर ज्ञान–पाने की जिज्ञासु भावना से मेरे पास आ रहे हैं तो उनके मन में आचार्य प्रवर की जिज्ञासु भावना के प्रति अत्यन्त श्रद्धा जागृत हुई। किन्तु इसी के साथ ही एक विचार मन में आया कि इनमें जिज्ञासा के साथ ज्ञान पाने के लिये विनयाचार की स्थिति भी है या नहीं। आचार्य प्रवर ने जब केशरीमलजी के घर में प्रवेश किया तो आश्चर्य की वह श्रावक उठ कर सामने भी नहीं आता है, किन्तु विनयाचार की गहराईयों में उतरे आचार्य प्रवर कुछ भी अन्यथा न विचारते हुए उन श्रावक के पास पहुँचकर फरमाते हैं कि मुझे आपसे शास्त्र चर्चा कर ज्ञान प्राप्त करना है। तब केशरीमल ने कहा कि अभी अवसर नहीं है। एक महान आचार्य प्रवर तो उसके घर पहुँचे और फिर श्रावक यह कह दे कि अभी अवसर नहीं है तो आज के युग में कैसी विचित्र स्थिति बन सकती है। यह विचार करिये।

परन्तु आचार्य प्रवर तो उसी जिज्ञासु भावना के साथ लौट गये। दूसरे दिन पुनः उनके घर जाकर यही कहा, तब भी उन श्रावक जी का यही जवाब मिला। फिर भी आचार्य–प्रवर ने कुछ भी अन्यथा नहीं विचार किया और तीसरे दिन भी उसी जिज्ञासु भावना के साथ उनके घर पर पहुँचे तब केशरीमलजी यह अच्छी तरह समझ गये कि आचार्य प्रवर सम्यक ज्ञान और क्रिया की ठोस भूमि पर खड़े हैं। इनके जीवन में संयमी मर्यादाएं साकार हो उठी है। बस फिर क्या था, ज्यों ही उन्होंने आचार्य प्रवर को दूर से आते देखा, त्यों ही उठकर सामने गये। विनम्रता से वन्दन नमस्कार किया और अश्रु–धारपूर्वक अपने अविनय के लिये बार–बार क्षमा याचना करने लगे।

वास्तव में आचार्य प्रवर, प्रभु महावीर को संयमी सिद्धान्तों के प्रायोगिक आदर्श थे। उनका जीवन प्रभु महावीर के सिद्धान्तों को प्रत्यक्ष करने वाली प्रयोगशाला था। वे अपने जीवन–प्रयोग से महाप्रभु के सिद्धान्तों का प्रायोगिक रूप उपस्थित करते थे। केशरीमलजी गांग ने निवेदन किया कहां आप और कहां मैं ? आपके विशाल ज्ञान के आगे मेरा ज्ञान क्या महत्व रखता है ? फिर भी आप जो चाहें चर्चा करें। मेरे पास जो कुछ है, गुरुओं के प्रसाद से है, उसे अवश्य देने को मैं तैयार हूँ। चर्चा करने से आपको मेरे से कुछ मिले या नहीं मिले, पर मुझे आपसे बहुत कुछ मिलेगा।

बन्धुओ ! सम्यक ज्ञान पाने के लिये किस प्रकार का विनय होना चाहिये जरा विचार करिये। ऐसे आदर्शों से कुछ जीवन में शिक्षा ग्रहण करने का प्रसंग है। आचार्य प्रवर की विनम्रता का प्रभाव उनके शिष्यों में भी पर्याप्त मात्रा में था। उसके भी कई प्रसंग है। पर एक प्रसंग सामने रख देता हूँ।

आचार्य प्रवर का एक शिष्य अत्यन्त विनयशील था। उसकी नम्रता को लेकर गुण गरिमा बहुत दूर–दूर तक फैली हुई थी। इसी विनम्रता के आदर्श को देखने के लिये एक बार सरकारी–आदमी आचार्य प्रवर के पास पहुँचा। और पूछने लगा कि भगवन्। मैंने सुना है कि आपके पास एक अत्यन्त विनयशील मुनिराज है। मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ। आचार्य प्रवर ने उसका कुछ भी उत्तर नहीं

देते हुये एक साधु को आवाज लगाई। वे ऊपर बैठे हुए स्वाध्याय कर रहे थे। उन्होंने गुरु देव की आवाज सुनी तो "तहत्ति" के साथ वाणी को स्वीकार करते हुए विनम्रता के साथ गुरुदेव के चरणों में आकर खड़े हुए। गुरुदेव ने उन्हें कुछ भी नहीं कहते हुए वापस भेज दिया। वे उनके ऊपर पहुँचते ही पुनः आवाज लगाई। वे पुनः उसी विनम्रता के साथ उपस्थित हुए। फिर उन्हें कुछ कहे बिना वापस भेज दिया। यह क्रम लगातार 27 बार तक चलता रहा। वे मुनिराज बिना किसी तर्क के अत्यन्त श्रद्धा के साथ गुरुदेव क्या कर रहे है ? काम है जो बतला क्यों नहीं देते है ? बार–बार बुलाते क्यों है ? ऐसा कुछ भी न सोच कर वह अत्यन्त श्रद्धा के साथ आते रहे। आखिर वह अफसर समझ गया कि विनयशील मुनिराज कौन है ? उसने गुरुदेव से निवेदन किया–भगवन् मैंने इनके दर्शन कर लिये हैं, आप उन्हें रोकिये बार–बार कष्ट न दें।

सज्जनों ! देखिये विनम्रता का आदर्श क्या है। ऐसी विनम्रता है आज की भव्यात्माओं में ? मैं सबकी बात नहीं करता पर अधिकांश साधक साधिकाओं के जीवन पर विचार करता हूँ तो विनय की बहुत कमी महसूस होती है। गुरुदेव यदि शिष्य को बुला रहे हैं तो पहले तो विनय की बहुत कमी महसूस होती है। गुरुदेव यदि शिष्य को बुला रहे हैं तो पहले तो वह जल्दी से आयेगा ही नहीं और यदि आ भी गया और उसे कुछ भी बतलाये बिना कारण जाने बिना ही कहा गया तो वह तुरन्त प्रतिक्रिया कर बैठेगा कि अरे, फिर बुलाया किस लिये ? बिना कारण इधर–उधर घुमाने का क्या तात्पर्य ? विनम्रता के अभाव में कईयों की साधना सफल नहीं हो पाती। महाप्रभु ने विनय को धर्म का मूल बतलाया है। "विणओ धम्मस्स मूलो" जब तक विनय की स्थिति जीवन में नहीं आएगी तब तक सम्यक ज्ञान का विकास नहीं हो सकता।

❖ ❖ ❖

घटती बढ़ती क्या है ?

मोतीलाल नाम के एक सेठ थे, उनके पास बहुत ज्यादा सम्पत्ति थी, वह अत्यधिक पाप–अनुष्ठान से पूर्वजों द्वारा एकत्रित की हुई थी। एक बार रात्रि के समय मोतीलाल सेठ अपनी सम्पत्ति के विषय में चिन्तन करने लगे और उन्हें यह महसूस हुआ कि मेरे पास इतनी अधिक सम्पत्ति है पर मेरी कोई प्रसिद्धि नहीं हुई है। रात भर यही चिन्तन चलता रहा। प्रातःकाल अपने घर के सभी सदस्यों को बुला कर कहने लगे कि रात्रि में मुझे एक विचार आया, यदि आप लोग अनुमोदन करो तो मैं कहूँ। स्वीकृत मिलने पर उन्होंने कहा कि देखो, अपने घर में इतनी सम्पत्ति पर अभी तक राजदरबार में मेरा कुछ भी मान सम्मान नहीं है। अतः अपने राजा को जीमने के लिये बुला कर सारी सम्पत्ति का दिग्दर्शन करावें अपना अतुल वैभव देख कर वे अपनी प्रशंसा करेंगे। इससे प्रजा भी अपना सम्मान करेगी। सभी ने एक स्वर में सेठ की बात का अनुमोदन किया छोटी पुत्रवधू जो गम्भीर मुद्रा में सभी के बीच बैठी हुई थी। सारी बात श्रवण करने पर भी कुछ नहीं बोली, अपने विनय एवं शिष्टाचार का निर्वाह कर रही थी। पर ज्यों ही सेठ की दृष्टि उस पर गिरी तो सहज ही पूछ लिया कि बहू, तुम चुप क्यों हो, तुमने मेरी बात के अनुमोदन में कुछ भी नहीं कहा, ऐसा क्यों, तब वह बड़ी विनम्रता पूर्वक बोली "पिताजी मैं क्या कहूँ, जो अपनी सम्पत्ति है, वह बाहर दिखाने को नहीं है। यदि आप इसका प्रदर्शन महाराज के समक्ष करेंगे तो निश्चित ही आप संकट को बुलावा देंगे। मुझे आपका यह प्रस्ताव ठीक नहीं लगा। इसलिये मैं कुछ भी नहीं बोली। परन्तु सभी ने छोटी समझ कर उसकी बात हँसी में उड़ा दी। और बहुमत के अनुसार कार्य को क्रियान्वित किया गया। पुत्रों को गहनों से लाद दिया गया। माणक मोती से थाल भर कर बाजार के बीच से होते हुए अपनी सम्पत्ति का प्रदर्शन का मुख्य

लक्ष्य रखते हुए राज–दरबार में पहुँचे। वह भेंट राजा को अर्पित की और राजा को अपने घर भोजन के लिये पधारने का निमन्त्रण दिया, निमन्त्रण को स्वीकार करके ठीक समय पर राज्य के बड़े–बड़े अधिकारियों के साथ महाराजा राजसी ठाठ बाठ के साथ सेठ के भवन पर पहुँचे, भवन की भव्य सजावट देख कर राजा आश्चर्य में पड़ गये। क्या मेरे राज्य में भी इतने धनवान सेठ हैं ? भोजन करने पहुँचे तो तरह तरह के पकवान देख कर राजा की मन–स्थिति कुछ और ही हो गई। सेठ के अतुल वैभव ने राजा के अन्दर में लोभ वृति जागृत कर दी। उसकी दृढ़ भावना बन गई कि किसी न किसी प्रकार सेठ की सारी सम्पत्ति हड़पनी है। जैसे–तैसे भोजन का कार्य निपटा कर उसका सत्कार सम्मान ग्रहण करके अपने अन्दर की स्थिति गोपनीय रखते हुए राजा पुनः राजमहलों में लौट गये। राजा को अन्यमनस्क देख कर मंत्री ने कारण पूछा तब राजा ने सारी हकीकत कह सुनाई और पूछा कि किस तरह से इस सेठ की सारी सम्पत्ति अपने अधिकार में की जाये। मंत्री ने कुछ समय विचार करने के बाद कहा कि "आप कोई ऐसा प्रश्न उसके सामने रखें कि उसका समाधान वह न कर सके। और इस प्रसंग पर उसकी सारी सम्पत्ति अपने अधिकार में ले ली जावे।" भोजन का निमन्त्रण लेकर मंत्री सेठ के घर गया और भोजन के लिये राजमहल में पधारने का आग्रह किया। सेठ बड़ा ही प्रसन्न हुआ और सभी पारिवारिक जनों से कहने लगा कि "देखा तुम लोगों ने ? यह सब अपनी सम्पत्ति का प्रभाव है। पर छोटी पुत्रवधू तो उस समय भी गंभीरता को धारण किये बैठी रही। जबकि मन ही मन में यह सारी बातें समझ रही थी इधर सेठ मन ही मन अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ राजमहल में पहुँचा। राजा ने बहुत ही आदर सत्कार किया एवं अपने बराबर आसन पर बैठा कर भोजन करवाया सम्राट सभी कार्य ऊपरी मन से कर रहा था, पर भीतर ही भीतर तो वह अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिये उत्सुक हो रहा था। भोजन से निवृत होने के बाद सेठ से सम्राट ने कहा सेठ–साहब। आप तो बहुत बुद्धिमान है तभी तो अपार वैभव के स्वामी है। मेरे मन में जो प्रश्न उभर रहे हैं कोई भी उनका उत्तर नहीं

दे सकता। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप उसका उत्तर दे देंगे। पर उसके साथ एक शर्त है यदि आप उत्तर नहीं दे सके तो आपकी सारी सम्पत्ति राज्याधिकार में ले ली जाएगी और यदि उत्तर दे देंगे तो उपहार देकर बहुत मान–सम्मान दिया जाएगा। सेठ अपनी प्रसन्नता सुन कर फूला नहीं समा रहा था। अति उत्सुकता से पूछा–कौनसा प्रश्न है। आप जल्दी पूछिये मैं सुनने के लिए अतीव आतुर हूँ। तब महाराजा दोनों प्रश्न सेठ के सामने कहने लगे कि बताओ–

1. निरन्तर समाप्त होने वाली वस्तु कौनसी है ?
2. निरन्तर विस्तार प्राप्त करने वाली वस्तु कौनसी है ?

इन दोनों प्रश्नों को सुन कर सेठ साहब ठंडे पड़ गये। विचार करने लगे कि इन प्रश्नों का जवाब तो मुझे आता ही नहीं, मैंने अपनी जिन्दगी में कभी ऐसे विचित्र प्रश्न सुने ही नहीं। अहो मुझे छोटी बहू की बात उस समय महत्वपूर्ण नहीं लगी। पर अब समझ में आ गई है। उसने मुझे उचित सलाह दी थी पर अब पश्चाताप करने का समय नहीं है। अभी भाई अवसर है, छोटी बहू बहुत बुद्धिमान है संभव है वह इन प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हो जाये। अतः उसी से क्यों न पूछ लूं। ऐसा विचार कर सेठ ने महाराज से कहा कि राजन आज बहुत गरिष्ठ भोजन खाने से मस्तिष्क भारी बना हुआ है। अतः आप कृपा करके एक दिन की छुट्टी दे दीजिये। छुट्टी लेकर सेठ साहब घर पहुँचे। घर के सभी सदस्यों के सामने सारी हकीकत रखते हुए छोटी बहू से अपने कृत्य–कार्य के लिये माफी मांगकर कहा कि– "बहू तुम तो बहुत बुद्धिशाली हो, तुम्हारी बात हमने नहीं मानी इसलिये आज यह भारी संकट सामने उपस्थित हुआ है। राजा के दोनों प्रश्नों का क्या कुछ समाधान है ? यह कार्य मेरी बुद्धि से परे है, मुझे तुम्हारे ऊपर पूर्ण विश्वास है। किन्तु तुम प्रश्नों का उत्तर देकर अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा करो। मेरी लाज रखो।

वह छोटी बहू जो सारी बात गंभीरता पूर्वक सुन रही थी। वह सेठ साहब को सांत्वना देती हुई कहने लगी कि पिताजी आप चिन्ता मत करिये। राजा को कहला दीजिये कि आपके इन सामान्य प्रश्न के उत्तर तो मेरी सबसे छोटी बहू भी दे सकती है। और आप मुझे

राज–दरबार में भेज दीजिये मैं अपनी मर्यादा में रहती हुई महाराज के इन दोनों प्रश्नों का उत्तर दे दूंगी। सेठ यह सुन कर अतीव प्रसन्न हुआ तथा महाराज को कहलवा दिया कि आपके इन सामान्य प्रश्नों का उत्तर तो मेरी छोटी पुत्र वधू भी दे सकती है। दूसरी दिन वह पुत्रवधू सादी–सीधी पोशाक में राज्यदरबार में एक घास का भारा व एक दूध का कटोरा लेकर पहुँची। राजा ने पूछा आप यहां कैसे ? तब उसने कहा कि "सेठजी के प्रश्नों का उत्तर देने आई हूँ। तब राजा ने कहा आप इन दोनों वस्तुओं के साथ में क्यों लाई हो तब पुत्रवधू ने उत्तर दिया कि घास का भारा तो दिवान को भेंट करने के लिये लाई हूँ यह सुनते ही दीवानजी की त्यौरियां चढ़ गई। वह पुत्रवधू आगे कुछ कहे उससे पूर्व ही दीवान ने अपना भारी तिरस्कार समझ, उससे प्रश्न किया कि तुमने मुझे क्या समझा जो मेरे को भेंट देने के लिये ये घास का भारा लाई हो। तब पुत्र–वधू ने निर्भयता पूर्वक उत्तर दिया कि दीवानजी, मैं सेठ साहब की तरह असत्य का पोषण करने वाली नहीं हूँ। जो जैसा होता है उसे वैसी ही वस्तु भेंट देनी पड़ती है। आपकी बुद्धि पशु जैसी है। हालांकि दीवान की बुद्धि तो प्रजा हितेषी और व्यापक होनी चाहिये पर आप अपनी प्रजा के साथ ऐसा अन्याय करते हो, सम्राट को भी गलत मार्ग पर आगे बढ़ा रहे हो। आपकी बुद्धि में पशुता नहीं तो क्या है ? और जो पशु होता है, उसे खाने के लिये घास चाहिये। अतः मैं आपके योग्य ही यह उपहार लाई हूँ। यह सुनकर मंत्री और भी उत्तेजित हो गया। पर राजा ने उसे शान्त करते हुए उस पुत्र वधू से पूछा कि यह दूध का प्याला तुम किस लिये लाई हो, तब पुत्र वधू ने कहा कि दूध का प्याला आपके लिये लाई हूँ। कारण–यहां के राजा अर्थात आप नन्हे बालक के समान हैं जैसा दीवान कहता है वैसा ही कार्य करते हैं। आप अपनी बुद्धि से काम नहीं करते हैं। यह श्रवण कर राजा स्वयं बहुत शर्मिंदा हुआ और गलती महसूस करने लगा और उसकी बुद्धिमता से अत्यधिक प्रभावित होता हुआ अपने प्रश्नों का उत्तर जानने के लिये उत्सुक बना। जब उसे दोनों प्रश्नों का उत्तर देने के लिये कहा तो वह निर्मल बुद्धि सम्पन्न पुत्रवधू कहती है कि राजन !

1. आयुष्य एक ऐसा तत्व है जो निरन्तर अर्थात क्षण–क्षण में कुछ भी विलम्ब किए बिना समाप्त हो रहा है।

2. आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर निरन्तर विस्तार को प्राप्त करने वाली वस्तु तृष्णा है।

यह श्रवण कर राजा, दीवान और सारी राज परिषद धन्य–धन्य का गुंजार करती हुई, पुत्रवधू को शतशः धन्यवाद समर्पित करती हुई, उसे बड़े मान–सम्मान पूर्वक विदा करती है। दीवान, महाराज से कहते हैं कि महाराज सेठ साहब की पुत्र वधू की कमाल की बुद्धि है। अपनी सारी योजना निरर्थक गई है। अब आप सेठ साहब की सम्पत्ति नहीं ले सकते हैं। बन्धुओ ! यह तो एक कथानक है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब भौतिक सम्पत्ति को प्रकट करने से इतनी विपत्ति आती है तो अध्यात्मिक गुणों का बखान करने से कैसे क्या होगा। यह विचार करने की बात है। अतः बाहरी प्रदर्शन का लक्ष्य न रखते हुए अधिकाधिक आत्मानुष्ठान की पवित्र चर्याओं में अपने आपको संलग्न बना कर अपने भीतर में रहते हुए अनन्त ज्ञान को उजागर करने में कटिबद्ध हो जायें। अपने जीवन की सारी प्रवृतियाँ विनय एवं विवेक बुद्धि के साथ धर्ममय बनावें। आपका जीवन अवश्य मंगलमय बनेगा।

❖ ❖ ❖

नाई की पेटी सन्यासी का कमण्डलू

एक नाई बड़े शहर में बाल साफ करने पहुँचा। उसके पास विद्या थी, जिसके प्रभाव से उसके साथ वह बक्सा आकाश में चलता था, जहां हजामत करनी होती, वहां पर बैठ जाता और इशारा करने पर बक्सा नीचे आ जाता, जिसे देख कर लोग आश्चर्य चकित हो जाते, इस तरह उसकी आमदनी बढ़ती गई। एक सन्यासी जिसने घर बार त्याग रखा था भगवे वस्त्र धारण कर लिये थे, यह सोचने लगा कि यह विद्या मुझे मिल जावे तो मैं निहाल हो जाऊं। जब वह नाई

अपना कार्य निपटा कर मंत्र विद्या से पेटी को आकाश में रवाना कर और स्वयं घर की ओर जा रहा था तब पीछे–पीछ सन्यासी भी चलने लगा। जब नाई के साथ वह सन्यासी उसके घर पर पहुँचा और उसके पांवों पर गिर कर प्रार्थना करने लगा कि अपने यह विद्या कहां से सीखी ? मुझे भी सिखाने की कृपा करें, आपका यह उपकार मैं कभी नहीं भूलूंगा, तब नाई ने कहा कि मैंने तो यह विद्या एक सिद्धी प्राप्त महात्मा की कृपा से प्राप्त की है। यदि तुम्हारी भी सीखने की इच्छा हो तो तुमको भी सिखा सकता हूँ। इस प्रकार सरलता पूर्वक नाई ने सन्यासी को भी विद्या सिखा दी। विद्या सीखकर यह सोचने लगा कि जहा यह नाई रहता है। वहां मैं विद्या का प्रयोग करूंगा। तो मेरी प्रसिद्धि नही होगी। इस तरह सोच कर वह दूर किसी शहर में चला गया और वहां मन्त्र के प्रयोग से इसी तरह अपने कमंडलू, मोर, पीछी, आदि उपकरणों को आकाश में रवाना कर देता। लोग यह चमत्कार देखते तो आश्चर्य में पड़ जाते, प्रशंसा करते कि यह कोई सिद्ध पुरुष है। राजा ने सुना तो मंत्री से कहा कि उस सिद्ध पुरुष के दर्शन करना चाहता हूँ। पर मंत्री ने कहा कि यह चमत्कार नहीं है, कोई एकनिष्ठा से इसने सिद्धी की है। यह कोई साधु नहीं है। साधु होता तो अकेला नहीं घूमता। पर जब राजा ने आग्रह किया और इसके दर्शन करने के लिये तरस बताई तो राजा से कहा आप न पधारे मैं भोजन के लिये उन्हें बुला लेता हूँ। ऐसा कह कर मंत्री ने उस योगी को भोजन के लिये आमन्त्रित किया आमंत्रण पाकर वह प्रसन्न हुआ, खुशी–खुशी राजमहल में आया। राजा ने भोजन का निवेदन किया और वह भोजन करने लगा। सम्मान से भोजन करने के बाद राजा ने योगी को सम्मान के साथ बैठा कर बात–चीत की और पूछा कि यह विद्या आपने कहां से सीखी ? यह सुनकर वह सन्यासी विचार करने लगा कि मेरी आज इतनी प्रसिद्धी है, लोग जगह–जगह मेरे चमत्कार की प्रशंसा कर रहे हैं, जब ये पुरुष मुझे सिद्ध पुरुष कह रहे हैं, अगर मैं इनको बता दूं कि मैंने यह विद्या एक नाई से प्राप्त की है तो ये लोग मेरी हंसी उड़ायेंगे और मेरी पोजीशन डाउन हो जाएगी तथा समाज में मेरी कुछ भी इज्जत नहीं रहेगी।

ऐसा विचार सोच कर उसने कहा कि किसी महात्मा के पास मैंने लम्बे समय तक कठिन साधना की, उस लम्बे समय की कठिन साधना के फलस्वरूप ही मुझे यह विद्या प्राप्त हुई है। उस सन्यासी का यह कहना था कि आकाश में स्थित वे सारे उपकरण आकर धड़ाम से उसके सामने जमीन पर गिर गए। यह देख कर वह हतप्रभ रह गया, सोचने लगा कि अभी तक ऐसा नहीं हुआ फिर आज यह इस तरह यकायक क्यों हुआ ? गहराई से सोचने पर विचार आया कि अंहो। मैंने ज्ञान दाता गुरु के नाम का गोपन किया, इसी कारण मेरी स्थिति आज यह बन गई है। उसे मन–ही मन बहुत पश्चाताप हुआ। राजा ने जब उससे पूछा कि कहिये आपकी साधना कहां गई, तब उसने पश्चाताप पूर्ण स्वर में कहा कि, जिसने मुझे विद्या सिखाई उसका नाम गोपन करके मैंने योगी का नाम लिया, इसी कारण मेरी सारी विद्या नष्ट हो गई। इसी तरह जो आध्यत्मिक शिक्षा देने वाले हैं उनका नाम छिपाऐं नहीं। विचार करने की बात है कि अनल्प उपकार करके वीतराग वाणी का ज्ञान देते हैं, अतः उनके उपकार को विस्मृत करते हुए उनका नाम नहीं छिपाना चाहिये।

आज की स्थिति क्या बन रही है, नवयुवक लोग ऊंची–ऊंची शिक्षा प्राप्त करके बड़े–बड़े ऑफिसर बन जाते हैं, पर जब उनसे अपने पिताजी का नाम पूछा जाता है तो वे अपने पिता का नाम बताने में भी शर्म महसूस करते हैं, पर वह स्थिति उन्हें किसकी बदौलत मिली। इस तरह उपकारी के उपकार का गोपन करने से वे उच्च स्थिति में नहीं पहुँच सकते हैं।

❖ ❖ ❖

वह जा रहा है

एक सम्राट विचार करता है कि मैं राजा हूँ। अतः मुझे प्रजा की सुख–दुख की बात सुननी है। रात्रि का समय परिवार के सभ्य स्वयं के सुख–दुखों की बातें ज्यादा करते हैं। अतः वेश परिवर्तन कर

सम्राट रात को नगर का अवलोकन करता हुआ परिभ्रमण कर रहा था एक बंगले के पास गया, बंगले की खिड़कियां खुली थी और कमरे में कुछ प्रकाश था। स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि कमरे में चार कन्याएँ बैठी आपस में वार्तालाप कर रही थीं। सम्राट सुनने लगा कि ये क्या बातें कर रही है, सुख–दुख की बातें कर रही हैं या अन्य ? एकान्त में होने से सम्राट को शंका हुई कि इनके मन में चरित्रहीनता की बात भी पैदा हो सकती है। राजा दिवाल से सट कर खड़ा हो गया और ध्यान से उनकी बात सुनने लगा।

एक बाला ने दूसरी बाला से कहा कि वह जा रहा है। दूसरी ने इशारा करते हुए कहा वह नहीं है। तीसरी ने उसकी बात का सर्मथन करते हुए कहा–वह होता तो जाता ही क्यों ? तब चौथी ने उपेक्षा करते हुए कहा जाए तो जाने दो अपना काम तो हो गया। इस विचित्र संवाद को सुनकर सम्राट स्वयं की बुद्धि से विचार करने लगा कि मैं तो चरित्र की प्रतिष्ठा के लिये प्रयास कर रहा हूँ। पर आज तो ये "दिये तले अंधेरा वाली बात हो गई"। ये चारों चरित्र भ्रष्टा है। ये पर पुरुष की आकांक्षा करने वाली है। वह आगे बढ़ा और घूमता हुआ अपने स्थान पर पहुँच गया। रात से राजा को नींद भी नहीं आई और उसके मन में यह विचार हुआ कि मेरे राज्य में यह चरित्रहीनता, मै। नहीं चाहता हूँ। सवेरे ही चारों को राजसभा में बुला कर दंड दूंगा। सवेरे होते ही बंगला नम्बर देकर कर्मचारी को वहां भेजा और कन्याओं को बुलवाया। कन्याएँ समझ गई कि लगता है रात्रि की बात राजा ने सुन ली। उसे सुन कर ही हमें बुलाया गया है। अतः वे तैयार हो गई और जाने लगी। तो सर्वत्र उनके चरित्रहीनता की बात हो रही थी। पर वे किसी की परवाह किये बिना वहां पहुँची और निर्भयता पूर्वक राजा को हाथ जोड़े बिना ही एक दूसरी को कहने लगी। पहली ने कहा यह तो सही है। दूसरी ने कहा वह तो है पर इनके वे नहीं है। तीसरी ने कहा वे होते इनको यहां आने ही कौन देता। चौथी ने कहा–यदि असावधानी से यहां आ भी जाते तो डण्डा मार कर सभा से बाहर निकाल देते।

उनकी इन बातों को सुन कर सम्राट विचार करने लगा कि

रात की बात से तो मैं उलझन में पड़ा हुआ था ही और यह बात और खड़ी हो गई। मैंने रात की बात सुन कर इनकी चरित्रहीनता की बात फैला दी, पर यह अच्छा नहीं किया। ये लड़कियां कुलीन लगती है। इस प्रकार विचारों के महासागर में गोते लगाते हुए राजा ने रात्रि की और अभी की बात पूछी तो उन कन्याओं ने कहा–राजन। आपकी मन की गति सीमित है या नहीं ? कहीं हमारी बातों को सुनकर आप गलत काम कर दो तो ? क्योंकि आप भले ही सम्राट हो, पर मन की स्थिति से आप सम्राट नहीं हो। सम्राट ने कहा–रात को तुम क्या बोली थी। वह कहने लगी कि आपकी मन की क्रिया अच्छी होती तो आप यही सोचते और मन कि क्रिया और प्रतिक्रिया का अध्ययन कर लेते। राजा ने कहा पर मुझे तो तुम्हारी बातों से ही तुम्हारे चरित्र पर शंका हो गई थी, वे कहने लगी कि दिन में हम दूसरे कार्य सम्पादन करने में लगी रहती है। पर पिता के कार्य को पूर्ण सहयोग देती है, जब तक पिता के घर है तब तक हमारा कर्तव्य है कि पिता के अवशेष कार्य निपटाने के लिये हम प्रयास करे। राजा ने कहा कि तुम्हारा कथन मुझे कुछ भी समझ नहीं आ रहा है मुझे स्पष्ट कर समझाओ। तब उन बहिनों ने कहा सत्य कटु होता है, कहीं आप सुन कर नाराज तो नहीं हो जायेंगे। नहीं मैं तुम्हें सौ गुना अपराध माफ करता हूँ। जो सच्च है बतला दो। तब वे बालाएँ बतलाने को तैयार हुई। बोली कि अभी की बात समझाये या पहले की। तब सम्राट ने कहा कि अभी की ही समझाओ, तब वे कहने लगी कि सम्राट मन को सीमित रखना विषम मत बनाना। हमने अभी जो कहा कि यह तो वह है, अर्थात आप सम्राट है, सम्राट का उत्तरदायित्व महान होता है। राज्य पूरा चलाने के लिये विचारों की निर्मलता और बुद्धि का तिक्षण होना परम आवश्यक है किन्तु खेद है, न आपके विचार शुद्ध है और न बुद्धि ही पेनी है। आपने छिप कर रात्रि में कहीं हमारी बातें सुनी और पूर्वा पर प्रसंग का विचार किए बिना हमारे ऊपर चरित्रहीनता का आरोप लगा दिया जिससे मेरी एक बहिन ने कहा ये सम्राट नहीं पशु है। पशु में बुद्धि नहीं होती, इसमें भी अक्ल का दिवाला है। दूसरी बहिन ने जो बात कही उसका आशय है, यह साधारण पशु नहीं है,

यह तो सींग पूँछ रहित विचित्र पशु है। तीसरी बहिन के कथन का अभिप्राय है, यदि इसके सींग पूँछ होते तो इसे राज सिंहासन पर कौन बैठाता और मैंने कहा था यदि इसके सींग पूँछ होते तो इसे मार–पीटकर बाहर निकाल देते। किन्तु अब इसे किस प्रकार निकाले। यह हमसे भूल हो गई और आपको पशु कहा। अब रात की बात सुनो, तब सम्राट एक दम से चौंक गया सोचा इन बहिनों ने तो मुझे भरी सभा के बीच पशु बना दिया, पर मैंने इन्हें सो गुना अपराध माफ किया है। अतः इन्हे कुछ भी नहीं कह सकता हूँ। दूसरी बात ये बहुत होशियार व सुशील है। फिर राजा ने रात्रि की बात पूछी। तब उन लड़कियों ने कहा, राजन ! रात में मेरी एक बहिन ने कहा कि वह जा रहा है। अर्थात दिये की रोशनी जा रही है, तब दूसरी ने कहा वह नहीं है अर्थात तेल नहीं है, इसलिए वह जा रहा है। तीसरी ने कहा वह नहीं होता तो नहीं जाता अर्थात तेल होता तो वह जाता ही नहीं। चौथी बोली जाए तो जाने दो अपना काम तो हो गया। सम्राट कन्याओं की बातों को सुन कर अपनी शंका का समाधान होते ही अत्यधिक प्रसन्न हुआ और स्वयं के जीवन का परिवर्तन कर लिया। आज भी लोगों में परिवर्तन का प्रसंग आ सकता है, जो यह समझ गया हूँ वही सत्य है ऐसा न सोच कर जिस दृष्टि से यथा तथ्य समझाते हैं। उसी दृष्टि से समझने का प्रयत्न करें तो ये सम्यक रीति समझ में आ सकती है। हठग्रही या अभवी को तीर्थकर भी आ जाये तो भी नहीं समझा सकते है।

मन की गतिविधि क्रिया–प्रक्रिया को समझने की आवश्यकता है। चरित्राचार के द्वारा जीवन के आचारों को, प्रवचन माता के स्वरूप को समझोगे तो स्वयं को स्वयं के आइने में देख सकोगे। अन्यथा वास्तविक रूप में जीवन का परिवर्तन नहीं हो सकेगा।

❖ ❖ ❖

फल का वृक्ष पर लगना

एक बार श्री कृष्ण के साथ पाँचों पाण्डव और सती द्रोपदी एक बगीचे में जा रहे थे, प्रवेश के साथ ही सबको फल तोड़ने का निषेध कर दिया गया था, पर सब तो आगे–आगे चल रहे थे, और भी जो भारी शरीर के कारण पीछे चल रहा था, उसने देखा कि वृक्ष पर एक सुन्दर फल लगा है तो उसे देखकर मन चलायमान होने से भीम ने फल तोड़ लिया और श्री कृष्ण ने उसे देख लिया। अब श्री कृष्ण ने उसे प्रायश्चित करने के लिये कहा और कहा प्रायश्चित कर लेने पर ही आगे बढ़ोगे। घर में जितने सदस्य होते हैं, और जो पाप घर में होता है, उसके भागी घर के सभी सदस्य होते हैं। श्री कृष्ण ने कहा कि तुम सभी इस भीम के द्वारा कुल पाप के भागीदार हो, अतः धर्मराज तुम सर्वप्रथम प्रायश्चित करो कि "आज दिन तक मेरा जीवन पवित्र रहा हो, अन्य स्त्री की तरफ मेरी भावना नहीं गई हो तो हे फल। तू मेरी पवित्र स्थिति के बलबूते से पुनः डाली पर लग जा। "श्री कृष्ण महाराज के कहने के अनुसार, धर्मराज के कहने पर फल एक हाथ ऊपर उठ गया। इसी प्रकार सभी भाईयों ने कहा और वह फल एक हाथ ऊपर चढ़ता गया। जब द्रोपदी ने कहा कि यदि मैंने अन्य पुरुष की आकांक्षा नहीं की हो तो फल तुरन्त डाली के ऊपर लग जा। तो हुआ क्या ? वह फल जो पांच हाथ ऊपर उठा हुआ था, धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। द्रोपदी लज्जाशील बनी, एकदम मूक बन गई। पाण्डवों को भी आश्चर्य हुआ। तब कृष्ण ने कहा कि तुमने पूरा प्रायश्चित नहीं किया। तब द्रोपदी ने सारे अपने जीवन का प्रत्यावलोकन कर अपना प्रायश्चित किया और कहा कि जब मैं एक बार व्यायामशाला के पास से होकर जा रही थी, उस समय कर्ण को व्यायाम करते देख कर मेरे मन में विचार आया कि क्या ही अच्छा होता पाँच पाण्डवों के साथ कर्ण भी होता तो मेरे पाँच पति के साथ छः पति हो जाते, बस

इस भावना के अलावा मेरे मन में कभी कोई भावना नहीं आयी थी। अतः हे फलराज। मेरी इस वृति में कुछ भी कमी न हो तो शीघ्रता से वृक्ष पर लग जाओ, इतना कहते ही फल झट से डाली पर लग गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि भव्यात्माओं। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति अविचल श्रद्धा होनी चाहिये। इसी के साथ वीतराग प्ररुपित आगमों पर भी आस्था हो लेकिन उन वीतराग प्ररुपित सिद्धान्तों को वह समझे और छोड़ने योग्य को छोड़कर उपादेय को ही ग्रहण करे और उपादेय में भी कभी दोष लग जाय तो द्रोपदी की तरह आलोचना कर शुद्धि कर ले।

❖ ❖ ❖

आचार्य पुष्प मित्र की समाधि

पुष्प मित्र नाम के आचार्य थे। वे अपने बहुत से शिष्यों को चरित्र के साथ–साथ ध्यान साधना की भी शिक्षा देते थे। अध्यापक चाहे कैसा भी उपदेश दे पर शिष्य सही रूप में स्वीकारे तो उस उपदेश की सार्थकता है। पुष्प भूति आचार्य का पुष्प मित्र नामक शिष्य बहुत ही गुणवान, विनयी एवं शास्त्रों की गहराई में उतरने वाला था। वह उस ध्यान साधना को पाने के लिये हरेक क्रिया का ध्यान रखता था और सदा निवेदन करता कि ध्यान साधना व चरित्र साधना का मार्ग बताये। मैं साधना में तल्लीन बनना चाहता हूँ। इस प्रकार ध्यान साधनादि में वह गीतार्थ हो गया।

एक दिन आचार्य प्रवर मन में विचार करने लगे कि मैं चारित्र पालना के साथ ध्यान साधना में विशेष लक्ष्य रखता हूँ तो संघ से अलग होना पड़ेगा। ध्यान साधना के लिये एकाकी रहना होगा। तब संघ को कौन समझाएगा, कौन संभालेगा ? चिन्तन करने के बाद उन्होंने शिष्य पुष्पमित्र को बुला कर कहा मैं ध्यान साधना विशेष रीति से करना चाहता हूँ। अतः कोई भी दर्शन करने के लिए आवे तो तुम उन्हें बाहर ही रोकोगे, उन्हें संभालोगे। क्योंकि आज भी ऐसा देखने

को मिलता है जो लोग दर्शन करने आते हैं तो जोर से "मथ एवं वंदामि" कहते हैं। ताकि मोटे महाराज के कान में उनके शब्द पहुँच जाय और जब तक वे आपकी वन्दना न झेलेंगे "दया पालो" न कह दें, तब तक आप अपनी की गई वन्दना को सार्थक नहीं मानते। पर इसमें विवेक रखने की आवश्यकता है। संयमी जीवन का हर एक कार्य अपनी सीमा में होता है। अतः आपको धैर्य के साथ रहना चाहिए। दूर से ही वन्दनादि कर लेनी चाहिये। वे आचार्य जानते थे कि सभी मनुष्य एक सरीखे नहीं होते हैं, कोई आ कर मेरे पांव में भी माथा लगा देगा तो ध्यान साधना में खलल पड़ेगा। लोग आ कर पांवों में माथा लगाते हैं। तो यह नहीं सोचते कि इनके ध्यान में मैं बाधक बन रहा हूँ। इनकी साधना में विघ्न उपस्थित कर रहा हूँ। इस तरह मैं इन्हें अन्तराय दे ही रहा हूँ। पर साथ ही स्वयं भी कर्मों का उपार्जन कर रहा हूँ।

शिष्य पुष्पमित्र ने गुरुदेव की बात सुन कर कहा कि मैं, तन, मन से समर्पित हूँ। आप ध्यान साधना में विराजे। मैं एक शब्द भी आपके कान तक नहीं पहुंचने दूंगा। सभी व्यक्तियों को बाहर से ही लौटा दूंगा। शिष्य के विनीत वचनों को सुन कर एवं अश्वासन पाकर आचार्य श्री ध्यान साधना में तन, मन से तन्मय हो गए, दूसरे शब्दों में कहा जावे तो समिति के साथ गुप्ति की साधना में तन्मय हो गए। सभी साधु, गुरु भ्राता अन्य कोई भी आते और कहते दर्शन करना है, तो पुष्पमित्र यही कहते कि यहीं से कर लो। कुछ दिन तो सभी को सन्तुष्टि प्रदान की। पर कई साधु प्राण रूप चरित्र जीवन की ध्यान साधना क्या होती है ? यह नहीं जानते थे। अतः कुछ दिन बाद पुष्पमित्र को कहने लगे कि तुम जाने नहीं देते दर्शन नहीं करने देते आदि कहकर उसको इस प्रकार आशातना करने लगे। पुष्पमित्र का तिरस्कार करते, पर पुष्पमित्र यही कहते कि आचार्य श्री ध्यान साधना में सलंग्न है, उनके समीप जाने से विघ्न उपस्थित होगा उनकी ध्यान साधना में। पर वे ध्यान साधना से अनभिज्ञ साधु न माने और एक दिन जब पुष्पमित्र आवश्यक कार्य से निपटने के लिये जंगल गए हुए थे, तब वे लोग अन्दर पहुंच गए देखा तो सोचा–अरे ! आचार्य श्री का

स्वर्गवास हो गया हे, यह पुष्पमित्र हमको अन्तराय दे रहा है। पुष्पमित्र आया तो उसे भी बहुत कुछ कहने लगे। उसने समझाया कि ये महान हैं, ध्यान साधना में सलंग्न हैं, आप इन्हें बाधा न पहुंचाये, पर उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। वे लोग शवदाह करने के लिये कहने लगे। इधर पुष्पमित्र अकेला था, फिर भी उसने उन्हें नहीं ले जाने दिया तब वे लोग वहां के राजा के पास पहुँचे कहा कि आचार्य श्री जी न तो हिलते डुलते हैं और न कुछ बोलते ही हैं, लगता है उनका स्वर्गवास हो गया है, पर मुनि पुष्पमित्र उनका दाह संस्कार नहीं करने दे रहा हैं। तब सम्राट स्वयं वहां पहुंचे और पूछा तो पुष्पमित्र ने कहा कि ये साधु महाव्रत लेकर चल रहे हैं, सम्यक चारित्र का आचरण कर रहे हैं, पर उससे जो रस आता है, उसे समझ नहीं रहे हैं। आचार्य श्री जी को मृत घोषित कर रहे हैं। आप इन्हें समझाए कि ये उत्कृष्ट ध्यान साधना में विराजे हुए हैं, पर साधु लोग कहने लगे कि अहो विद्वान तो यही हैं, हमने इतने शास्त्र यों ही पढ़े हैं, इस तरह प्रलाप करने लगे। तब पुष्पमित्र ने मौनधारण कर ली कि जो ईर्ष्या एवं क्रोध से अन्धे हो रहे हैं, उन्हें कुछ समझाना बेकार हैं। राजा आचार्य श्री जी के समीप गये, उनके हाथ पांव आदि हिलाकर देखा, उनकी नस टटोली, श्वास देखी पर सब कुछ स्पंदन रहित देख कर कहा कि पुष्पमित्र की बात गलत है, ये सभी साधु ठीक कह रहे हैं। सम्राट ने उनकी शव क्रिया के लिये तैयारी करने की आज्ञा दे दी। तब पुष्पमित्र ने सोचा कि आचार्य श्री तो ध्यान साधना खोलेंगे नहीं, मुझे संकेत बताया था कि जब कभी आवश्यक कार्य होवे तो अमुक अंग को स्पर्श करना, तब मैं ध्यान की स्थिति से पूर्व अवस्था में लौट आऊंगा। उन्होंने सोचा कि अब रुकने का समय नहीं है। ये लोग तो इनका दाह–संस्कार करने की तैयारी कर रहे हैं। अतः वे आचार्य श्री के पास गये और उनके संकेतित अंग पर हाथ लगाया। आचार्य श्री ने ध्यान खोला और कहा कि यह क्या किया ? मेरी ध्यान साधना में यह विघ्न उपस्थित क्यों किया ? तब पुष्पमित्र ने विनय के साथ करबद्ध होकर सारी स्थिति स्पष्ट की और कहा कि चारित्र पालना का ध्यान की साधना का भगवन्। इन साधुओं को कुछ भी ध्यान नहीं हैं।

आप तो ध्यान साधना में तल्लीन थे, पर उन्होंने आपको मरा हुआ समझ लिया। मैंने बहुत समझाया कि आप ध्यान साधना में तल्लीन हैं, पर वे नहीं माने और आपकी शव क्रिया करने के लिये ले जाने की तैयारी करने लगे। अतः मैंने आपकी साधना में विघ्न उपस्थित किया, ताकि इन साधुओं को सच्चाई ज्ञात हो सके और इनके नेत्र खुल सके। तब आचार्य श्री ने उन समस्त साधुओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम लोग इसलिये अधूरे रह गये हो। केवल ऊपर की वस्तुओं को देखते हो, गहराई में नहीं उतरते हो। अपने ज्ञान को ही महान् समझते हो, गुरु को कुछ नहीं समझते। न पुष्पमित्र का तुम लोगों ने विनय किया। ध्यान साधना में तुम लोग बाधा उपस्थित करते हो। मेरी समाधि भी तुम लोगों ने अपनी असावधानी से भंग करवा दी। अब मुझे नये सिरे से ध्यान करना होगा। बिना धैर्यता के काम बिगड़ जाता है।

❖ ❖ ❖

ईर्ष्या की आग

कुछ वर्ष पूर्व की बात है, क्षेत्रपुर गांव में एक वेणी माधवसिंह नामक जागीरदार था। वह एक बार बीमार हो गया। बीमार भी ऐसा कि पलंग से उठने की स्थिति भी नहीं थी। डाक्टर, वैद्य हकीम आदि ने अलग–अलग जांच की और एक ही निर्णय दिया कि इनको हृदय की बीमारी है। इनके सामने कुछ भी चिन्ता की स्थिति उपस्थिति मत करना। इनको ज्यादा बोलाना मत। एक बार उनका भानेज सदाशिव अपने मामा की साता पूछने के लिये अपने मित्र के साथ उनके घर गया और पूछा कि तबियत कैसी है ? पर उसके मामाजी ने उसे कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। उसने जब मामाजी की चिकित्सा के विषय में खोज की तो ज्ञात हुआ कि चिकित्सा तो बराबर चल रही है फिर भी उसकी व्याधि समाप्त नहीं हुई है। इसमें जरूर कोई आन्तरिक कारण होना चाहिये। बातचीत के दौरान उसे ज्ञात हुआ कि मामाजी को चन्द्रनाथ ठाकुर से ईर्ष्या है। उसके विकास को सुनकर ही यह इतने

दुखी हुए हैं। जिससे इन्हें हार्ट अटैक हो गया है। अतः इन्हें स्वस्थ करने के लिये मनोविज्ञान से काम लेना होगा। वह भानजा मनोविज्ञान का भी जानकार था। वह मामा का मनोरंजन करने लगा जिससे उनको कुछ प्रसन्नता की अनुभूति हुई। तब मामा सदाशिव से चन्द्रनाथ जागीरदार के विषय में पूछताछ करने लगा, कहने लगा कि तुम्हारे प्रान्त में खेती बहुत हुई है। तुमने तो चन्द्रनाथ ठाकुर के विषय में कुछ भी समाचार नहीं बताये। तब भानजा कहने लगा कि मामाजी ! चन्द्रनाथ ठाकुर के खेती बहुत हुई है। पर टिड्डी लग गयी जिससे फसल नष्ट हो गई। जो दूसरों को ठगता है वह भी ठगा जाता है। प्रकृति के घर में देर है पर अंधेर नहीं है। यह श्रवण कर मामा अतीव प्रसन्न हुआ। पुनः भानजे से कहने लगा कि सुना है उसकी लड़की का संबंध किसी धनिक परिवार में हुआ है। तब भानजे ने प्रत्युत्तर दिया कि नहीं। यह किसने कहा ज्योतिषी ने तो साफ मना कर दिया कि चन्द्रनाथ की लड़की का लगन होगा ही नहीं। यह श्रवण कर तो उसे इतनी अधिक खुशी हुई कि वह एकदम उठकर बैठ गया तथा अपने आप में एकदम स्वस्थता का अनुभव करने लगा तथा भानजे को धन्यवाद देता हुआ विदा किया और यह भी कहा कि भाई ! तुम्हें कभी समय मिले तो आया करना और उस जागीरदार चन्द्रनाथ का हाल सुनाया करना।

लौटते वक्त रास्ते में सदाशिव को उसका मित्र कहने लगा कि तुमने इतना झूठ क्यों कहा ? तब वह कहने लगा कि यदि मैं अपने मामा को ये झूठी बातें नहीं कहता, तो आज ही उसका हार्ट फेल हो जाता। मेरी दवाई मेरे मामा को लागू हो गई। वे चन्द्रनाथ के समाचार श्रवण कर एकदम स्वस्थ हो गए। चन्द्रनाथ की तरक्की के समाचार सुनकर ही मामा को हार्ट की बीमारी हुई थी। बन्धुओं, यह क्या है ? ये ईर्ष्या, राग–द्वेष आदि परिणितियां ही हृदय रोग आदि कैसे–कैसे भयंकर रोग खड़े कर देती है। स्वस्थ को अस्वस्थ बना देती है। विष्मता का यह भयानक रूप व्यक्ति के अन्तरंग और बाहरी दोनों ही प्रकार के जीवन को क्षत–विक्षत कर देता है।

❖ ❖ ❖

जमाली

धर्म पर स्थिरता–अस्थिरता एवं श्रावक सम्यग्य दृष्टि के कर्त्तव्यों को समझने के लिये जमाली का उदाहरण दे देता हूँ। प्रभु महावीर की अमृतोपम वाणी जब जमाली के मन में प्रविष्ट हुई, तब उसने विचार किया कि प्रभु महावीर मेरे अनन्त उपकारी हैं। जब प्रियदर्शना के साथ मेरा सम्बन्ध जोड़ा, तब मैंने यही विचार किया कि प्रभु महावीर की असीम कृपा से मुझे इस प्रियदर्शना का बहुत अच्छा संयोग मिला, पर आज मुझे वास्तविक लक्ष्मी के साथ संयोग कराने के लिये प्रभु महावीर ने कैसे अच्छा मुझे प्रतिबोध दिया और ऐसा प्रतिबोध पाकर वह जमाली जमाता अपने पांच सौ साथियों के साथ दीक्षित हो गया पर दीक्षित होने के बाद भगवान से अलग विचरण की अनुमति मांगी तब प्रभु मौन रहे, दो–तीन बार पूछने पर भी जवाब नहीं दिया तो उस जमाली अणागार ने बिना भगवान की आज्ञा के अलग विचरण करना प्रारम्भ कर दिया। विचरण करते हुए एक स्थान पर अशाता वेदनीय कर्म के उदय से शरीर में तीव्र व्याधि हो गई। अतः सोने के लिये शिष्यों को शैया बिछाने का निर्देश दिया। शय्या बिछाने में देरी होने के कारण इस निमित मात्र से उनकी विचारधारा वीतराग वाणी के प्रतिकूल बनी और वह मिथ्या दृष्टि हो गया।

घटना इस प्रकार घटी की जब शिष्यों से पूछा गया कि मेरी शय्या बिछ गई ? तब शिष्यों ने कहा हाँ, बिछ गयी हैं किन्तु जब जमाली ने देखी कि शय्या अभी तक बिछी नहीं हैं फिर भी कैसे कह रहे थे कि ''शय्या बिछ गई।'' ये भगवान के सिद्धान्त का अनुसरण करके कह रहे हैं पर आज मैं यह प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि भगवान का यह सिद्धान्त सर्वथा गलत है। जो कार्य पूरा नहीं हुआ हो, उसे पूरा हुआ कैसे कह रहे हैं। इस गलत मान्यता का आग्रह सिर्फ जमाली ने ही नहीं पकड़कर रखा वरन उसके साथ वाले साथी और महासती

प्रियदर्शना भी उसे गलत मान्यता के आग्रह को लेकर विचारने लगी।

एक बार का प्रसंग है। प्रियदर्शना विचरती हुई ढक श्रावक के यहां पर पहुँची। वह जाति से कुम्भकार था, पर प्रभु महावीर का पक्का श्रावक था। जिनवाणी का रसिक, प्रभु महावीर के सिद्धान्तों का जानकार, सुज्ञ और गम्भीर था। उसने जब यह जाना कि जमाली प्रभु महावीर के सिद्धान्तों से विरूद्व प्ररुपणा करके विचर रहा है तथा यह प्रियदर्शना भी मूढ़ मति को प्राप्त हो जमाली के द्वारा प्ररुपित गलत मिथ्या सिद्धान्त को स्वीकार कर प्ररुपणा कर रही है कि–"जो कार्य अभी तक पूरा नहीं हुआ, उसे पूरा हो गया–ऐसा नहीं कहना।" कुम्भकार ढक श्रावक अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से एक उपाय ढूंढ़ निकालता है और वीतराग वचन से अस्थिर बनी साध्वी प्रियदर्शना को पुनः वीतराग वचनों पर स्थिर कर देता है। जैसा कि उसने यह प्रयोगात्मक कार्य किया बर्तन पकाने के स्थल से अंगारा लेकर उस साध्वी की चादर के एक किनारे पर डाल दिया। तब वह साध्वी बोल उठी–अरे। यह क्या किया ? मेरी चादर जला दी। तब कुम्भकार ने कहा कि तुम्हारी चादर अभी पूरी कहां जली है ? सिर्फ एक किनारा ही तो जला है। तुम्हारा तो सिद्धान्त हैं कि जब तक कोई वस्तु पूरी नहीं हो जाय, तब तक उसे जला हुआ नहीं कहना। तीर ठीक निशाने पर लगा। वह हलुकर्मी आत्मा साध्वी प्रियदर्शना तुरन्त समझ गयी कि प्रभु महावीर का जो सिद्धान्त है–"चलमाणे चलिये इत्यादि" वह सही है और मैं जो वर्तमान में प्ररुपणा करने के लिये तत्पर हुई हूँ, वह सर्वथा गलत है। तब साध्वी प्रियदर्शना अपने साध्वी परिवार के साथ महाप्रभु के सान्निध्य में आलोचना प्रतिक्रमण कर पुनः सम्मिलित हो गई। महाप्रभु का सत्य सिद्धान्त समझाया गया तो कितने ही सन्त, जमाली अणगार को छोड़कर महाप्रभु के सान्निध्य में चले आये। किन्तु जमाली अपने मिथ्या सिद्धान्त पर डटा रहा और अन्त तक मिथ्यात्वी ही बना रहा।

❖ ❖ ❖

वचनों के घाव

एक समय का प्रसंग है। दुष्काल का समय था। तब कई सम्पन्न स्थिति वालों अन्न खरीद लिया और अपने परिवार वालों का पोषण करने लगे। पर कई गरीब लोग क्षुधा से तड़फड़ाते हुए मरने लगे ऐसी परिस्थिति में "बहुरत्ना वसुन्धरा" इस कहावत को चरितार्थ करने वाला एक सुदत्त नामक सम्यग्दृष्टि श्रावक प्रभु महावीर का अनुयायी विचार करने लगा कि मेरी यह सम्पत्ति यदि मैं साधर्मी भाइयों की मदद में नियोजित कर दूं, तो इससे बढ़कर इस नश्वर सम्पत्ति का और क्या सदुपयोग होगा। ऐसा विचार कर खुले दिल से वह साधर्मी भाइयों के लिये हर तरह से साधन जुटाने लगा। बड़ी हवेली बना कर सब अनाथों का गरीबों का पोषण करने लगा, बड़ी विनम्रता और आत्मीय भावना के साथ। तीन साल तक बराबर उनका परिपालन कर उन लोगों का, धर्म के प्रति अहोभाव उत्पन्न किया।

समय परिवर्तनशील है। समय ने पलटा खाया, दुष्काल जब सुकाल में परिवर्तित हुआ तो सभी दुष्काल पीड़ित भाई बहिन अपनी विनम्रता, कृतज्ञता जतलाते हुए बड़े विनम्र भावों के साथ उन सेठ साहब को कहने लगे कि आपने सुन्दर अनूठा रुपक जगत के सामने रखा। हम आपके बहुत आभारी हैं। अब हमें छुट्टी दीजिये। हम अपने घर जाना चाहते है। जब सेठ कहने लगा कि यह तो आपने मुझे स्वर्णिम चान्स दिया। मेरा अहोभाग्य है कि मुझे आपकी सेवा करने का सुअवसर मिला। आपने मेरे पर बहुत उपकार किया।

ख्याल करिये कि उपकार किया सेठ ने उन लोगों, पर कह क्या रहा है कि "आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया" कितनी विनम्रता थी, सेठ की जीवन में। सेठ ने यथार्थ में प्रभु महावीर के सिद्धान्तों का रसपान किया था। सम्यक दृष्टि के आचारों का भलीभांति जानकार दृढ़ता से उसका पालन किया था।

आज के युग में तो देखने को मिलता है कि प्रथम तो कोई ऐसा स्वधर्मी वात्सल्य का व्यवहार ही नहीं करते हैं। यदि कहीं करते भी हैं तो उसके पीछे नाम कमाने की, यश फैलाने की भावना अधिक काम करती है। काम कम नाम अधिक होना चाहिये। इस बात को मानने वाले व्यक्ति कभी भी स्वधर्मी वत्सलता का पूरा–पूरा लाभ नहीं प्राप्त कर सकते। वह सेठ, ऐसे लोगों में से नहीं था। वह दिये गये दान को भूमि में गये बीज की तरह गुप्त और सुरक्षित रखने वाला था।

जब सुकाल हुआ और लोग जाने की तैयारी करने लगे तो सेठ ने उन्हें एक निवेदन किया कि एक प्रीतिभोज और देना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे सन्तुष्ट कीजिये। लोगों ने बात मान ली। प्रीतिभोज की जोरदार तैयारियां की जाने लगी। सभी को वह अपने हाथ से परोसकर जिमाने लगा। देखिये स्वधर्मी सेवा।

मुझे इसी बीच स्वर्गीय गुरुदेव के समय का प्रसंग याद आ रहा है। गुरुदेव का जब बगड़ी चातुर्मास था, तब चातुर्मास कराने वाले सेठ लक्ष्मीचन्द जी धाड़ीवाल स्वयं स्वधर्मी भाईयों की सराहनीय सेवा करते थे। भोजनादि सभी कार्यों में स्वयं भाग लेते थे। एक बार का प्रसंग है–कुछ भाई भोजन में अपनी खुराक का ध्यान नहीं रख पाये, जिससे उन्हें हैजे की शिकायत हो गयी। चेपकी बीमारी होने से उनकी सेवा करने में नौकर, चाकर भी संकोच करने लगे। तो सेठ सेठानी ने स्वयं ही उनको सम्भाला, उनकी सभी प्रकार से सेवा की और उन्हें स्वस्थ कर विदा किया। यह है साधर्मी के प्रति निःस्वार्थ वात्सल्य भाव।

हाँ ! तो उस सेठ की बात कह रहा था मैं, जो सेठ जी सभी को परोस रहे थे, उस समय उनके लड़के ने कहा पिताजी मैं भी परोसूंगा। तो उसे सहर्ष अनुमति दी गई। वह लड़का जब परोस रहा था तो एक बहिन ने, जिसे किसी चीज की जरूरत थी, उसे मांगने हेतु उसने उस लड़के के वस्त्र को पकड़ कर कहा–"यहां भी परोसते जाइये।" पर यह नादान, वात्सल्य भावना से अनभिज्ञ, बोल उठा कि तीन–तीन साल हो गये, यहां टुकड़े खाते–खाते फिर भी अभी तक

तृप्ति नहीं हुई क्या ? पल्ला पकड़ते नहीं छूटा ? बन्धुओं। यह कठोर शब्द, उस बहिन को क्या ? जीमने वाले सभी भाई बहिनों को इतनी ठेस पहुंचाने वाले हुए कि सबके सब एक साथ उठ गए, बिना पूरा भोजन किये ही रवाना होने लगे। जब सेठजी ने यह दृश्य देखा तो विचार करने लगे कि तीन साल तक जो वात्सलय भावना का स्रोत मैंने बहाया, उस पर लड़के ने थोड़े से कठोर शब्द कहकर पानी फेर दिया। सेठजी उन लोगों को हाथ जोड़कर पैरों में गिरकर माफी मांगने लगे। कहने लगे कि लड़के ने नादानी कर दी आप उसे क्षमा कर दें। सभी सेठ की अपूर्ण वात्सल्यता, विनम्रता से गदगद हो उठे। सेठ का पूरा सत्कार ग्रहण करके, सेठ को अन्तर आशीष देते हुए विदा हुए। अस्तु।

❖ ❖ ❖

अश्रद्धा का परिणाम

एक सेठ को एक सन्यासी से मंत्र की उपलब्धि हुई। मंत्र की साधना विषयक प्रश्न पूछने पर बताया कि घर मैं बैठकर तो साधना नहीं हो सकती है अतः जंगल में जाकर एक वृक्ष की डाली पर कच्चे धागे से छीकां बांध दो और नीचे चूल्हे को खोद कर उस पर कड़ाह रखकर तेल गर्म करने के लिये रख दो, जब तेल बहुत उबलने लग जाय तब तुम उस छींके पर बैठकर मंत्र पढ़ते–पढ़ते क्रमशः एक एक धागा तोड़कर नीचे डालते रहो। इस क्रम से सब धागे टूटने के साथ तुम्हारी मंत्र की परिपूर्ण रूपेण साधना सफल होते ही तुम आकाश में उड़ने की विद्या प्राप्त कर लोगे और उसी क्षण आकाश में उड़ भी जाओगे। पर सेठ के मन में शंका हुई कि कहीं मेरी साधना सफल नहीं हुई और मैं आकाश में उड़ने के बजाय इस उबलते तेल से लबालब भरे गर्म कड़ाह में गिर गया तो प्राणों से भी हाथ धोना पड़ेगा। अतः उसने वह मंत्र नहीं साधा वरन उस मंत्र को तिजोरी में सुरक्षित रख दिया और उसके साथ उस सन्यासी के द्वारा बताई गई

सारी मंत्र साधने की विधि भी लिख कर रख दी, कुछ समय बाद सेठ तो काल कर गए और उनका पुत्र जो पिता की पदवी प्राप्त कर सेठ बना उसे पिताजी की चौपड़ियों (बहियों) में वही मंत्र और उसको पाने की सारी विधि लिखी हुई मिली। उसे पढ़कर लड़के की इच्छा उस मंत्र को साधने की हुई। वह विधि के अनुरूप जंगल में जाकर वृक्ष के नीचे चूल्हा खोदकर कड़ाह रख कर तेल उबालने के लिये उसमें डाल दिया तथा डाली पर कच्चे सूत का छींका लटका दिया, जैसे–जैसे तेल उबलने लगा वैसे–वैसे उसके मन में डाली पर चढ़ने की तत्परता तो हुई पर मन ही मन शंका भी हुई कि मेरी यह साधना सफल होगी या नहीं ? कहीं मैं कड़ाह में गिर गया तो। इस अविश्वास के कारण वह बार–बार डाली पर चढ़ने की हिम्मत करता और पुनः पुनः संकल्प से डिगायमान हो जाता।

उसकी इस चर्या के बीच ही क्या हुआ कि एक चोर जो कि राजा के यहां से चोरी करता हुआ पकड़ा गया, पर कोतवाल उसे कैद नहीं कर पाया और वह दौड़ता–दौड़ता उसी जंगल में पहुँचा जहां वह सेठ का लड़का मंत्र की तैयारी कर मंत्र के प्रति पूर्ण समर्पण के अभाव में संशय उत्पन्न हो जाने से छींके पर चढूँ अथवा नहीं चढूँ ? ऐसा विचार कर रहा था, कारण की प्राणों का व्यामोह जो उसे था और सन्यासी के वचनों पर पूर्ण विश्वास नहीं हो पा रहा था। ज्योंहि उस चोर की दृष्टि उसे सेठ के लड़के पर पड़ी और उसने उससे सारी जानकारी चाही कि तुम यहां इस स्थिति में कैसे खड़े हो ? तब सेठ के लड़के ने आद्योपांत सारा वृतान्त उस चोर को कह सुनाया यह सुनकर चोर ने सोचा कि कोतवाल मुझे पकड़ने के लिये मेरा पीछा कर रहा है, चोरी मेरी पकड़ी गयी है, अतः मुझे प्राणदण्ड तो मिलेगा ही, क्यों न मैं इस लड़के को चुराये हुए दोनों रत्नों के डिब्बे देकर, इस मंत्र को प्राप्त कर लूं ? यह विचार कर चोर ने अपने मन में सोचा हुआ प्रस्ताव सेठ के लड़के के सामने रख दिया। चोर के प्रस्ताव को सुनकर मंत्र साधना की सफलता पर संदिग्ध बना सेठ का लड़का दोनों रत्नों के डिब्बों को लेकर उसके बदले उस चोर को मंत्र साधना की सारी विधि बतलाकर वहां से रवाना हो गया।

चोर जिसे अब मरने की तो कोई परवाह थी नहीं, क्योंकि प्राण संकट में तो पहले से ही पड़े हुए थे, अतः यह सोचकर कि कदाचित बच जाऊँ तो मंत्र सिद्ध हो जाने पर आकाश में उड़ जाऊँगा। ऐसा दृढ़ विश्वास कर वह उस कच्चे धागे के छींके में बैठ गया और मंत्र पढ़ता हुआ एक एक धागा तोड़कर नीचे डालने लगा, ज्यों की पूरा छींका टूटा कि आकाशगामी विद्या को प्राप्त कर आकाश में उड़ गया। इधर सेठ का लड़का दोनों रत्नों के डिब्बों को लेकर घर की ओर जा रहा था और बीच रास्ते में राजा के द्वारा प्रेषित कोतवाल के द्वारा पकड़ा गया, चोरी का माल उसके पास देखकर उसे प्राण दण्ड दिया। बिचारा बैमोत मारा गया।

इस दृष्टान्त से ज्ञानी–जनों ने यह समझाया कि हमारी वीतराग भगवान की आज्ञा के प्रति श्रद्धा है या नहीं ? नमस्कार मंत्र के प्रति श्रद्धा है या नहीं। यानि परिपूर्ण समर्पणा है या नहीं ? यह सेठ का लड़का जिसने मंत्र का साधना की सफलता पर अविश्वास किया तो उसकी क्या स्थिति बनी ? और चोर मंत्र की साधना के प्रति प्राणों की परवाह न करके पूर्णतया समर्पित हो गया तो उसने प्राण सुरक्षा के साथ सफलता हासिल कर ली। इस प्रकार यदि हम वीतराग भगवान के वचनों पर निःशंक समर्पित हो जाएं और अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित होकर चलें। चाहे कितनी भी आपदाएं आ जाए तो भी अपने लक्ष्य से विचलित न हों, तीर्थकर भगवन्तों की आज्ञाओं में बिना किसी प्रकार की शंका के परिपूर्ण रूपेण समर्पणा बनाये रखें तो निश्चित सफलता मिलेगी।

❖ ❖ ❖

नदी में पानी पिया

एक गांव में कुछ संत मुनीराज आ रहे थे। उनके सामने कई श्रावक अगवानी करने जा रहे थे। उन श्रावकों ने सामने आने वाले किसान से पूछा कि मुंह पर कपड़ा बांधने वाले महाराज को क्या

तुमने देखा है तो वह बोला हां साहब देखा है वे नदी में बैठे पानी पी रहे हैं।

जब श्रावकों ने यह सुना तो वे शंकाशील हो गए। अरे साधु होकर नदी का कच्चा पानी पीते हैं। नहीं वे साधु नहीं हो सकते हैं। साधुओं की अगवानी किये बिना ही सब अपने अपने घर या स्थानक चले गये। मुनिराज सभी वैसे ही उपाश्रय में पहुँच गए थे। तो वहां देखा कि श्रावकों का व्यवहार बहुत रूखा–सूखा नजर आ रहा था, क्या बात है ? इनमें क्या शंका है, आखिर खोज करने पर एक श्रावक ने सारी बात बतला दी, मुनिराज समझ गये।

उन्होंने उस किसान को बुला कर पूछा कि तुमने मुझे देखा तो वह बोला कि आप नदी में पानी पी रहे थे, तब देखा। यह सुनकर श्रावक बोल उठे कि सुन लीजिये आप नदी से पानी पी रहे थे। इस पर भी उत्तेजित नहीं हुए और बोले कि भाई बताओ हम पानी किससे पी रहे थे, तब वह बोला ओ महाराज आपके पास जो लकड़ी का बर्तन था उसमें से पानी पी रहे थे। नदी का तो पानी नहीं पी रहे थे। तो वह बोला कि महाराज आप कैसी बात करते हैं, नदी में तो एक बूंद पानी भी नहीं है। वह तो सूखी है। यह सुन सभी श्रावकों का स्पष्टीकरण हो गया और वे पूर्ववत् श्रद्धा भक्ति करने लगे।

"संशयात्मा विनष्यति"

जो व्यक्ति संशय रखता है उसका समाधान नहीं करता है तो नीतिकार भी कहते है कि उस आत्मा का कल्याण नहीं होता। जो भी आत्मा कर्तव्यनिष्ठ बनती हुई अपनी भ्रान्तियों को हटा कर विचारों को परिष्कृत करती हुई आगे बढ़ेगी तो उसका कल्याण होगा।

❖ ❖ ❖

संयम से विश्वास

त्रिषष्टिशला का पुरुष में एक प्रसंग आया है कि एक बार भगवान महावीर चम्पकनगरी के बगीचे में तप संयम से अपनी आत्मा

को भावित करते हुए विराजमान थे। तब वहां पर सम्राट जिसका नाम "शाल" था वह अपने युवराज "महाशाल" आदि को साथ लेकर भगवान के चरणों में पहुँचा। भगवान की अर्पूव देशना श्रवणकर सम्राट को संसार से विरक्ति हो गई और कहने लगे कि भगवान ! ऐसा अमृतमय ज्ञान का निर्झर आज जिन्दगी में मुझे प्रथम बार ही मिला है। मैं यह जान पाया कि इस जीवन में कितनी महान शक्ति है। उसको प्राप्त करने पर लोकालोक देखा जा सकता है। पर कब, जब उसके अनुरूप पुरुषार्थ करें। तब भगवान ! मैं भी श्री जी के चरणों में दीक्षित होकर अपनी अनंत ज्ञान ज्योति को प्रज्वलित करना चाहता हूँ। तब प्रभु महावीर ने फरमाया–

अहा सुहं देवाणुप्पिया।
मा पडिबंधं करेह।।

जैसा तुमको सुख हो वैसा करो, शुभ कार्य में विलम्ब मत करो। तब सम्राट ने पूर्ण रूपेण दीक्षित होने की तैयारी कर ली, तब उनका पुत्र युवराज कहने लगा कि आप तो दीक्षा ले रहे हैं। इस दुलर्भ मनुष्य भव को सार्थक बनाना चाह रहे हो, तब यह बन्धन रूप राग का भाव मेरे सिर पर क्यों डाल रहे हो ? महाराज ने कहा कि नहीं भाई तुम मेरे अप्रिय नहीं हो, यदि तुम भी इस संसार रूपी जेल से निकलना चाहते हो तो तैयार हो जावो, मैं तुम्हे सहर्ष अनुमति देता हूँ दीक्षा लेने की। तब युवराज ने पूछा कि पिताजी राज्य किसको संभलाओगे तब महाराज ने कहा, तुम इसकी चिन्ता मत करो, भानजे को राज्य भार सौंप देंगे। इस प्रकार भानजे का राजमहोत्सव मनाकर पिता–पुत्र दोनों प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षा ले लेते हैं, और दीक्षित होकर प्रभु महावीर के साथ चलने लगते हैं। जब एक बार चम्पा नगरी में भगवान महावीर का समवरसरण हुआ तो वे दोनों साथ थे, उनमें जो शाल मुनि थे वे भगवान से निवेदन करने लगे–भगवन् मेरा भानजा संसार रूपी जेल खाने में पड़ा हुआ है। आप आज्ञा फरमावे तो उसे भी इस जेल से छुटकारा दिलाने के लिये हम पृष्ठ चम्पा नगरी में जाना चाहते हैं। तब पिता पुत्र जो मुनि बन चुके थे, गौतम स्वामी के साथ पृष्ठ चम्पानगरी में पहुंचते हैं। और तप संयम

से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। महाज्ञानी गौतम स्वामी ने अमृतोपम वाणी से सम्राट को उद्बोधन दिया उससे देह जागृत होकर मुनिशाल का भानजा सम्राट गांगली, पुत्र को राज्यभार संभला कर माता पिता के साथ दीक्षा अंगीकार कर लेते हैं। इस प्रकार गौतम स्वामी पांच भव्यत्माओं को लेकर पुनः जब प्रभु महावीर के चरणों में पहुँचने हेतु पृष्ठ चम्पा से विहार कर जा रहे थे, तब उस नवीन संतों को ज्ञान देते हुए कहा कि तुम अब भगवान की विराट परिषद में जा रहे हो। वहां विनय का यथोचित पालन करना केवली की, अवधिज्ञान की, मनः पर्याय ज्ञान आदि–आदि सभी की जुदी–जुदी परिषद है, तुम नवदीक्षित की परिषद में जाकर बैठना। गौतम स्वामी की यह आज्ञा सभी ने विनयपूर्वक शिरोधार्य की। लेकिन उनके अन्दर में भावों की विशुद्धि निरन्तर बढ़ती चली गई। आत्मा ऊर्ध्वगामी साधना के लिये सर्वतोभावेन समर्पित होकर तन, मन, वचन से एकाकार हो गई। एक ही लक्ष्य की तरफ ध्यान तन्मय हो गया। भावनाओं में विशुद्धि के प्रकार्ष से गुणस्थानों पर आरोहण करने लगे। क्षपक श्रेणी पर चढ़कर अन्तर मुहूर्त में ही भगवान के पास पहुँचने से पहले ही घनघनाती कर्मक्षय कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गये और महाप्रभु के समवसरण में आकर सीधे केवली परिषद में आकर बैठ गये। तब गौतम स्वामी को आश्चर्य हुआ, उनके मन में कई संकल्प, विकल्प उठने लगे। तब घट–घट के अन्तर्यामी भगवान महावीर कहने लगे कि गौतम तू क्या सोच रहा है। यह तन–मन वचन से सर्वतोभावेन तुम्हारी आज्ञाओं में समर्पित होकर चलने वाले मुनि अब तुम्हारी आज्ञा का पालन की स्थिति से बहुत आगे बढ़ चुके हैं। अर्थात इनको तो केवल ज्ञान, केवल दर्शन हो गया है। तब गौतम स्वामी ने यह सुना तो कहने लगे भगवन् ये क्या ? मैं इतने वर्ष से श्रतुचरित्र धर्म की आराधना कर रहा हूँ, पर अभी तक मुझे केवल ज्ञान नहीं हुए। और यह मुनि जिनको अभी दीक्षा देकर मैं लाया और इतना जल्दी इन्हें केवलज्ञान हो गया, भगवन ऐसा क्यों ? गौतम स्वामी के भीतर हल–चल सी मच गई, उसे शान्त करने की दृष्टि से सांत्वना देते हुए महाप्रभु ने फरमाया कि हे आयुष्मान गौतम। तुम्हारा मेरे प्रति अनुराग

है, वह प्रशस्त है, वह आगे बढ़ाने वाला है। राग दो प्रकार का होता है–प्रशस्त और अप्रशस्त। प्रशस्त राग गुरु के प्रति श्रुत के प्रति होता है और माता–पिता, पारिवारिक सदस्यों और पुद्गलों के प्रति जो अनुराग होता है, वह अप्रशस्त राग है। गौतम तुम इतने बैचेन मत बनो, कारण की तुम्हारा जो मेरे प्रति प्रशस्तराग है, वह तुम्हे आगे बढ़ाने वाला है। पर अभी तक काल की परिवक्ता नहीं आई है, कर्मों के क्षय की स्थिति नहीं बनी है। तुम्हें केवल ज्ञान नहीं हो पा रहा है। अभी तुम्हारे कुछ कर्मों का उपभोग अब शेष है। पर जब मुझे मोक्ष हो जायेगा, तब तुम केवली बन जाओंगे। अतः खेद मत करो, पुरुषार्थ करते रहो। उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्ययन की पैंतीसवीं गाथा में भगवान ने गौतम स्वामी को संबोधित करते हुए फरमाया कि हे गौतम !

अकलेवर–सेणि उस्सिया, सिद्ध गोयम ! लोयं गच्छसि।
खेम च सिवं अणुत्तरं समयं गोयम। मा पमायए।।

अर्थात् हे गौतम शरीर से रहित जो सिद्ध श्रेणी है उसके सदृश पवित्र क्षपक श्रेणी पर चढ़ कर सर्वोत्कृष्ट सिद्धलोक को प्राप्त होगा। अतः तू समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

यहां विचार करने की बात है कि इतने विशिष्ट ज्ञानी को भी महा–प्रभु ने समय मात्र का भी प्रमाद नहीं करने के लिये कहा है जिनका कि उसी भव में मोक्ष निश्चित है। तो फिर आज के अधिकांश साधक जिनके पास श्रुतज्ञान भी पूरा नहीं है, फिर उनके ज्ञान की इति भी हो गई, जो प्रमाद या आलस्य में समय व्यतीत करे। गौतम स्वामी से सम्बन्धित यह घटना चाहे किसी भी रूप में घटित हुई हो लेकिन इससे यह शिक्षा मिलती है कि सदा आलस्य, प्रमाद त्याग कर पुरुषार्थ करते रहो।

यहां आप एक बात स्पष्ट कर लें कि गौतम स्वामी ने जो गांगली सम्राट के माता–पिता को दीक्षा दी, वह सारी विधिवत हुई थी और जब वे महाप्रभु के समवसरण में पहुँचे तो गांगली अनगार की माताजी जो अब साध्वी बन गई थी। साध्वी की केवली परिषद में जाकर विराजी। ❖ ❖ ❖

नानेश वाणी–46

दृष्टान्त सुधा

आचार्य श्री नानेश

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग
बीकानेर (राज.)

❑ नानेश वाणी–46
दृष्टान्त सुधा

❑ आचार्य श्री नानेश

❑ प्रथम संस्करण : सितम्बर 2003, 1100 प्रतियां

❑ अर्थ सहयोगी :
श्री चंनदनमल पारसमल पीतलिया हैदराबाद

❑ मूल्य : 30/–

❑ प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.)
दूरभाष : 2544867, 2203150

❑ मुद्रक :
कल्याणी प्रिण्टर्स
अलख सागर रोड़, बीकानेर
दूरभाष : 0151–2526890

प्रकाशकीय

हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य युग पुरूष श्री नानेश विश्व की उन विरल विभूतियों में है जिन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज को सम्यक् जीवन जीने की वह राह दिखाई जिस पर चल कर भव्य आत्माए अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष की अधिकारिणी बन सकती है । यद्यपि आचार्य श्री जी के भौतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है तथापि उनके द्वारा विरचित साहित्य के रूप में उपलब्ध है । एक क्रान्तिदर्शी आचार्य का यह प्रदेय साहित्य की वह अनुपम निधि बन गया है जो सांसारिक प्राणियों को लियें प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता रहेगा । इस स्तंभ से विकीर्ण होने वाली प्रकाश रश्मियां युगों-युगों तक आलोक धारा प्रवाहित करती रहे इसके लिए यह आवश्यकता है कि न तो उन साहित्य रश्मियों को क्षीण होने दिया जाये न ही उनकी उपलब्धता बाधित होने दी जाये वरन् आवश्यक यह भी है कि सर्व सामान्यजनों हित उनकी सुलभता सुनिश्चत रखी जायें । इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भारवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ ने उस अनमोल साहित्यिक धरोहर को ''नानेश वाणी'' पुस्तक शृंखला के अर्न्तगत प्रकाशित करने का निर्णय किया ।

इस संदर्भ में बैंगलोर निवासी सुश्रावक श्री सोहनलालजी सिपानी ने अर्थ संबंधी व्यवस्था में जो सद्प्रयत्न किया वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

प्रस्तुत कृति पूर्व में नानेश दृष्टांत सुधा नाम से प्रकाशित पुस्तक की नयी आवृत्ति है । इसमें कुछ संशोधन परिसंस्करण भी हुआ है । इस कृति के प्रकाशनार्थ अर्थ प्रदान करने वाले उदारमना सुश्रावक श्रीचंदनमल जी पारसमल जी पितलिया मारवाड़ के सुप्रसिद्ध गांव सिरीयारी हैदराबाद के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना भी अपना दायित्व समझता हूं ।

यद्यपि सम्पादन-प्रकाशन मे पूरी सावधानी रखी गई है तथापि कोई भूल रह गयी हो तो सुधी पाठकों से निवेदन है कि वे हमें अवगत करायें ताकि आगामी संस्करणों में भूल का परिमार्जन किया जा सके ।

निवेदक
शांतिलाल सांड
संयोजक साहित्य प्रकाशन समिति
श्री अ.भा. सा. जैन संघ. समता भवन, बीकानेर ।

अर्थ सहयोगी परिचय

सुश्रावक श्री चंदनमल जी पारसमल जी पितलिया मारवाड़ के सुप्रसिद्ध गांव सिरीयारी के निवासी है और आपने व्यवसाय के लिए अपना क्षेत्र आंध्रप्रदेश की राजधानी हैदराबाद को चुना। हैदराबाद के शहर काचीगुड़ा में आपने चंदनमल–पारसमल पीतलिया नाम से अपनी फर्म की स्थापना की और व्यवसाय की वृद्धि की। आपने अपनी व्यावसायिक दक्षता से फर्म को निरन्तर उन्नति की और अग्रसर किया। प्रामाणिकता ओर ग्राहकों के साथ सद्व्यवहारपूर्वक आपने अपने परिवेश का विश्वास भी अर्जित किया।

आप श्री साधुमार्गी परम्परा मे रचे–बसे पुष्पित और पल्वित हुए तथा आपका जीवन ज्ञान, ध्यान, साधना, तप–त्याग और संत सेवा के प्रति सदैव अनुरक्त रहा। आपने साधु–साध्वी की सेवा और चतुर्विध संघ की सेवा में स्वयं को सदैव समर्पित रखा। श्री चंदनमल जी के पुत्र श्री पारसमल जी पीतलिया के परिवार में तीन पुत्र सर्वश्री विजेन्द्र कुमार जी, रमेश चंद जी और दिलीप कुमार जी है। आप तीनों अपने पिता और दादा के पद–चिह्नों पर संघ और संत–सेवा में सदैव अग्रणी रहते हैं। श्री पारसमल जी के चार सौभाग्यशाली पुत्रियां हैं वे हैं– श्रीमती शोभा देवी, श्रीमती मन्जू देवी, श्रीमती पदमा देवी और श्रीमती संगीता देवी। चारों पुत्रियां भी अपने परिवारों सहित संघ और शासन की सेवा में अग्रणी रहती हैं। पीतलिया परिवार ने स्व. आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा., स्व. श्री नानालाल जी म.सा. और वर्तमान आचार्य श्री रामलाल जी म.सा. की सेवा की है। इस प्रकार इस परिवार को तीन आचार्यों की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ हैं।

पीतलिया परिवार स्व. श्री चंदनमल जी पीतलिया तथा स्व. श्रीमती सल्लू बाई धर्मपत्नी श्री पारसमल जी पीतलिया की स्मृति में नानेश–वाणी की प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित करवा रहा है। आपके उदात्त अर्थ सहयोग से यह पुस्तक जन–जन को काफी सहज मूल्य पर सुलभ हो सकेगी। इस प्रकार साहित्य के प्रचार–प्रसार में पीतलिया परिवार का महनीय योगदान है।

अनुक्रमणिका

1.	आत्मीयता से प्रभावित सिंह	1
2.	अभयदान की सर्व श्रेष्टता	3
3.	एक नमन से सभी पापों का विनाश	8
4.	छाछ पीहर भेजूंगी	10
5.	सोने की चूड़ी	13
6.	दहेज एक अभिशाप	14
7.	अर्थ का अनर्थ	16
8.	गुरु बिन ज्ञान नहीं	19
9.	सेठ ऐसा हो	23
10.	संयमित जीवन हो	24
11.	राधा वेध और समीक्षण ध्यान	25
12.	सद्व्यवहार से हृदय–परिवर्तन	27
13.	पल का बोया मोती निपजे	29
14.	दोषी कौन	31
15.	मंत्री का उपदेश : सम्राट में परिवर्तन	34
16.	संस्कारों का महत्व	38
17.	धर्म की विजय	39
18.	रक्षा–सूत्र का प्रभाव	43
19.	दो व्यापारी	44
20.	मानवता परीक्षक नीतिवाहन	49
21.	रत्न–परीक्षक	54
22.	श्रेय मार्ग की प्रेरिका	58
23.	छोटी बहू का श्रेय कार्य	61
24.	विचित्र रूप महायोगी का	64
25.	पूणिया श्रावक	69

26. परमात्मा कहाँ है और क्या करते हैं। 71
27. स्व. श्री जवाहराचार्यजी की सहिष्णुता 76
28. स्वामी रामतीर्थ का एक प्रसंग 77
29. आचरण ही सम्यक् पठन है। 78
30. द्विमुख महाराजा की विरक्ति 79
31. लापसी में जहर 83
32. फक्कड़ महात्मा 86
33. संतोषी परमसुखी 88
34. सत्य निष्ठा का परिणाम 89
35. मारुष–मातुष 90
36. सरलता कैसी हो 91
37. बिना अनुभूति का अक्षरीय ज्ञान 93
38. राजा का सेवक के प्रति कर्तव्य 95
39. स्वार्थ 97
40. तुलसीदास जी 98
41. महर्षि शुकदेव 100
42. सामायिक का मूल्य 101
43. समय बीते, फिर क्या पछताना 102
44. अहमदाबाद के प्रसिद्ध सेठ 106
45. सेठ वचन परमाणू 109
46. गीता का रहस्य 111
47. समीक्षण दृष्टि का ज्वलन्त आदर्श 112
48. सुपारी का पेड़ 113
49. ठगाई 116
50. इंगित समझें 119
51. अनुभूति हीन ज्ञान 120
52. परोपदेशी पांडित्य 121
53. खानदान का प्रभाव 122
54. मनोविज्ञान का प्रभाव 126
55. बच्चों के संस्कार सही हों 129
56. हस्तिपाल राजा के स्वप्न 130
57. एक मुहूर्त 142
58. कवि आनन्दधनजी 147
59. चेलना का संकेत 148
60. अनर्थ का मूलःधन 152
61. तेले का तप 154
62. लक्कड़हारा साधु बना 156
63. विनय का आदर्श 158
64. घटती बढ़ती क्या है ? 161
65. नाई की पेटी सन्यासी का कमण्डलु 165
66. वह जा रहा है 167
67. फल का वृक्ष पर लगना 171
68. आचार्य पुष्पमित्र की समाधि 172
69. ईर्ष्या की आग 175
70. जमाली 177
71. वचनों के घाव 179
72. अश्रद्धा का परिणाम 181
73. नदी में पानी पिया 183
74. संयम से विश्वास 184